नि:शक्तजन का समाजशास्त्र

(भरतपुर जिले में नि:शक्त बच्चों के सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश का विश्लेषणात्मक अध्ययन)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की पीएच.डी. (समाजशास्त्र) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

(सामाजिक विज्ञान संकाय)

शोधार्थी

ममता सिंघल

शोध पर्यवेक्षक

डॉ. राजीव गुप्ता

सामाजिक विज्ञान विभाग

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज0)

2019

CERTIFICATE

I feel great pleasure in certifying that the thesis entitled **"निःशक्तजन का समाजशास्त्र (भरतपुर जिले में निःशक्त बच्चों के सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश का विश्लेषणात्मक अध्ययन)"** by Mamta Singhal under my guidance. He has completed the following requirements as per Ph.D regulations of the University.

(a) Course work as per the university rules.

(b) Residential requirements of the university (200 days).

(c) Regularly submitted annual progress report.

(d) Presented her work in the departmental committee.

(e) Published/accepted minimum of one research paper in a referred research journal.

I recommend the submission of thesis.

Date:

Dr. Rajiv Gupta
(Research Supervisor)

ANTI-PLAGIARISM CERTIFICATE

It is certified that Ph.D. Thesis Titled "निःशक्जतन का समाजशास्त्र (भरतपुर जिले में निःशक्त बच्चों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश का विश्लेषात्मक अध्ययन)" by Mamta Singhl has been examined by us with the following anti-palgiarism tools. We undertake the follows.

a. Thesis has significant news work/kowledge as compared alredy published or under consideration to be published elsewhere, No sentence, equation, diagram, table, paragraph or section has been copied verbatim from previous work unless in is placed under quotation marks and duly referenced.

b. The work presented is original and own work of the outor (i.e. there is no plagiarism). No ideas, processes, results or words of others have been presented as author's own work.

c. There is no fabrication of data or results which have been compiled and analyzed.

d. There is no falsification by manipulating research materials, equipment or processes, or changing or omitting data or results such that the research is not accurately represented in the research record.

e. The thesis has been checked using (i) SMALL SAE TOOLS – Plagiarism checker website (ii) Viper – The Anti-Plagiarism Scanner (iii) Plagiarismchecker .com and (iv) URKUND and any other genuine tools / softwares and found within limits as per HEC Plagiarism Policy and instructions issued from time to time.

(Mamta Singhal)
Research Scholar

Place: Kota
Date :

(Dr. Rajiv Gupta)
Research Supervisor

Place : Kota
Date :

शोध–सार

प्रस्तुत शोध अध्ययन ''निःशक्तजन का समाजशास्त्र (भरतपुर जिले में निःशक्त बच्चों के सामाजिक सांस्कृति परिवेश का विश्लेषणात्मक अध्ययन)'' विषय का चयन समाज की संरचनात्क विसंगतियों को देखते हुये किया गया है। शोधार्थी ने यथा संभव उपलब्ध पूर्व अध्ययनों/तथ्यों का सम्यक अवलोकन एवं विश्लेषण किये जाने का प्रयास किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत शोध अध्ययन समाजशात्र, विशेषतः वंचित जनों के समाजशास्त्र के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कडी का कार्य करेगा। इस विषय पर भारतीय समाजशास्त्र में शोध अध्ययनों की संख्या अप्राप्य सी है अतः यह अध्ययन एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेता है।

सम्पूर्ण शोध अध्ययन सात अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय, में शोधार्थी ने निःशक्तजन का समाजशास्त्र की अवधारणा को प्रस्तुत किया है। इस अध्याय में शोधार्थी ने निःशक्तता को एक सामाजिक तथ्य के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया है और निःशक्तता के वर्गीकरण को प्रस्तुत किया है। अध्याय दो में संस्कृति, राजनीति एवं अर्थतंत्र की अन्तःसम्बद्धता को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है और उसमें निःशक्त जनसंख्या के सामाजिक स्थान की तलाश की है। शोधार्थी ने तर्क दिया है निःशक्तजन किसी न किसी स्तर पर मानसिक अस्वस्थतता का भले ही वह अल्पकालिक हो, भाग बन जाते है। अध्याय तीन में विभिन्न समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों का संक्षिप्त सार प्रस्तुत किया गया है। शोधार्थी ने तर्क स्थापित किया है कि समाज विज्ञानों में निःशक्त जनसंख्या पर शोध की उपेक्षा की गई है। अतः समावेशी विकास को सम्भव बनाने के लिये और समाज विज्ञान की सामाजिक भूमिकाओं को ध्यान में रखते हुये निःशक्तजनों पर सामाजिक शोध किये जाने आवश्यक है। अध्याय चार ''पद्धतिशास्त्र'' में शोध प्रक्रिया की विवेचना को प्रस्तुत किया गया है और विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं पद्धति के सम्बन्धों की अन्तःनिर्भरता को प्रस्तुत किया है। अध्याय पांच में द्वितीयक सूचनाओं एवं अनौपचारिक वार्तालाप से निर्मित अनुभविकताओं को केन्द्र में रखकर निःशक्तजनों के समाज मनोवैज्ञानिक विश्व का अनुभाविक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। शोधाार्थी ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि निःशक्तता जन्मजात नहीं होती अपितु यह एक समाज में मनावैज्ञानिक रचना है, जिसे व्यक्ति एवं समाज के अन्तःसंबंधों की पृष्ठभूमि के साथ समझने की आवश्यकता है। अध्याय छः में निःशक्त बच्चे एवं उनकी विकास नीतियों का अनुभाविक विवेचन प्रस्तुत किया है साथ ही निदर्शन इकाइयों की सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत किया गया है।

अध्याय सात में निष्कर्ष एवं सामान्यीकरण को प्रस्तुत किया गया है। शोधार्थी ने इस अध्ययन को विवेचन एवं विश्लेषण के साथ जोड़ते हुये ''सिक्युरिटी'' प्रारूप को निर्मित करने का प्रयास किया है। इस प्रारूप के द्वारा निःशक्तजनों के सामाजिक विश्व संबंधी नीतियों एवं कार्यक्रमों तथा निःशक्तजनों के सामाजिक कल्याण हेतु भावी नीतियां एवं कार्यक्रम क्या हो सकते है, के पक्षों को समझाने का प्रयास किया है। एवं निःशक्तजनों की समस्याओं के संभावित समाधान हेतु सुझावों को प्रस्तुत किया है। शोधार्थी का यह भी मत है कि यह शोध सामाजिक नीतियों के अकादमिक मूल्यांकन में योगदान कर पाने में एक सीमा तक सक्षम होगा। शोधार्थी समाजशास्त्र के विद्यार्थी के रूप में कह सकती है कि निःशक्त जनसंख्या एक दृष्टि से ''सामाजिक रूप से विस्थापित'' जनसंख्या है, जिसका ''सामाजिक पुर्नवास'' राज्य एवं समाज द्वारा किया जाना अनिवार्य है ताकि विकास प्रक्रिया समावेशी बन सके। इस अध्याय के उपरांत परिशिष्ट के रूप में संदर्भ ग्रन्थ सूची एवं साक्षात्कार अनुसूची का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

(ममता सिंघल)
शोधार्थी

Candidate's Declaration

I, **Mamta Singhal**, Department of Sociology hereby declare that the work that is being embodied in the Ph.D. thesis entitled.

"निःशक्तजन का समाजशास्त्र (भरतपुर जिले में निःशक्त बच्चों के सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश का विश्लेषणात्मक अध्ययन)" is by own bonafide work carried out by me under the supervision of **Dr. Rajiv Gupta. at** Department of social science, University of Kota, Kota (Raj.). The matter embodied in this thesis has not been submitted for the aware of any other Degree.

I declare that I have faithfully acknowledged given Credit to and referred to the research workers wherever their works have been cited in the text and body of thesis. I further Certify that I have not wilfully lifted up some other's work, para, text, data, result, etc, reported in the journals, books magazines, reports, dissertation, thesis etc, or available at websites and included them in this Ph.D. thesis and cited as my own work.

Mamta Singhal
Date : ..... (Research Scholar)

This is to certify that the above statement made by Mamta Singhal (Registration No-Rs/818/11) is correct to the best of my knowledge.

Dr. Rajiv Gupta
Date : ..... (Research Supervisor)

आभार

मैं अपने शोध निदेशक डॉ. राजीव गुप्ता, सामाजिक विज्ञान विभाग, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की हृदय से आभारी हूँ, जिनकी प्रेरणा और कुशल निर्देशन ने मुझे इस शोध प्रबंध को पूर्ण करने के लिये न केवल प्रेरित किया वरन् प्रस्तुत शोघ प्रबंध को पूर्ण करने में सहयोग दिया। मैं डॉ. अन्ना कौशिक, उप पुस्तकालय अध्यक्ष कोटा विश्वविद्यालय, कोटा के प्रति आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने मुझे विश्वविद्यालय की पुस्तकालय एवं इंटरनेट की सुविधा उपलब्ध कराई।

मैं डॉ. प्रवीण गुप्ता उप रजिस्ट्रार, डॉ. लेखा रानी अग्रवाल, डॉ. फिरोज अख्तर, डॉ. विक्रांत शर्मा, डॉ. सुबोध कुमार, डॉ. मीनू अरविन्द अग्रवाल सहायक आचार्यों एवं श्रीमती कुसुम गुप्ता की हृदय से आभारी हूं जिन्होने समय समय पर महत्वपूर्ण सुझावों द्वारा मेरा मार्ग दर्शन किया।

मैं अपने ससुर श्री जगदीश अग्रवाल (पत्रकार), सासु माँ श्रीमती दुलारी देवी, पति श्री देवेन्द्र कुमार, श्री अजय मित्तल एवं अन्य सभी रिश्तेदारों की भी आभारी हूं, जिनकी प्रेरणा से यह शोध कार्य पूरा हो पाया।

मैं शोध प्रबंध की कम्प्यूटर टाईपिंग के लिये श्री रवि नागर, नागर कम्प्यूटर्स, मानसरोवर, जयपुर का हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने अत्यंत सहयोगपूर्ण तरीके से मुद्रण कार्य को पूर्णताः प्रदान की।

अंत में सभी उन महानुभावों को धन्यवाद देना चाहती हूं कि जिन्होंने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से मेरे इस शोध कार्य को पूर्ण करने में सहायता प्रदान की। मुझे खुशी होगी कि यह शोध कार्य जनलाभार्थ एवं सामुदायिक विकास के प्रति सहयोगी बन सके।

आभार सहित।

(ममता सिंघल)
शोधार्थी

अनुक्रमणिका

अध्याय	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
प्रथम अध्याय	निःशक्तजन का समाजशास्त्र : एक विवेचन	1–31
द्वितीय अध्याय	निःशक्जनः संस्कृति, राजनीति एवं अर्थतंत्र	32–52
तृतीय अध्याय	निःशक्तजन एवं सामाजिक परिवेशः समाज मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि	53–70
चतुर्थ अध्याय	पद्धतिशास्त्र	71–93
पंचम् अध्याय	निःशक्त बच्चों का सामाजिक, मनोवैज्ञानिक विश्वः अनुभाविक विवेचन	94–117
षष्टम् अध्याय	निःशक्त बच्चे एवं विकास नीतियां : अनुभाविक विवेचन	118–187
सप्तम् अध्याय	निष्कर्ष एवं सामान्यीकरण	188–207
	शोध सारांश	208–213
	संदर्भ ग्रन्थ सूची	214–220
	साक्षात्कार अनुसूची	221–229
	शोध प्रपत्र	

सारणी–सूची

सारणी संख्या	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
2.1	निःशक्तजन (राज्य/संघ क्षेत्र), भारत जनगणना 2011	37–38
4.1	चयनित इकाइयों का क्षेत्रवार विवरण	84–85
6.1	निःशक्तों की श्रेणीवार जनसंख्या एवं प्रतिशत (भारत जनगणना 2011)	119
6.2	उत्तरदाताओं का जन्म स्थान	128
6.3	उत्तरदाताओं की धार्मिक प्रस्थिति	130
6.4	उत्तरदाताओं के परिवार की प्रकृति	132
6.5	उत्तरदाताओं की जातीय/जनजातीय प्रस्थिति	133
6.6	उत्तरदाताओं के परिवारों की वार्षिक आय	135
6.7	उत्तरदाताओं के परिवारों का परिवारिक व्यय (मासिक)	137
6.8	उत्तरदाताओं के परिवारों की परिसम्पत्तियां	139
6.9	उत्तरदाताओं में निःशक्तता के कारण	142
6.10	उत्तरदाताओं के परिवारों को राजनैतिक दलों की जानकारी	144
6.11	उत्तरदाताओं एवं परिवारीजनों में सूचना माध्यम एवं पारम्परिक चेतना	145
6.12	उत्तरदाताओं का पूजा पाठ करने से संबद्ध जानकारी	147
6.13	उत्तरदाताओं के साथ परिवारीजन/नातेदारों का व्यवहार	149
6.14	उत्तरदाताओं की क्रियाओं का सम्पन्न करने में परिवारीजन की सहायता	151
6.15	उत्तरदाताओं के विद्यालय जाने से संबद्ध जानकारी	153
6.16	उत्तरदाताओं के विद्यालय की प्रकृति	155
6.17	उत्तरदाताओं के साथ मित्र एवं सहपाठियों का व्यवहार	157
6.18	उत्तरदाताओं के साथ शिक्षक का व्यवहार	159
6.19	उत्तरदाताओं के साथ अभिभावकीय उपेक्षा से उनके अनुभव	160
6.20	उत्तरदाता द्वारा निःशक्तता के कारण अनुभव की गई बाधाएं	162

6.21	उत्तरदाताओं के नशा करने से संबद्ध जानकारी।	164
6.22	उत्तरदाताओं के नशीले पदार्थों के सेवन से संबद्ध जानकारी	165
6.23	उत्तरदाताओं के नशे में सहयोग करने वाले से संबद्ध जानकारी	166
6.24	उत्तरदाताओं में नशे के कारण	168
6.25	उत्तरदाताओं के खेलों के प्रति रूचि से संबंधी जानकारी	169
6.26	उत्तरदाताओं के निःशक्त होने के कारण खेल खेलने में बाधा होने संबद्ध जानकारी	171
6.27	उत्तरदाताओं की मिलनसार प्रवृति	172
6.28	उत्तरदाताओं के निःशक्त होने के कारण उत्पन्न तनाव से संबद्ध जानकारी	174
6.29	उत्तरदाताओं के विवाह संबंधी दृष्टिकोण	175
6.30	उत्तरदताओं का शैक्षणिक प्रस्थिति	177
6.31	उत्तरदताओं की आकांक्षा	178
6.32	उत्तरदाताओं को निःशक्तता संबंधी कानूनों की जानकारी	181
6.33	उत्तरदाताओं को उपलब्ध सरकारी सुविधाओं की जानकारी	183

प्रथम अध्याय

निःशक्तजन का समाजशास्त्र : एक विवेचन

समाजशास्त्र एक आधुनिक समाजविज्ञान की शाखा के रूप में स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर सक्रिय विभिन्न प्रस्थितियों एवं समूहों के मध्य विभिन्न स्वरूपों की सामाजिक अन्तःक्रियाओं का वैज्ञानिक आलोचनात्मक अध्ययन है।

प्रत्येक समाज में शारीरिक दृष्टि से दो तरह की सामाजिक इकाईयां विद्यमान होती है। एक जो शारीरिक संरचना की दृष्टि से सामान्य सामाजिक इकाई के रूप में स्थापित हैं तथा दूसरी वे जो किसी न किसी शारीरिक कमी के कारण इन सामान्य सामाजिक इकाईयों से पृथक हो जाती है। शोधार्थी ने ऐसी इकाईयों को सामाजिक इकाई के रूप में समाजशास्त्रीय अवधारणा का भाग बनाया है।

अतः समाजशास्त्रीय दृष्टि से निःशक्त सामाजिक इकाईयां उस सामाजिक श्रेणी को निर्मित करती है, जिनमें विभिन्न कारणों से कोई न कोई ऐसी शारीरिक/अंगमूलक कमी उपस्थित हो जाती है जो उनके सामान्य सामाजिक जीवन एवं सम्बन्धित भूमिकाओं को अनेक अवसरों पर प्रभावित करती है। इस सामाजिक स्थिति के फलस्वरूप सामान्य इकाईयों की सामाजिक भूमिका एवं निःशक्त सामाजिक इकाईयों की सामाजिक भूमिका में संरचनात्मक एवं प्रक्रियामूलक विभेद स्थापित हो जाते हैं।

विश्व के प्रत्येक भाग में मानव सभ्यता के प्रारंभ से ही जनसंख्या का एक ऐसा भाग सदैव अस्तित्व में रहा है जो जैविकीय, प्राकृतिक एवं सामाजिक कारकों के कारण अपने शरीर के किसी न किसी भाग को प्रयुक्त करने में असमर्थ अथवा आंशिक असमर्थ होता है। इस असमर्थता के कारण यह जनसंख्या इस शारीरिक सीमितता के फलस्वरूप एक विशिष्ट सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश की रचना कर लेती है। इस जनसंख्या को निःशक्तजन की संज्ञा दी जाती है। जनसंख्या के इस भाग का वैज्ञानिक आलोचनात्मक विश्लेषण निःशक्तजन के समाजशास्त्र की रचना करता है।

इस दृष्टि से शोधार्थी के अनुसार निःशक्तजन का समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की वह शाखा है जो विभिन्न प्रकार की निःशक्त जनसंख्या एवं समाज के मध्य की पारस्परिक अंतःक्रिया व उनके प्रभावों की वैज्ञानिक, वस्तुपरक एंव आलोचनात्मक विवेचना करती है।

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार देश में निःशक्त जनसंख्या 2.68 करोड़ है इसमें दृष्टिबाधित, चलनबाधित, श्रवणबाधित इत्यादि श्रेणी के निःशक्त शामिल है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से जब व्यक्ति में शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक रूप से कोई रोग न हो और वह उपस्थित वातावरण में अपने आप को समायोजित कर लेता है तो वह एक स्वस्थ प्राणी कहलाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (1980) के द्वारा क्षति, अक्षमता एवं निःशक्तता के विषय की चर्चा की गई तथा सबसे पहले क्षति, अक्षमता एवं निःशक्तता के अंतर्राष्ट्रीय वर्गीकरण को प्रस्तुत किया। इसका मुख्य उद्देश्य क्षति, अक्षमता एवं निःशक्तता की संकल्पना, परिभाषा एवं इनके बीच के आपसी सम्बन्धों को बताना था। जब कोई व्यक्ति विभिन्न शारीरिक स्थिति अथवा मानसिक मानदंडों के अनुसार भूमिका निर्वाह में पूर्ण या आंशिक रूप से असमर्थ हो तो वह शारीरिक या मानसिक रुग्ण माना जाता है। इसे दूसरे शब्दों में बीमार भी कहा जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार– 'क्षति शारीरिक संरचना, मनोशारीरिक अथवा शारीरिक क्रियाओं की कमी या असामान्यता होती है'।[1]

मानव शरीर एवं मस्तिष्क जितनी क्षमता अन्य किसी भी जैविक प्राणी में नहीं है। अतः अक्षमता जानने के लिए क्षमता की जानकारी होना जरुरी है। मानव शरीर के किसी भी अंग, तन्त्रिका तंत्र अथवा मस्तिष्कीय भाग के क्षति ग्रस्त होने से उससे सम्बंधित क्रियाओं में अक्षमता आ जाती है तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य में शारीरिक या मानसिक सीमितता के कारण संबंधों व भूमिका निर्वाह में अवरोध आ जाते हैं। ये जन्मजात नहीं होती वरन इससे व्यक्तिगत एवं सामाजिक क्रियात्मक जिम्मेदारी को निभाने में असमर्थता आ जाती है अर्थात् अक्षमता व्यक्ति के पूरे शरीर की कार्य क्षमता की कमी से सम्बंधित है जिसके कारण विभिन्न सामाजिक क्रियाओं के सम्पादन में बाधा आती है।

किसी कार्य को करने के तरीके में सामान्य व्यक्ति जैसी क्रिया एवं सक्रियता नहीं दिखती अर्थात कार्य करने में बाधा या क्षति पहुंचती है। अक्षमता को, विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इस आधार पर, 'अक्षमता मनोवैज्ञानिक, संवेगात्मक या शरीर के किसी अंग की क्षति होती है' के रूप में परिभाषित किया है।

निःशक्तजनकी भौतिक, शारीरिक और मानसिक स्थितियों के साथ–साथ उससे सम्बंधित क्रियाकलापों से उत्पन्न एक प्रकार का जैव–मनो–सामाजिक असंतुलन पूर्ण या आंशिक अवरुद्धता उत्पन्न करताहै जिसका आकलन व्यक्ति एवं संबद्ध समूह कीमनोसामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है जो स्थान, समय, परिस्थिति तथा सामाजिक भूमिका से भी सम्बंधित हो सकता है। अर्थात निःशक्तता व्यक्ति की उस दशा को

व्यक्त करती है जो क्षति एवं अक्षमता के कारण उत्पन्न शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं सम्बंधित भूमिकाओं को सामान्य व्यक्तियों की तुलना में करने में बाधक होती है। अतः निःशक्तता का सामाजिक स्वरूप एक विशिष्ट प्रकृति के सामाजिक वातावरण को परिलक्षित करता है।

व्यक्ति में उम्र, लिंग, सामाजिक, सांस्कृतिक कारकों में क्षति एवं अक्षमता के कारण जो नुकसान या पिछड़ापन हो जाता है, उसे निःशक्तता कहते हैं तथा ऐसी इकाई को निःशक्तजन कहते हैं। इसमें व्यक्ति की जैव–सामाजिक स्थिति एवं समस्त क्रियाओं के साथ सामाजिक क्रियाएं भी बाधित हो जाती हैं जैसे– एक व्हील चेयर का प्रयोग कर रहा निःशक्त व्यक्ति क्योंकि सीढ़ी नहीं चढ़ पाता है,निःशक्तजनकी बाधित भूमिका को व्यक्त करता है। इस स्थिति के कारण वह अनेक क्रियाओं में सहभागिता करने में असमर्थ होता है। टालकट पारसन्स ने ऐसी भूमिकाओं को अस्वस्थ भूमिका (सिक रोल) की संज्ञा दी है।

निःशक्तजनों का समाजशास्त्र एक विस्तृत शाखा के रूप में शोधार्थी की दृष्टि में विस्तार ला सकता है। यदि इसमें सामाजिक निःशक्तजन के पक्षों को सम्मिलत कर लिया जाये। महिलाओं की निर्णय प्रक्रिया में उपेक्षा, तीन से अधिक संतान होने पर स्थानीय चुनाव लड़ने पर प्रतिबंध, दलितों को शिष्ट जीवनयापन के अधिकार न देना इत्यादि ऐसे पक्ष हैं जो संबंधमूलक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक क्षेत्रों में उत्पन्न की गयी निःशक्तता का संकेत करते हैं और विकास की समावेशी प्रक्रिया को एकपक्षीय बना देते हैं। पूरे इतिहास में निःशक्त व्यक्तियों ने कलंक, भेदभाव, आनुवांशिक और पर्यावरणीय बाधाओं में समाज में स्वतंत्र रूप से यथासंभव पूर्ण और उत्पादक जीवन जीने के लिए संघर्ष किया है। अधिकांश कानूनों, नीतियों और प्रथाओं ने निःशक्तजनों को समाज के लिए अनुपयुक्त माना है जो बीमार हैं, कार्यरत रूप से सीमित हैं, और कार्य करने में असमर्थ हैं।

1970 के दशक से निःशक्तजनों में अधिकार चेतना की वृद्धि ने सामाजिक रचना के रूप में निःशक्तता की परिभाषा को पुनः जन्म दिया है। सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और पर्यावरणीय बाधाओं को भौतिक या संज्ञानात्मक अक्षमताओं की वृद्धि के कारकों की व्याख्या के रूप में व्यक्त करने पर जोर दिया गया है। सामाजिक न्याय, सशक्तिकरण, आत्मनिर्भरता और हाशिये वाली जनसंख्या के प्रति प्रतिबद्धता के सामाजिक कार्य के मिशन को ध्यान में रखते हुए अक्षमता के एक महत्वपूर्ण सामाजिक सिद्धांत को निःशक्तता के रूप में प्रतिपादित करने की आवश्यकता है। मानविकी, सामाजिक विज्ञान, और निःशक्तता के विभिन्न पक्षों के अध्ययन के बढ़ते क्षेत्र में उभरती निःशक्तता अध्ययन ने वैकल्पिक ढांचे को

प्रस्तुत किया है। ये सामाजिक विकास में निःशक्तता के पारंपरिक दृष्टिकोण को चुनौती देते हैं और निःशक्तता के वैकल्पिक विश्लेषण की जांच के पक्षधर हैं।

विटकिन ने अपनी पुस्तक 'सोशल कंस्ट्रक्शन एडं सोशल वर्क प्रैक्टिस : इन्टरप्रटेशंस एंड इनोवेशंस' में निर्माणवाद को एक सिद्धांत के रूप में वर्णित किया जो सामाजिक विज्ञान संबंधी संदर्भ और वास्तविकता के विवरण, स्पष्टीकरण और लेखांकन के क्षेत्रों में चल रहे सामाजिक गतिशीलता के आयामों को स्पष्ट करता है। सिद्धांत और सिद्धांतों को समझने के बजाय प्रघटना को निश्चित निष्कर्षों के रूप में समझा जा सकता है। सामाजिक निर्माणवाद में निहित यह विचार है कि ज्ञान एक उद्देश्य इकाई नहीं है, बल्कि सामाजिक निर्माण है। निर्माणवाद उन तरीकों पर विशेष ध्यान देता है जिनमें ज्ञान ऐतिहासिक रूप से स्थित है और सांस्कृतिक मूल्यों और धारणाओं, समाजशास्त्रीय मानदंडों और भाषा में 'एम्बेडेड' है। निर्माणवादी परिप्रेक्ष्य में भाषा एक उद्देश्य 'सत्य' के प्रतिनिधित्व के बजाय अर्थ पैदा करने और ज्ञान उत्पन्न करने के लिए एक विधि के रूप में कार्य करती है। इसलिए एक विज्ञान के रूप में निर्माणवाद, सकारात्मक विज्ञान और वैज्ञानिक जांच के 'मोनोलिथिक' परिदृश्य में बदलाव के माध्यम से सामाजिक विज्ञान के लिए एक स्वतंत्र गुणवत्ता में योगदान देता है।[2]

सामाजिक निर्माणवाद निःशक्तता की समकालीन अवधारणाओं के लिए महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान कर सकता है। अक्षमता के अधिकांश व्यक्तिगत असंगतताओं के मामले यह पहचानने में असफल होते हैं कि विकारों की सबसे अधिक उपस्थिति संस्कृति और समाज से स्वतंत्र नहीं हैं। निःशक्तता की समकालीन भाषा, व्यक्तिगत त्रासदी के अपने व्यक्तिगत प्रतिनिधित्व के साथ बताती है कि निःशक्तता सांस्कृतिक और ऐतिहासिक या अन्य संदर्भों से स्वतंत्र है। जबकि मानव व्यवहार पर समाज और संस्कृति के प्रभाव पर जोर व्यापक रूप से कई अकादमिक क्षेत्रों (जैसे मानव विज्ञान, सांस्कृतिक आलोचना, समाजशास्त्र) में स्वीकार किया गया है। निर्माणवादी परिप्रेक्ष्य का दावा है कि निःशक्तता निःशक्त व्यक्ति के साथ सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण में आती है।

तेजी से उभरते बहुसांस्कृतिक उत्तरी अमेरिका में सामाजिक कार्य सवाल उठाता है कि विभिन्न संस्कृतियों में निःशक्तता को कैसे समझा जाता है। विभिन्न समाजों में शरीर और दिमाग की कमी और उसकी व्याख्या कैसे की जाती है? अक्षमता के सांस्कृतिक अर्थों से प्रभावित व्यक्ति के रूप में व्यक्ति की पहचान कैसी है? सांस्कृतिक संक्रमण की प्रक्रिया कैसे निःशक्तता की स्थानीय समझ को आकार देती है? मापनीय कार्यात्मक सीमाओं के

मामले में अक्षमता की परिभाषा यह पहचानने में विफल रही है कि संस्कृति मानव अवस्था की विविधताओं को पार करती है। कार्यात्मक सीमाओं के उद्देश्य एवं मानदंड इस सवाल का जवाब नहीं देते कि अलग–अलग संस्कृतियों में सामाजिक पहचान के स्रोत के रूप में व्यक्तिगत क्षमता कितनी महत्वपूर्ण है।

निःशक्तता का अनुभव भी संस्कृतियों में भिन्न होता है। उदाहरण के लिए एडगर्टन ने अपनी पुस्तक 'इमेजनैटिव बायोग्राफी' गैर पश्चिमी संस्कृतियों में नकारात्मक भेदभाव, स्वीकृति और अलौकिक शक्तियों के सकारात्मक गुणों से भिन्न व्यक्तिं के प्रति दृष्टिकोण की विवेचना की है।उदाहरण, एक विशेषज्ञ रोटी निर्माता, जिसका पिछला शारीरिक ढांचा और हाथ की लम्बाई में शारीरिक अंतर है, को उनके समुदाय द्वारा विशिष्ट संपत्ति/परिलब्धि के रूप में प्रचारित किया गया जो उन्हें अपने समुदाय में किसी और की तुलना में अधिक कुशल दर पर रोटी का उत्पादन करने की अनुमति देता है।[3]

अक्षमता का मार्क्सवादी विश्लेषण –

कार्ल मार्क्स का मानना था कि मानव समाज की किसी भी समझ को मानव अस्तित्व की भौतिक परिस्थितियों या जीवन की आवश्यकताओं के उत्पादन के अर्थशास्त्र से शुरू होना चाहिए। उत्पादन के आर्थिक तरीके, इसके महत्व के कारण, जीवन के अन्य पहलुओं जैसे राजनीतिक संगठन, विचारधारा, धर्म और संस्कृति को प्रभावित करते हैं। सत्तारूढ़ वर्ग के विचार हर युग में सत्तारूढ़ विचारों के नेतृत्वकर्ता हैं।मार्क्सवादी लेखक निःशक्तता का विश्लेषण उस सामाजिक प्रघटना के रूप में करते हैं जो सीधे उत्पादन के बदलते तरीके से जुड़ा हुआ है।निःशक्तता और अन्य सामाजिक समस्याओं की परिभाषा आर्थिक और सामाजिक संरचनाओं और ऐतिहासिक समय अवधि में मौजूद उत्पादन के विशेष तरीकों के मूल्यों से प्रभावित होती है।निःशक्तता के लिए व्यक्तिगत और रोगविज्ञानी दृष्टिकोण एक श्रमिकों की कार्यात्मक आवश्यकता के कारण उभरा है जो भौतिक और बौद्धिक रूप से औद्योगीकरण की मांगों को पूरा करने में सक्षम है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद सिर्फ ऐतिहासिक स्थितियों में सामाजिक संबंध रखने के बारे में नहीं है। यह पूरे मानव इतिहास पर एक विकासवादी परिप्रेक्ष्य प्रदान करने का भी प्रयास करता है सामंती समाज ने निःशक्तव्यक्तियों को उत्पादन की प्रक्रिया में भाग लेने से बाहर नहीं किया। यहां तक कि उन मामलों में भी जहां वे पूरी तरह से भाग नहीं ले सके। उनके योगदान अभी भी शामिल थे और उन्हें शेष समाज से अलग नहीं किया गया था। पूंजीवाद के विकास ने श्रम के संगठन में आर्थिक परिवर्तन किए, जिससे सामाजिक संबंधों,

पारिवारिक जीवन और दृष्टिकोण पर गहरा प्रभाव पड़ा। औद्योगिक पूंजीवाद ने अक्षम लोगों को श्रम बल में समान भागीदारी से बाहर कर दिया।

निःशक्तता का कोई भी निश्चित मानदंड नहीं है जिसके द्वारा एक विशेष चर की निःशक्तता के कारक, सुरक्षात्मक कारक या संबंधित समस्या के उपाय के रूप में जांच की जाती हो। यह मुद्दा एक तार्किक दुविधा का प्रतिनिधित्व करता है। व्यक्ति, परिवार या सामाजिक संगठन विभिन्न स्तरों पर संभावित व्यवहारों के समावेश के लिए जिम्मेदार होते है।[4]

यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि निःशक्तजन की अधिकांश/समस्त भूमिकाएं अस्वस्थ भूमिका(सिक रोल) की व्यापकता के अंतर्गत आ जाती हैं जबकि प्रत्येक सिक रोल निःशक्तजन से अनिवार्यतः सम्बद्ध हो, आवश्यक नहीं है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से हम निःशक्तजन का वर्गीकरण इस रूप में कर सकते हैं – आयु केंद्रित, शारीरिक और मानसिक निःशक्तता। आयु केंद्रित का वर्गीकरण प्राकृतिक (जन्मजात), किसी कारणवश, अस्वस्थता का परिणाम, दुर्घटना, भावनात्मक दुर्घटना और आक्रोश के रूप में किया जा सकता है। इसी प्रकार से मानसिक निःशक्तता का वर्गीकरण बौद्धिक मंदता और स्मृतिविहीनता के रूप में स्पष्ट होता है।

भारत में जनगणना 2011 के आंकड़ों के अनुसार निःशक्तजन जनसंख्या दो करोड़ अड़सठ लाख है, जिसका 3 प्रतिशत मानसिक मंदबुद्धि का शिकार हैं और आटिज्म अर्थात स्नायु विकार की समस्या से ग्रसितों की भी एक बड़ी संख्या है।

आमतौर पर मानसिक व शारीरिक विकृति के कारण प्रभावित व्यक्ति को व्यवहार जनित समस्याओं या फिर चलने फिरने एवं भाषागत समस्याओं से जूझना पड़ता है, जिसके कारण जानकारी के अभाव में लोग उन्हें पागल घोषित कर देते हैं। उन्हें समझने व उनके साथ सामंजस्य करने की बजाय उनसे दूर रहने का प्रयास करते हैं।यह भी तथ्य है कि जागरुकता की कमी के चलते निःशक्तता से प्रभावित व्यक्ति के परिवार के सदस्य भी उसके प्रति लापरवाह होते हैं और उन्हें भाग्य भरोसे छोड़ देते हैं यह स्थिति परिवार की भूमिका पर सवाल उत्पन्न करती है। इन पक्षों पर समाजशास्त्रीय विमर्श की नितान्त आवश्यकता है।

भारत सरकार इन निःशक्तजन इकाइयों के उत्थान के लिए सतत् प्रयासरत है। इस दिशा में भारत सरकार के अधीन सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय में पारित 99 एक्ट के तहत 'राष्ट्रीय न्यास' समिति गठित की गई है जो मुख्यतः मानसिक मंदता (मेंटल

रिटार्डेशन), प्रमस्तिष्क अंगघात (सेरेबल पालसी),स्वपरायणता (आटिज्म) एवं बहुनिःशक्तता के रूप में इन चार प्रकार की समस्याओं से ग्रसित व्यक्तियों के अधिकार, सुरक्षा एवं पुनर्वास संबंधी मामलों के क्रियान्वयन का परिपालन करती है साथ ही निःशक्तजनों के लिए बाधारहित वातावरण सुनिश्चित करने के कदम भी उठा रही हैं। इस दिशा में राष्ट्रीय न्यास की पहल पर रेल्वे स्टेशनों, विद्यालयों, कार्यालयों व सार्वजनिक स्थलों पर सीढ़ियों के अलावा रैम्प बनवाने, प्रतीक्षालयों व अन्य स्थानों पर उनके बैठने के लिए विशेष प्रकार की कुर्सियों की व्यवस्था करने एवं प्रसाधन गृहों में निःशक्तजनों के लिए विशेष प्रकार के टॉयलेट की व्यवस्था करने के स्थानीय प्रशासन द्वारा निर्देश जारी किये गये हैं। ताकि ऐसे व्यक्ति बाधा मुक्त वातावरण में बिना किसी असुविधा के अपने दैनिक कार्यों को एक सामान्यजन की तरह पूरा कर सकें।

राष्ट्रीय न्यास द्वारा इन निःशक्तजनों के सामाजिक सुरक्षा एवं पुर्नवास की दिशा में 'निरामया' स्वास्थ्य बीमा योजना लागू की गई है जिसमें इनके इलाज हेतु एक लाख रूपये प्रतिवर्ष उपलब्ध कराने का प्रावधान है।

राष्ट्रीय न्यास उन निःशक्त व्यक्तियों के माता और पिता की मृत्यु की दशा में देखभाल और संरक्षण के लिए उपायों का प्रबंधन करती है साथ ही उन निःशक्तजनों के लिए जिन्हें संरक्षण की आवश्यकता है संरक्षक और न्यासी नियुक्त करने की प्रक्रिया तय करती है।

मनुष्य इस संसार का सर्वाधिक विकसित प्राणी माना जाता है। उसके पास सोचने, समझने और करने की जो क्षमता है, वह किसी अन्य जीव की तुलना में अत्यन्त संगठित, संरचित व व्यवस्थित है। अपनी सामर्थ्य से तथा अपनी शक्ति के सदुपयोग से वह दूसरे जीवों/प्राणियों के बहुस्तरीय अभाव को भी दूर कर सकता है। वह अपने मानवीय गुणों तथा परोपकारी वृत्ति के माध्यम से दूसरे में आत्मविश्वास जगाकर उसकी हीनभावना को दूर कर सकता है। यही सामूहिकता का मूल्य है।निःशक्तजन भी हमारे समाज का अंग हैं। उनकी सहायता करना हमारा परम कर्तव्य है जो सामूहिकता के मूल्य को अभिव्यक्त करता है।

निःशक्तजन का अर्थ ऐसे व्यक्ति से है जो किसी अंग के न होने अथवा उसके निष्क्रिय हो जाने पर एक सामान्य व्यक्ति के समान काम नहीं कर सकता। यदि किसी व्यक्ति का कोई अंग कुरूप है, जैसे नाक का टेढ़ा होना अथवा चपटा होना तो यह निःशक्तता का सूचक नहीं हैं। ये सभी कमियां उसके सामान्य रूप में बाधक नहीं है। वह

अपना काम एक सामान्य व्यक्ति के समान कर सकता है। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति दोनों आँखों से अंधा है, दोनों कानों से बहरा है, उसका एक अथवा दोनों हाथ नहीं हैं, एक पैर अथवा दोनों पैर नहीं, तो वह निःशक्तजन कहा जायेगा क्योंकि वह एक सामान्य व्यक्ति के समान न देख सकता है, न सुन सकता है, न कार्य कर सकता है और न चल सकता है। ये समस्त शारीरिक स्थितियां निःशक्तता की सूचक हैं।

निःशक्तता के कई कारण हो सकते हैं। व्यक्ति जन्म से अंधा हो सकता है। अथवा उसका कोई अंग नकारा हो सकता है। इस प्रकार की निःशक्तता प्रायः लाइलाज होती है। इस प्रकार के निःशक्तजनों के जीवनयापन के लिए विशेष प्रबन्ध तथा प्रयत्न की आवश्यकता होती है उदाहरण के लिए अंधों तथा बहरों के लिए विशेष प्रकार के विद्यालय खोले जाएँ। उन्हें पढ़ने के लिए छात्रवृत्तियां प्रदान की जाएं। उनके शिक्षित तथा प्रशिक्षित होने के बाद उन्हें उनके अनुकूल काम सौंपा जाए।

निःशक्तता वह होती है, जो किसी प्राकृतिक प्रकोप जैसे बाढ़, भूचाल, आंधी तूफान अथवा आकस्मिक दुर्घटना आदि के कारण उत्पन्न होती है। इनमें से कुछ निःशक्तता ऐसी होती हैं जिनका इलाज सम्भव होता है। ऐसे व्यक्तियों का इलाज कराने के लिए हम भौतिक एवं अन्य संसाधान उपलब्ध करवाकर उनकी सहायता कर सकते हैं। उनके लिए कृत्रिम अंगों के प्रत्यारोपण की भी चिकित्सामूलक व्यवस्था अनेक नगरों में उपलब्ध है।

भारत में निःशक्तता की समस्या एक स्तर पर जटिल प्रघटना कही जा सकती है। निर्धनता इसका प्रमुख कारण है। जन्म के बाद कुपोषण के कारण बहुत से बच्चे अंधेपन तथा पोलियो का शिकार हो जाते हैं। उनके इलाज की उपयुक्त व्यवस्था नहीं हो सकती। यही कारण है कि सहायता के अभाव में निःशक्तजनों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। निर्धनता, कुपोषण, अन्ध आस्था आदि ने इस प्रघटना को जटिल बनाया है।

भारतीय नागरिकों में भी अन्य देश के नागरिकों की भांति सभ्यता और शिष्टाचार समय, स्थान और समूह सापेक्ष है। वे निःशक्तजनों के प्रति सहानुभूति दिखाना तथा मानवीय व्यवहार करने की बजाय उनसे असमानतामूलक व्यवहार एवं व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हैं। उनकी हंसी उड़ाई जाती है तथा उन्हें आरोपित (स्टिगमा) करते हैं। उनको उपेक्षा तथा घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। उससे निःशक्तजनवंचन एवं हीन भावना का शिकार होते हैं उनमें निराशा फैल जाती है। इस तरह का दृष्टिकोण निःशक्तजन के लिए हताशा का आधार बन जाता है।

निःशक्तजन अपेक्षा करते हैं कि सामान्य सामाजिक इकाइयां एवं राज्य निःशक्तजनों के प्रति अपना दृष्टिकोण बदलें। उनके प्रति मानवीयता का परिचय दें। उनमें नीहित हीन भावना को दूर कर उनमें आत्म विश्वास जगाने हेतु सामूहिक प्रयास करें। उनके पुनर्वास के लिए प्रयत्नशील रहें। उन्हें यह अनुभव कराया जाए कि वे भी समाज का एक सक्रिय अंग हैं। उन्हें भी एक सामान्य नागरिक के समान अधिकार प्राप्त हैं। वे भी मतदान करके राष्ट्र के निर्माण में सहायक बन सकते हैं। वे भी अपनी उपलब्धियों के पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

निःशक्तजनों के पुनर्वास के लिए यह जरूरी है कि उन्हें दूसरों के समान रोजगार तथा वेतन आदि दिये जाएं। ऐसा करना कठिन अवश्य है, क्योंकि यहाँ पढ़े लिखे सामान्य युवकों के लिए ही रोजगार उपलब्ध नहीं है, फिर भी उनके लिए कुछ स्थान आरक्षित किये जा सकते हैं। उनके लिए सरकार रोजगार के विशेष साधन उपलब्ध कराये। वे जो काम अपनी क्षमतानुसार कर सकते हैं, उन्हें उन कामों में लगाया जाये।उदाहरण हेतु बहरा व्यक्ति कई काम कर सकता है। लंगड़ा व्यक्ति हाथों की सहायता से काम कर सकता है। अंधा व्यक्ति सूत कात सकता है और रस्सी बुन सकता है। कुछ ऐसे भी काम हैं जिन्हें निःशक्तजन एक दूसरे की सहायता से भी कर सकते हैं। कुछ कार्य क्षेत्र ऐसे भी हैं, जिनमें निःशक्तजन स्वस्थ व्यक्ति से भी अधिक सफल हो सकते हैं।

निःशक्तजनों की सहायता के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है। इस दिशा में संयुक्त राष्ट्र संघ अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा भी चुका है। उसके तत्वावधान में 1981 के वर्ष को निःशक्तजन कल्याण वर्ष के रूप में मनाया जा चुका है। इससे निःशाक्तजनोंके प्रति समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है। भारत सरकार भी निःशक्तजनों की दशा सुधार करने हेतु प्रयत्नशील है।

हमें यह स्वीकार करना होगा कि निःशक्तजन भी समाज का अंग हैं। जिस देश में जितने अधिक निःशक्तजन होंगे, वह देश विकास की मंद व असंतुलित गति का भाग बनेगा। अतः देश एवं देश के नागरिकों का यह परम दायित्व है कि निःशक्तजनों की दशा सुधारने के लिए भरसक प्रयत्न करें।

प्रायः निःशक्तता एक प्राकृतिक अथवा जैनेटिक यथार्थ है। परिवार निःशक्त इकाईयों को 'सामाजिक भार' के रूप में महसूस करता है। यह इस कारण समाज को चुनौती है, परिवार पर बोझ है। यह बताया जा चुका है कि निःशक्तजन वह होता है जिसके शरीर का कोई अंग या तो जन्म से ही नहीं होता है (जैसे किसी के दो की बजाये एक गुर्दा हो)अथवा

उसका अंग स्वस्थ न होकर दोषपूर्ण हो (जैसे अंधों, गूंगे–बहरों, लूले–लंगड़ों इत्यादि)को निःशक्तजन कहा जाता है। कुछ निःशक्तजन ऐसे भी होते हैं जिनके शरीर के काम करने वाले अंग तो सामान्य और स्वस्थ होते हैं, सुचारू ढंग से काम करते हैं परन्तु उनमें मानसिक विकृति होती है, उनका बौद्धिक विकास अधूरा रहता है वे पूरी तरह पागल तो नहीं होते पर अर्ध विक्षिप्त होने के कारण सामान्य/स्वस्थ व्यक्तियों की तरह काम नहीं कर पाते। कुछ बच्चे टेढ़े अंगवाले होते हैं अतः वे उठने–बैठने में असमर्थ होते हैं। कुछ बच्चों के शरीरांग पशु–पक्षियों जैसे होते हैं। इन्हें समाज के अनेक समूह प्रकृति के क्रूर उपहास की संज्ञा देते हैं।

निःशक्तता का कारण दुर्घटना भी है, जिसमें व्यक्ति जन्म से तो स्वस्थ होता है, उसके शरीर में सब अंग सामान्य व्यक्तियों के समान होते हैं पर किसी दुर्घटनावश वे अपंग हो जाते हैं। किसी की टांग रेल के पहिये के नीचे आ जाती है और उसे पैर काटना पड़ता है, किसी का हाथ चारा काटने की मशीन में आ जाता है तो किसी की आँख में तेजाब पड़ जाने से वह अन्धा हो जाता है।ऐसा निःशक्त समूह सामाजिक कारकों विषेषतः व्यवहारमूलक असावधानियों का परिणाम है।

निःशक्तता का कारण सामाजिक अंधविश्वास भी है। चेचक निकलने पर उसे माता का प्रकोप मानकर समुचित इलाज नहीं कराया जाता और उसकी आँखें चली जाती हैं। निःशक्तजन व्यक्ति शारीरिक और मानसिक कष्ट भोगता है। अंधा व्यक्ति कमरे की चार दीवारी में अकेला पड़ा रहने को विवश है, कोई काम–काज नहीं, मनोरंजन का साधन नहीं, अपने माता–पिता, भाई–बहन की सूरत तक देखने में वह सक्षम नहीं है। उसके पास बुद्धि है, शरीर के अन्य अवयव भी पुष्ट हैं पर नेत्रों में ज्योति न होने के कारण वह अनेक भूमिकाओं का निर्वाह नहीं कर सकता। गूंगा बोल न पाने के कारण, बहरा सुन न पाने के कारण कैसा अनुभव करता होगा, उसे कितनी पीड़ा एवं कुंठा होती होगी, इसकी कल्पना कोई भी सामान्य इकाई भली–भाँति कर सकती है। फिर यदि परिवार के अन्य सदस्य उसे भार समझ कर उसके प्रति दुर्व्यवहार करें, उसकी उपेक्षा करें, समाज उसे बोझ समझ कर उसका तिरस्कार करे, विभिन्न समूहों से सम्बद्ध व्यक्ति उससे घृणा करें, उसका मजाक उड़ायें, उसको गालियाँ दे तो उसका जीवन अनेक मनो–सामाजिक–सांस्कृतिक समस्याओं का शिकार हो जाता है।

प्राचीन काल में निःशक्तजन को ईश्वर का प्रकोप या प्रकृति का उपहास समझ कर उसके प्रति दया का भाव अपनाया जाता था। उसकी स्थिति वैसी ही थी जैसी तुलसी ने

विनयपत्रिका के एक पद में भगवान के सामने भक्त की बताई है –'तू दयालु दीन हो तू दानी हो भिखारी'। वह करुणा, दया, सुहानुभूति का पात्र समझा जाता था और उसके साथ वही व्यवहार किया जाता था जिसमें कोई उदार,दानी, भिखारी के साथ करता था। समाज के ऐसे व्यवहार से वह जीता तो था, परन्तु भावुक, संवेदनशील मन को कितना आघात लगता होगा, इसकी कल्पना आज की मनोविज्ञान चेतना के संदर्भ में सहज ही की जा सकती है।

प्राचीन हिन्दू शास्त्रीय साहित्य में निःशक्त के विषय में अनेक मतों की उपस्थिति की चर्चा की जा सकती है। उदाहरण के लिए रामचरित मानस में विशेष योग्यजन के बारे में कहा गया है कि –

मूक होई बाचाल, पंगु चढ़ई गिरिबर गहन।

जासु कृपां सो दयालु द्रवउ सकल कलि मल दहन।[5]

(श्रीरामचरितमानस, पृ.सं. 117)

अर्थात् जिसकी कृपा से गूंगा बहुत सुन्दर बोलने वाला हो जाता है और लंगडा–लूला दुर्गम पहाड़ पर चढ़ जाता है। वे कलयुग के सब पापों को जला डालने वाला दयालु (भगवान) मुझ पर द्रवित हो (दया करें)।

तुलसीदास जी द्वारा रचित रामचरित मानस ग्रन्थ में विशेष योग्यजनों के सम्बन्ध में भावुकता केंद्रित विश्लेषण प्रस्तुत किया है साथ ही ईश्वरीय शक्ति को निःशक्तता के कारण के रूप में तथा इसके समाधान के रूप में रेखांकित किया गया है। समाजशास्त्र में दुरखाइम के दृष्टिकोण में ईश्वर वास्तव में समाज ही है। सामूहिक चेतना एवं समाज की सर्व–व्यापक स्वीकृति को ही ईश्वर की संज्ञा दी जाती है। इसे दुरखाइम ने अपने विश्लेषण में सामूहिक प्रतिनिधान के रूप में भी वर्णित किया है। दुरखाइम के अनुसार ईश्वर की शक्ति वस्तुतः एक समाज की शक्ति है, क्योंकि समाज ही वास्तविक देवता है। ईश्वर की शक्ति में परोक्ष रूप से समाज की शक्ति ही कार्य करती है। इसलिये सामाजिक दृष्टि से निःशक्तानों को संरचनात्मक दृष्टि से सामान्य सामाजिक तथ्य के रूप में स्वीकारना चाहिए। दुरखाइम की यह दृष्टि तुलसी के ईश्वरीय पक्षों से भिन्न एवं विपरीत है।

निःशक्तता को एक दृष्टि से निर्योग्यता के समक्ष रखा जा सकता है जो कि एक जटिल एवं विस्तृत अवधारणा है। यह व्यक्ति के शरीर की विशेषताओं तथा समाज की विशेषताओं के बीच की अंतः क्रियाओं को अभिव्यक्त करती है। यह दरअसल, व्यक्ति की

क्षमताओं के प्रकारों में होने वाली विकृति या असामान्यता को व्यक्त करती है। इसकी तीव्रता हल्की, मध्यम और तीव्र/गंभीर तक हो सकती है। एक व्यक्ति में एक से अधिक (बहु) निःशक्तता भी संभव है। निःशक्तता के कई कारण हो सकते हैं– जन्मजात, विकृति, बीमारी या दुर्घटना।

पृथ्वी पर संसार में प्रत्येक प्राणी विविध समानताएं रखते हुए भी एक दूसरे से भिन्नता रखता है। यही स्थिति मानव–प्राणी की भी है कि समरूपताओं के होते हुए भी प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से भिन्न है। जीवन के उज्जवल एवं कालिमामय रूप के समान ही स्वस्थ–अस्वस्थ, सबल–निर्बल, मेधावी–मंदमति, शारीरिक दृष्टि से पूर्णतया सक्षम, योग्य अथवा किसी न किसी बाधायुक्त निःशक्तता इत्यादि विविधताओं से युक्त विभिन्न प्रकार के प्राणी इस जगत में विद्यमान हैं।

समाज में बहुस्तरीय असमानताएं, विषमताएं और अंतर्भेद व्याप्त हैं, ये संस्तरण मानव–मस्तिष्क की ही उपज है। इसने धन, प्रतिष्ठा एवं शक्ति के आधार पर उच्च–निम्न, धनी–निर्धन, समर्थ–वंचित इत्यादी के दायरे बना लिये हैं। अन्यथा प्रकृति तो सभी को विकास हेतु समान अवसर प्रदान करती है। धरा, आकाश, वायु, प्रकाश, जल एवं अन्य संसाधन किसी के एकाधिकार में न होकर सबके लिए ही हैं। जहां तक अधिकारों का, अवसरों का प्रश्न है, नैसर्गिक रूप से सबको समान अधिकार प्राप्त हैं किंतु मनुष्य अपने लाभ के लिए दूसरों के हितों पर अधिकार कर बैठता है। उनके बल पर प्रगति करता है। ऐसी स्थिति में दूसरों के लिए समाज में उपयुक्त स्थान प्राप्त करना कठिन ही नहीं, दुष्कर हो जाता है। व्यक्ति चाहे शारीरिक रूप से निःशक्तजन है अथवा मानसिक रूप से, वह स्वयं निर्दोष है। क्योंकि कैसा भी निःशक्तजन हो यह व्यक्ति की स्वयं की त्रुटि या दोष के परिणाम स्वरूप न होकर, कोई भी रोग अथवा दुर्घटना का परिणाम है जिससे बालक या व्यक्ति दुर्बल, कुरूप, अपंग, मंदमति अथवा अक्षम हो सकता है।

स्पष्ट है कि निःशक्तता के लिए व्यक्ति स्वयं उत्तरदायी नहीं वरन् उस समाज के सामाजिक आर्थिक कारक जैसे – विपन्नता, कुपोषण, कमजोर आर्थिक स्थिति, बेरोजगारी, बढती जनसंख्या तो दूसरी ओर सिमटते साधन, धार्मिक एवं अंधविश्वासी दृष्टि, नियति, वरदान और अभिशाप, पाप एवं पुण्य तथा पुर्नजन्म इत्यादि निःशक्तता के लिये उत्तरदायी है। यह दृष्टि वैज्ञानिक या यथार्थ परक नहीं है। निःशक्तजनों के प्रति दया, करूणा की भावना प्रदर्शित करने का आधार बनती है जबकि वैज्ञानिक दृष्टि सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना चाहिए, को आधार मानते है जिससे निःशक्तजनों में नीहित प्रतिभा और

क्षमता को विकसित होने के समुयुक्त अवसर प्राप्त हो सकें, उनमें हीनभावना के विपरीत स्वावलम्बन की भावना का संचार हो सके।[6]

हमारे देश में सावधानियों के बावजूद भी निःशक्तजनों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। निःशक्तता चाहे किसी दुर्घटनावश हुई हो, कुपोषण के कारण अथवा अभिभावकों की असावधानीवश, जन्म से ही हो अथवा जन्मोपरांत आज भी समाज में इसके बारे में नकारात्मक सोच व्याप्त है। यह दृष्टि पूर्वाग्रही है क्योंकि समाज में वैज्ञानिक सामाजिक चेतना व तार्किक जागरूता का अभाव है।

अतः किसी भी देश अथवा समाज को अपने सभी नागरिकों को चाहे वे प्रतिभावान हों अथवा मंदमति, स्वस्थ हो या अस्वस्थ, सामान्य हों अथवा निःशक्तजन, के बहुमुखी विकास हेतु प्रयास करने चाहिए जिससे सामान्यों के साथ– साथ अन्य श्रेणियों के बालक भी सहज सामान्य रूप से जीवन यापन करने में समर्थ हो सकें। इस दिशा में देश–विदेश में अनेक प्रयास किये गये हैं किंतु निःशक्तता आज भी मानव समाज एवं विश्व के समक्ष एक जटिल विषय व एक ज्वलंत मुद्दा बनी हुई है।

निःशक्त व्यक्ति प्रकृति और समाज दोनों के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता। ऐसे व्यक्ति को जहां अपनी निःशक्तता को स्वीकार करना पडता है, वहीं परिस्थितियों से अनुकूलन स्थापित करने को बाध्य होना पड़ता है, साथ ही सामाजिक वातावरण से भी अनुकूलन की उसकी बाध्यता है। निःशक्त व्यक्ति चाहे शारीरिक दृष्टि से अक्षम हो अथवा मानसिक दृष्टि से उसे अपने साथी व्यक्तियों, जिनके सम्पर्क में वह आता है उनसे उसे अपने परिवार, समुदाय, विद्यालय, मित्र के साथ सामंजस्य करने के लिये विवश होना पडता है।

निःशक्तता के परिणामस्वरूप वह अपनी सीमित भागीदारी के कारण, स्पर्धा में उनसे पिछड़ जाने के कारण, आत्मविश्वास के अभाव, हीन भावना तथा उपहास के भय के कारण एवं सामाजिक एवं संवेगात्मक तनाव के प्रभाव के फलस्वरूप अधिक वंचित, कुंठित एवं तनावग्रस्त अनुभव करता हैं। समाज उन्हें परिवार सहित विभिन्न सम्बद्ध समूहों पर भार स्वरूप, अनुपयोगी, परजीवी स्वीकार कर दया, करूणा एवं उपेक्षा का पात्र मानता है। अतः व्यक्ति की शारीरिक अथवा मानसिक निःशक्तजन से भी अधिक सामाजिक, उपेक्षा संवेगात्मक दृष्टि से तनावयुक्त वातावरण एवं आश्रितता उनके जीवन को दुष्कर एवं नारकीय बना देती है। परिवार के सहज स्नेह से वंचित, समवयस्क संगी साथियों की संगति, हास परिहास, खेल आदि के उत्साह– उमंग एवं आनंद से वंचित निःशक्तजन

बालक एकाकी, अंतर्मुखी प्रकृति की विशेषताओं के साथ के निष्क्रिय इकाई के समान हो जाते हैं जो कि समाज के लिए विकास की दृष्टि से प्रतिकूल है।

अतः किसी भी समाज के लिए आवश्यक है कि निःशक्त बच्चों के लिए सामाजिक, सांस्कृतिक अतःक्रियाओं एवं शैक्षिक विकल्पों के द्वार खुले हों, जहां निःशक्तजन इकाईयॉ निःशक्तता की सीमाओं को स्वीकारते हुये अपनी सापेक्षिक क्षमता एवं योग्यतानुसार जीवन जियें। ऐसे प्रयास आवश्यक है जिनसे वे अपनी निःशक्तता को प्राकृतिक एवं परिस्थितिजन्य देन के रूप में स्वीकार न करके, उसे सहज रूप से स्वीकारते हुये स्वावलम्बी एवं उत्तरदायी नागरिक बनें। उनमें दया नहीं अपितु आशा एवं विश्वास के साथ जीवन को आत्म–सम्मान के साथ जीने की आकांक्षा विकसित की जाए, तो कोई कारण नहीं कि वे स्वयं को निष्क्रिय, दीनहीन, परजीवी, पराश्रित, तिरस्कृत एवं उपेक्षित समझें।[7]

भारतीय समाज में परम्पराओं की प्रमुखता के कारण निःशक्तता को दैवीय अभिशाप एवं नियति के क्रूर आघात के रूप में माना जाता है किंतु सत्य तो यह है कि निःशक्तजन होना न तो स्वयं बालक के लिए न माता–पिता के लिए कोई पाप अथवा कोई सामाजिक अपराध है। इस मानसिकता से मुक्त कराने हेतु जनमानस में सामाजिक चेतना का विकास किया जाना आवश्यक है कि निःशक्तता सम्बद्ध इकाई की विभिन्न सक्रिय गतिविधियों में भागीदारी को कुछ सीमा तक परिसीमित कर देती है, निःशक्त भी एक विवेकशील प्राणी है, उसमें भी अनंत संभावनाएं छिपी रहती हैं। यह तभी संभव है जबकि निःशक्तजन बालक उसके माता–पिता परिवारीजन एवं समाज को इन संभावनाओं से अवगत कराया जाए। निःशक्तजनों की शारीरिक एवं मानसिक दशाओं के अनुरूप ही उनकी आकांक्षाएं हो, वे जीवन में विषम परिस्थितियों का साहस से सामना करते हुए सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण में समायोजित हो सकें।

इस पृष्ठभूमि के साथ वर्तमान अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि निःशक्त बालकों की आकांक्षाएं, व्यक्तित्व, समायोजन, शैक्षिक उपलब्धि एवं विभिन्न समस्याएं क्या हैं? और कहां तक इन समस्याओं का निराकरण अथवा इन्हें कम किया जा सकता है। निःसंदेह शोध का विषय यह देखना है कि निःशक्तजनों के लिए सरकार एवं स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा प्रदत सुविधाएं और अवसर क्या–क्या हैं? निःशक्तजन बालकों एवं इनके परिवारजनों को इनकी जानकारी कहां तक है और वे इन सुविधाओं का उपयोग कर भी पाते हैं अथवा नहीं ?

इस शोध में निःशक्त बालकों की समस्याओं को शोध का विषय बनाया गया है ताकि विभिन्न पक्षों की गहनतामूलक जानकारी कर उनकी समस्याओं का विश्लेषण कर समाधान प्रस्तुत किये जा सकें। ताकि उन्हें समाज के समक्ष आत्मनिर्भर एवं उपयोगी नागरिक बनाया जा सके। प्रशासन, अभिभावक, विभिन्न स्वैच्छिक संस्थाएं सभी मिलकर यदि निःशक्त बालकों को समाज की मुख्य धारा से जोडने हेतु प्रभावी कदम उठाये तो राष्ट्र का एक बडा हिस्सा आत्म–विश्वास, स्वस्थ दृष्टिकोण, जीवन के प्रति आशांवित होकर कुशल एवं सुयोग्य जन शक्ति के रूप में परिणत हो सकेगा।

निःशक्त जनसंख्या को समाज के प्रकार्यात्मक सदस्यों के रूप में सक्रिय करने के उद्देश्यों और उनकी विकास में सहभागिता की सम्भावनाओं को दृष्टिगत रखते हुए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वर्ष 1981 को अंतरराष्ट्रीय निःशक्त वर्ष के रूप में अनेक घोषणाओं के साथ मनाया गया। फलतः निःशक्तजनों की शिक्षा एवं उनके पुनर्वास पर अधिकाधिक ध्यान केन्द्रित किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस दृष्टि से अनेक लक्ष्य निर्धारित किये जिनमें से प्रमुख लक्ष्य निम्नानुसार है :–

1. निःशक्तजनों को अधिक से अधिक सहायता देना। निःशक्तजनों को प्रशिक्षण देने, देखरेख करने एवं परामर्श हेतु राष्ट्रीय स्तर पर विविध प्रयास करना जिससे उन्हें प्राप्त हो सकने वाले अवसरों का समुचित प्रयोग हो सके।

2. निःशक्तजनों के आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन के विभिन्न पक्षों में भाग लेने, उनके योगदान और अधिकारों के संबंध में सामान्य जनता को अवगत कराना।

संयुक्त राष्ट्र संघ की घोषणाओं के अनुसरण में भारत सरकार ने कुछ लक्ष्य निर्धारित किये हैं –

1. कानून के अधीन निःशक्तजनों को पूर्ण सुरक्षा प्रदान करने, उन्हें प्रशिक्षण एवं रोजगार प्रदान करने तथा उनकी सहभागिता के विस्तार हेतु राष्ट्रीय नीति पर विचार करना।

2. निःशक्तजनों की अधिकतर संख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है और वर्तमान में सभी अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम नगरों पर ही आधारित हैं। अतः अधिक से अधिक निःशक्तजनों को नगरों में पुनर्वासित करना अथवा महानगरों में जहां उन्हें पुनर्वास सेवाओं के लाभों की प्राप्ति एवं सुरक्षा प्राप्त हो सके, इसकी व्यवस्था करना।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार सम्पूर्ण जनसंख्या का लगभग 10 प्रतिशत बालक जन्मजात अथवा जन्मोपरांत शारीरिक या मानसिक निःशक्तता से ग्रसित हो जाते हैं। अल्पविकसित व विकासशील राष्ट्रों में तो यह प्रतिशत तुलनात्मक रूप से अधिक है अर्थात् 14 से 20 प्रतिशत तक है। निःशक्तजनों की शिक्षा एवं विकास का प्रश्न सदैव ही विचारणीय रहा है। प्रायः निःशक्तजनों एवं मानसिक रूप से दुर्बलों ने अपनी जीवन बाध्यता द्वारा अनुभव की जा रही समस्या की जटिलता की ओर ध्यान आकर्षित किया। यदि अतीत देखें तो प्राचीन ग्रीक शिक्षा के आदर्श इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। स्पार्टा निवासी अयोग्य, दुर्बल एवं शिशुओं को सह नहीं पाते थे और न उनसे कोई समझौता करते थे। उनकी शिक्षा का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता था। उनकी उपेक्षा, तिरस्कार, अनादर की चरम सीमा ही तो थी कि वे ऐसे शिशुओं को जन्म होते ही मार डालते थे। उनके मतानुसार अपंग, कुरुप बालक ईश्वर का शाप हैं। देश के सैन्यकरण की दृष्टि से केवल स्वस्थ, सुंदर, सुडौल एवं शक्ति सामर्थ्य से युक्त बच्चे ही मानव जीवन हेतु स्वीकृत किये जाते थे।[8]

कालान्तर में वैचारिक क्रान्ति आयी। ग्रीक अवधारणा के विपरीत अमेरिकावासी किसी भी बालक को जीवन से वंचित करना कदापि श्रेयस्कर नहीं मानते थे चाहे वह बालक निःशक्तजन ही क्यों न हो। इस विचारधारा के अनुरूप प्रत्येक बालक को उसकी योग्यतानुसारं विकसित होने के लिए व्यापक शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। किसी भी मानव प्राणी को उसकी अधिकतम अभिवृद्धि एवं विकास से इन्कार करना अक्षम्य अपराध है, पाप है।

ऐतिहासिक दृष्टि से एथेन्स ही वास्तव में ऐसा प्रथम राज्य था जो उच्च कोटि के मानवतावाद के लक्ष्य को अनुभव करके पूर्णमानव–बुद्धिमान, सुंदर, गुणवान के निर्माण हेतु उद्देश्यपूर्ण शिक्षा तथा स्वतंत्र रूप से व्यक्ति द्वारा अपनी योग्यताओं, क्षमताओं के विकास पर बल देता था। इसी कारण वहां प्राथमिक शिक्षा का लोकतंत्रीकरण किया गया और निजी शिक्षा–संस्थानों को प्रोत्साहित किया गया। समाज के विभिन्न अभिकरणों, संस्थाओं एवं वर्गो के पारस्परिक सहयोग पर बल दिया गया। इस धारणा को मान्यता दी गई कि व्यक्ति वैचारिक व सांस्कृतिक दृष्टि से अधिक एक चेतन प्राणी है। उसे यथार्थ में जो कि वह बनने योग्य है या बनने का इच्छुक हैं, बनने दें।[9]

निःशक्तता के प्रकार –

निःशक्तता की तीव्रता एवं गंभीरता के अलावा शारीरिक संवेदी या मानसिक दृष्टि से निःशक्तता के अनेक प्रकार देखे जा सकते हैं –

1. **शारीरिक निःशक्तता** – अंगों के प्रमापों में विकृति–हड्डी में दोष या तांत्रिक क्षमता में दोष शारीरिक निःशक्तता कहलाती है।

2. **संवेदी निःशक्तता** – किसी एक संवेदी ग्रथि (जैसे दृष्टि, श्रव्य, घ्राण इत्यादि) में विकृति संवेदी निःशक्तता कहलाती है। संवेदी निःशक्तता सामान्यतया दृष्टि एवं श्रव्य विकृति के लिए प्रयुक्त होती है लेकिन अन्यसंवेदी ग्रन्थियों में भी विकृति हो सकती है।

3. **दृष्टि विकृति** – देखने की क्षमता में ऐसी कमी जिसमें व्यक्ति को किसी सहारे की आवश्यकता होती है। चिकित्सीय भाषा में दृष्टि विकृति का पैमाना 20/60 माना जाता है। एकपक्षीय दृष्टि दोष जो कांट्रास्ट को कम कर देती है, दृष्टि विकृति में शामिल होती है।

4. **श्रवण विकृति** – सामान्य व्यक्ति द्वारा सुनी जा सकने वाली ध्वनि को सुनने में असमर्थता या कठिनाई श्रवण दोष या बहरापन कहलाती है। लेकिन कम बहरापन श्रवण विकृति में शामिल नहीं किया जाता है।

5. **घ्राण एवं स्वाद विकृति** – घ्राण एवं स्वाद ग्रन्थियों की संवेदनाओं में कमी प्रायः बढ़ती उम्र के साथ देखी जा सकती है, लेकिन अन्य कारणों से भी घ्राण एवं स्वाद संवेदनाओं का ह्रास निःशक्तता को उत्पन्न करता है। इसके कई प्रकार हैं –

   (i) अनोस्मिया – घ्राण शक्ति का नाश

   (ii) डिसोस्मिया – त्रुटिपूर्ण घ्राण संवेदना

   (iii) हाइपोस्मिया – घ्राण शक्ति की क्षमता में कमी

   (iv) हाइपरोस्मिया – असाधारण रूप से तीव्र एवं असामान्य घ्राण संवेदना

   (v) ओ.आर.एस. – शरीर में तेज बदबू का एहसास कराने वाला मनोवैज्ञानिक रोग।

   (vi) फैन्टोस्मिया – विभ्रांतिपूर्ण घ्राण संवेदनाओं प्रायः अरूचिपूर्ण होती है।

   (vii) डिस्ज्यूसिमा – स्वाद संवेदना का अपूर्ण नाश होना।

   (viii) एजियूसिया – स्वाद संवेदना का पूर्ण नाश होना।

6. **सोमैटो–सेंसरी विकृति** – स्पर्श, गर्म, ठण्डा एवं पीढ़ा जैसे उत्तेजना के प्रति असंवेदना जिसमें कुछ मात्रा में मोटर न्यूरल–पैरालाइसिस भी होता है।

6. **संतुलन असामान्यता** – इस विकृति में व्यक्ति सीधे खडे रहने या चलने में कठिनाई महसूस करता है। इसमें व्यक्ति को गति या घुमाव या चक्कर का अनुभव होता है। वास्तव में संतुलन शरीर की कई उपप्रणालियों के एक साथ काम करने का परिणाम है। शरीर के साथ आँख, कान एवं स्थानीय–प्रणाली संतुलन कायम रखते हैं।

7. **बौद्धिक निःशक्तता** – यह विस्तृत संकल्पना है जो मानसिक मंदता से लेकर संज्ञानात्मक कमी तक के कई स्तरों को अभिव्यक्त करती है। यह व्यक्ति की किसी भी आयु में हो सकती है। पश्चिमी देशों में मानसिक मंदता को ही बौद्धिक निर्योग्यता कहा जाता है।

8. **भावनात्मक निःशक्तता** – यह व्यक्ति में मनोवैज्ञानिक या व्यवहारात्मक प्रतिमानों की असफलताओं के फलस्वरूप उत्पन्न असामान्यता है, जो सामाजिक–सांस्कृतिक असमायोजन में कठिनाई पैदा करती है। कई बार मानसिक नियोग्यताओं के कारण भी यह अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

9. **विकासात्मक निःशक्तता** – यह संवृद्धि एवं विकास संबंधी स्तरों में असामान्यता का परिणाम है। इसे कई बार जन्मजात निःशक्तता को अभिव्यक्त करने के लिए भी प्रयुक्त किया जाता है।

10. **गैर–अवलोकनीय निःशक्तता** – कई गंभीर बीमारियाँ जैसे–डायबिटीज, अस्थमा, मिर्गी इत्यादि एवं इनके परिणाम गैर–अवलोकनीय निःशक्तता में शामिल किए जाते हैं। क्योंकि ये सीधे तौर पर तो दृष्टिगत नहीं होती लेकिन ये व्यक्ति को निःशक्त जैसा बना देती हैं।[10]

श्रवण निःशक्तजन –

किसी व्यक्ति द्वारा पूरी तरह से आवाज सुनने में अक्षम होना श्रवण–निःशक्तजन कहलाता हैं। यह श्रवण अंगों के अपर्याप्त विकास के कारण, श्रवण संस्थान की बीमारी या चोट लगने की वजह से हो सकता हैं। सुनना, सामान्य वाचन एवं भाषा के विकास के लिए प्रथम आवश्यकता हैं। बच्चा, परिवार या आसपास के वातावरण में लोगों की बोली सुनकर ही बोलना सीखता है।

बधिरता एक अदृश्य दोष हैं। एक व्यक्ति या बच्चे के बहरेपन को पहचानने के लिए सूक्ष्म निरीक्षण की आवश्यकता होती हैं। जन्म के समय एवं शैशवावस्था में बहरापन बच्चे के

संपूर्ण विकास पर गलत प्रभाव डालता हैं। यह प्रभाव, निःशक्तजन की प्रभाव भिन्नता प्रारम्भिक आयु, स्वरूप और श्रेणी पर निर्भर है।

श्रवण निःशक्तजन के प्रकार –

1. चालकीय श्रवण दोष –

यह मध्यकर्ण एवं कान के बाहरी हिस्से में खराबी के कारण होता हैं। आवाज कान के अन्दर तक ठीक से नहीं पहुँचती हैं। सामान्यतः इस प्रकार के लोग अपने वातावरण की आवाजों का ध्यान रखें बिना नरम आवाज में बोलते हैं।

कान की नली में वैक्स का होनाबाह्यकर्ण एवं मध्यकर्ण की बीमारियाँ, कान का बहना एवं कान में दर्द के लक्षणों के साथ कान के बाह्यकर्ण एवं मध्यकर्ण में जन्मजात दोष या क्षति, ऊपरी संबंधित शरीर में संसर्ग, मुँह के खड्डों एवं कान की देखभाल न करना आदि इसके लक्षण हैं।

2. संवेदनिक श्रवण दोष –

यह कान के अन्दरूनी हिस्सों में या श्रवण स्नायु में चोट लगने या बीमारी के कारण होता हैं। यह कुछ बीमारियों के प्रभाव के कारण भी होता हैं। जैसे कि खसरा, गलगंड, मस्तिष्कज्वर, क्षय जैसे रोग होते हैं। कुछ कारण जिनकी वजह से जन्मजात संवेदनिक श्रवण दोष उत्पन्न हो जाते हैं। इन दोषों में शैशवावस्था से अनुवंशिक बधिरता, आर. एच. अपरिपूर्णता, समय से पहले जन्म, जन्म के समय श्वासावरोध, जन्म होते समय ऑक्सीजन की कमी के कारण बच्चे का नीला पड़ जाना, गर्भावस्था में वायरल संक्रमण, गर्भावस्था या गर्भावस्था के प्रथम तीन माह के दौरान एक्स–रे का प्रभाव, मायसिन प्रकार की हानिकारक दवाइयाँ –जैसे स्ट्रेंप्टोमाइसिन, अकॉस्टिक न्यूरोमा (श्रवण तंत्र में गाँठ) आदि शामिल किये जाते हैं।

सुजनन आन्दोलन (1880–1930) के अनुसार बालक के भौतिक, भावनात्मक अथवा बौद्धिक निःशक्तजन का स्रोत माता–पिता ही होते हैं। इस आन्दोलन का प्राथमिक लक्ष्य मानव प्रजनन के नियमन द्वारा मानवीय त्रुटियों को दूर करना था।

सामान्यतः निःशक्तता से पीड़ित बहुत से बच्चों में किन्ही अनुवांशिक कारकों की भी पहचान नहीं हो सकती है। फिर भी, इस स्थितियों में जन्मे बच्चों के माता–पिताओं को दोष देना सामान्यतः सही संदर्भ के साथ नहीं लिया जाता।यह माता–पिता एवं निःशक्त सन्तान के मध्य भावनात्मक सम्बन्ध को उपयुक्त रूप में स्थापित नहीं कर पाता है। कुछ मामलों में

निःशक्तता के कारणों को माता–पिता से सम्बन्धित कुछ कारकों में खोजने से निदान करने में सहायता मिल सकती हैं और साथ ही भविष्य में इस प्रकार के मामलों की रोक–थाम की जा सकती है।

निःशक्तता के साथ बच्चे के जन्म पर माता–पिता की प्रतिक्रियाएं व्यापक रूप से अलग–अलग हैं। अनुमानतः माता–पिता के 3 से 7 भावनात्मक स्तरों की सामान्यतया पहचान की जाती हैं। वे इस प्रकार हैं – (1) आघात (2) अविश्वास की भावना (3) अस्वीकारना (4) क्रोध (5) अपराधबोध (6) अवसाद (7) अपराधबोध से हट करके बच्चे की आवश्यकताओं को किस प्रकार पूरा करने पर ध्यान करने का विचार। क्या सभी माता–पिता इस प्रकार का अनुभव करते हैं यह स्तरों का सही क्रम यही होता हैं यह भी विचारणीय एवं विवादास्पद है।

उपरोक्त स्थितियों को ध्यान में रखते हुए निःशक्तजन बच्चे के माता–पिता बहुआयामी भूमिकाऐं निभाते हैं जो एक दूसरें से पृथक नहीं हैं और ना ही वे एक विशिष्ट या स्वतंत्र कालक्रमानुसार अवधियों में विभाजित की जा सकती हैं, अपितु वे अधिकतर व्यापक हैं तथा एकसमान तत्वों पर आधारित हैं।

निःशक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम 1995 की धारा–2 के तहत निःशक्तता की सात श्रेणियां है जो निम्न है :–

(1) **अन्धता** – 'अन्धता' उस अवस्था को निर्दिष्ट करती हैं जहां कोई व्यक्ति निम्न लिखित अवस्था में से किसी में ग्रसित है, अर्थातः दृष्टि का पूर्ण अभाव, या सुधारको लेंसो के साथ बेहतर नेत्र में दृष्टि की तीक्षणता जो 6.60 या 20.200 (स्नेलन)से अधिक न हो, या दृष्टि क्षेत्र की सीमा जो 20 डिग्री कोण वाली या उससे अधिक है।

(2) **कम दृष्टि** – 'कम दृष्टि वाला व्यक्ति' से ऐसा कोई व्यक्ति अभिप्रेत है जिसके उपचार के पश्चात भी दृष्टि क्षमता का ह्रास हो गया है किन्तु जो समुचित सहायक युक्ति से किसी कार्य की योजना या निष्पादन के लिए दृष्टि का उपयोग करता है या उपयोग करने मे संभाव्य रूप से समर्थ है।

(3) **कुष्ठरोगयुक्त** – 'कुष्ठ रोगयुक्त व्यक्ति' से कोई ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो कुष्ठ से रोगमुक्त हो गया है, किन्तु हाथों या पैरों में संवेदना की कमी और नेत्र और पलक में संवेदना की कमी और आंशिक घात से ग्रस्त किन्तु प्रकट विरूपता से ग्रस्त नही है। प्रकट विरूपता और आंशिक घात से ग्रस्त है, किन्तु उसके हाथों और पैरो में

पर्याप्त गतिशीलता है, जिससे वह सामान्य आर्थिक क्रियाकलाप कर सकता है। अत्यन्त शारीरिक विरूपता और अधिक वृद्धावस्था से ग्रस्त है जो उसे कोई भी लाभपूर्ण आजीविका चलाने से रोकती है और कुष्ठ रोग मुक्त पद का अर्थ तदानुसार लगाया जायेगा।

(4) **श्रवण शक्ति का ह्रास** – 'श्रवण शक्ति का ह्रास' से अभिप्रेत है संवाद संबंधी रेंज की आवृत्ति में बेहतर कर्ण में साठ डेसीबल या अधिक की हानि।

(5) **चलन निःशक्तता** – 'चलन निःशक्तता' से हडिडयों, जोड़ो या मांसपेशियों की कोई ऐसी निःशक्तता अभिप्रेत है, जिससे अंगो की गति में पर्याप्त निबंधन या किसी प्रकार का प्रमस्तिष्क घात हो।

(6) **मानसिक मंदता** – 'मानसिक मंदता' से अभिप्रेत है, किसी व्यक्ति के चित की अवरूद्व या अपूर्ण विकास की अवस्था जो विशेष रूप से बुद्वि की असामान्यता द्वारा अभिलक्षित होती है।

(7) **मानसिक रूग्णता** – 'मानसिक रूग्णता' से मानसिक मंदता से भिन्न कोई मानसिक विकार अभिप्रेत है, 'निःशक्त व्यक्ति' से ऐसा कोई व्यक्ति अभिप्रेत है जो किसी चिकित्सा प्राधिकारी द्वारा प्रमाणित किसी निःशक्तता में कम से कम चालीस प्रतिशत से ग्रस्त है।

राष्ट्रीय न्यास एक्ट 1999 में निःशक्त व्यक्ति अधिनियम 1995 में वर्णित सात श्रेणियों के अतिरिक्त निम्न श्रेणियां भी सम्मिलित है :–

(1) **मानसिक मंदता** –

मानसिक मंदता का प्रभाव बच्चों में जन्म से दिखाई देता है। उसके चलना, खड़े होना आदि एवं भाषा विकास की प्रक्रिया 'डवलपमेंटल माइल स्टोन' के अनुसार न होकर धीमी होती है। सरल शब्दों में कहा जाये तो सामान्य तौर पर जब बच्चा दो से चार माह का होता है तो वह करवट लेना, मुस्कराना, आंखें घुमाना शुरू कर देता है। चार से आठ माह का बच्चा सिर स्थिर रखना, बैठना व बाद में घुटनों के बल चलना प्रारंभ कर देता है। कुछ अनर्थक शब्दों (बैबलिंग) का उच्चारण करता है। दो से चार साल का होने पर बच्चा छोटे छोटे अर्थपूर्ण वाक्यों का प्रयोग शुरू कर देता है। उसकी चाल में स्थिरता आने लगती है। लेकिन सामान्य बच्चे के विपरीत'मेंटली रिटार्डेड' बच्चे में उपरोक्त गतिविधियाँ 'डवलपमेंटल माइल स्टोन' के अनुसार न होकर उसके गामक एवं भाषा विकास की प्रक्रिया

धीमी होती है। इस प्रकार ज्यों–ज्यों बच्चा उम्र में बड़ा होता है उसका व्यवहार व बौद्धिक विकास अपने से कम उम्र के बच्चे जैसा होता है। 15 वर्ष की उम्र के मानसिक मंदबुद्धि का बौद्धिक स्तर अपने से 5 वर्ष छोटे सामान्य बच्चे जैसा होगा। यह बुद्धिलब्धि स्तर बच्चे में आई समस्या की तीव्रता पर निर्भर करता है ऐसे में बच्चा भाषा, ज्ञान, संवाद व्यवहार आदि जीवन के कई क्षेत्रों में सामन्जस्य नहीं बैठा पाता जिसके कारण वह अपने आप को सामाजिक वातावरण के अयोग्य पाता है।

मानसिक मंदता कई प्रकार की होती है जिसमें 'डाउन सिंड्रोम' प्रमुख है जो क्रोमोसोम के जीन में हुए परिवर्तन के कारण होती है। आमतौर पर बच्चा जब पैदा होते ही न रोए तो मस्तिष्क में आक्सीजन का प्रवाह देर से होने के कारण या कम आक्सीजन पहुँचने के कारण मानसिक मंदता का खतरा अधिक बढ़ जाता है। टाक्सिक दवाईयों के असर से भी बच्चे में मानसिक मंदता हो सकती है।

इसका निदान मुख्य रूप से शीघ्र हस्तक्षेप एवं शीघ्र उपचार है। उसके भाषा ज्ञान व बौद्धिक स्तर को ध्यान में रखकर क्षेत्र विशेषज्ञ की मदद से उसके लिए टीचिंग प्रोग्राम तय कर, तदनुसार ट्रेनिंग देकर उसके जीवन को सुधारा जा सकता है।

(2) आटिज्म –

आटिज्म अर्थात् स्वपरायणता मानसिक मंदता से भिन्न है। आटिस्टिक बच्चे में विकास की प्रक्रिया धीमी न होकर विचलित प्रकृति की अर्थात डेवियेंट होती है। आटिज्म से प्रभावित बच्चे की शारीरिक बनावट सामान्य होती है। प्रत्यक्षतौर पर उनमें निःशक्तता के लक्षण तो दिखाई नहीं देते हैं,इसलिए इस प्रकार के बच्चों में पाई जाने वाली विकृति को अदृश्य विकृति भी कह सकते हैं। ऐसे बच्चों को हम उनके असामान्य व्यवहार के आधार पर ही पहचान सकते हैं। आंख से आंख मिलाकर न देखना या बात करना, अपने नाम से पुकारने पर किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त न करना, इकोलेलिक होना यानि शब्द या वाक्य बार –बार दोहराना, प्रश्नों के प्रतिउत्तर में प्रश्न करना, सीटी या हवाई जहाज की आवाज से डर जाना, घूमती वस्तु की ओर आकर्षित होना, व्यवस्था में किसी भी प्रकार का बदलाव पसन्द न करना आदि का उपरोक्त व्यवहार आटिज्म के लक्षणों में गिना जाता है।

आटिज्म कोई बीमारी नहीं अपितु मस्तिष्क में उत्पन्न स्नायु विकार के कारण आई एक जीवन पर्यन्त समस्या है, जिसके लक्षण बच्चे के पैदा होने के तीन साल बाद ही पता लगते हैं। आटिज्म की पहचान सबसे पहले 1943 में कॉनर द्वारा कर ली गई थी। तबसे लेकर अब तक हुये तमाम शोधों के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि लड़कियों की अपेक्षा

लड़के आटिज्म की समस्या से ज्यादा प्रभावित होते हैं। आटिज्म का इलाज प्रायः सम्भव नहीं है लेकिन शीघ्र हस्तक्षेप यानि शीघ्र पहचान तत्पश्चात शीघ्र उपचार (थेरेपी) एवं 'स्ट्रक्चर्ड ट्रेनिंग प्रोग्राम'ही प्रभावी इलाज है।

(3) प्रमस्तिष्क अंगघात –

प्रमस्तिष्क अंगघात में मस्तिष्क के प्रमुख भाग प्रमस्तिष्क (सेरिब्रम) जो शरीर के मांसपेशियों पर नियंत्रण रखने का कार्य भी करता है, उसमें किसी भी प्रकार की आई विकृति से बच्चे के शरीर में जकड़ता आ जाती है। उसे चलने फिरने में कठिनाई आती है। अगर मनुष्य के मुख के किसी भी भाग में जकड़न हो तो बोलने में भी उसे दिक्कत का सामना करना पड़ता है। कभी –कभी तो 'सेरेब्रल पालसी' का प्रभाव पूरे शरीर पर भी पड़ता है जिसके कारण जीवन भर दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। प्रमस्तिष्क अंगघात के लक्षण जन्म के तीन साल के भीतर दिखाई देने लगते हैं। इस प्रकार की समस्या एक बार होने के बाद जीवन पर्यन्त बनी रहती है लेकिन इसमे कोई वृद्धि नहीं होती है। इस प्रकार की समस्या को व्यक्ति मांसपेशियों या तंत्र (नर्व्स) में आई खराबी को इसका कारण समझ लेते हैं जबकि ऐसा नहीं है इसका सीधा संबंध मस्तिष्क से है। आम तौर पर ऐसे व्यक्तियों का मानसिक विकास तो सामान्य होता है लेकिन शारीरिक रूप से निःशक्तताहोने के कारण अपने दैनिक कार्यों के निर्वहन में परेशानी होती है।

सेरेब्रल पालसी' से ग्रस्त बच्चे का वैसे तो कोई प्रभावी इलाज तो नहीं है लेकिन अन्य समस्याओं की तरह शीघ्र हस्तक्षेप (अर्ली इंटरवेंशन) एवं शीघ्र उपचार एवं फिजिकल एवं एक्यूपेशनल थेरैपी, स्पीच थेरैपी, आर्थोटिक डिवाइस की मदद से बच्चे की क्षमताओं में सुधार लाया जा सकता है।

(4) बहुनिःशक्तता –

बहुनिःशक्तता के बारे में चर्चा की जाये तो जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इस प्रकार की समस्या से ग्रसित व्यक्ति एक से अधिक प्रकार की निःशक्तता से प्रभावित होता है। जिसके कारण उसे समझने, सीखने एवं आसपास के वातावरण में अपने आपको समायोजित करने में अत्यन्त कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। बच्चे को सीखने एवं विभिन्न पक्षों का सामान्यीकरण (जनरलाइजेशन) करने में भी परेशानी आ सकती है। उदाहरण के तौर पर अगर हम इस समस्या से ग्रसित बच्चे को रंगों की पहचान कराना चाहे तो उसे अलग–अलग वस्तुओं में मौजूद रंगों की पहचान कराना बेहद कठिन है। ऐसे बच्चे में समझने की क्षमता का आंकलन करना आसान नहीं है। कभी–कभी अप्रासंगिक

संवाद के चलते हम उन्हें मेंटली रिटार्डेड समझने की भूल कर बैठते हैं। बहुनिःशक्तता से ग्रसित बच्चे में मानसिक मंदता, आटिज्म, बधिरता एवं अंधता में से दो या दो से अधिक समस्या का सम्मिश्रण हो सकता है। जैसे बधिरांधता यानि बधिरता के साथ–साथ अंधापन होना। मानसिक मंदता के साथ बधिरांधता का भी प्रभाव देखने को मिलता है। प्रमस्तिष्क अंगघात के साथ मानसिक मंदता अथवा आटिज्म या फिर दोनो ही पाए जा सकते हैं। इन समस्याओं के मूल में कोई एक कारण नहीं होता।

इस समस्या से निपटने का एक मात्र इलाज शीघ्र हस्तक्षेप एवं शीघ्र उपचार है। जिसमें हम बच्चे को प्रारंभ से छोटे–छोटे लक्ष्य तय कर धीरे–धीरे उसके सीखने की क्षमता को बढ़ा सकते हैं। साथ ही फिजियोथैरेपी, एक्यूप्रेशनल थैरेपी एवं स्पीच थैरेपी की मदद से और 'स्ट्रक्चर्ड टीचिंग'अर्थात्'सुनियोजित शिक्षण' से बच्चे के सीखने की प्रक्रिया में बढ़ोत्तरी कर सकते हैं।

दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016 के तहत निःशक्तों की श्रेणियां बढाकर 21 कर दी है, जो निम्न है :–

(1) मानसिक मंदता

- व्यक्ति समझने और बोलने आदि में अन्य हम उम्र बच्चों के समान कार्य नहीं कर पाता है।
- मिर्गी/दौरे आना या उसका शरीर जकड़ जाता है या वह बेहोश हो जाता है।
- व्यक्ति को स्वयं की आवश्यकता अभिव्यक्त करने में कठिनाई होती है।

(2) ऑटिज्म

- व्यक्ति को किसी कार्य पर ध्यान केन्द्रित करने में कठिनाई होती है।
- ऑखे मिलाकर बात न कर पाना/गुमशुम रहना।
- व्यक्ति को अन्य लोगों से घुलने–मिलने में कठिनाई होती है।

(3) बहु निःशक्तता

- मानसिक मंदता/सेरेब्रल पाल्सी/मानसिक रोग/चलन निःशक्तता/मूक निःशक्तता/श्रवण निःशक्तता/ऑटिज्म/दृष्टि बाधिता/कुष्ठ रोग।
- उपरोक्त निःशक्तता में से 2 या 2 से अधिक निःशक्तता से ग्रसित।

(4) सेरेब्रल पाल्सी/पोलियो/नर्व इंजरी आदि

- पैरों में जकड़न/चलने में कठिनाई/हाथ से काम करने में कठिनाई होना।
- चलने में कृत्रिम अंग, वैशाखी, केलिपर इत्यादि का उपयोग करता है।

(5) मानसिक रोगी

- अस्वाभाविक व्यवहार करता है (खुद से बाते करना, भ्रम जाल, मति भ्रम, व्यसन, अधिकतमक डर/भय, किसी भी वस्तु या इंसान से अत्यधिक लगाव इत्यादि)।
- बिना किसी कारण से जल्दी गुस्सा आ जाता है या गुमशुम अथवा अकेलापन अच्छा लगता है।
- व्यक्ति के मन में विचार आता है कि उसको कोई भगवान/भूत या बाहरी शक्ति उसे नियंत्रित करती है।
- व्यक्ति के मन में बारबार आत्महत्या के विचार आते है? एवं डरता है।

(6) श्रवण बाधिता

- बहरापन अथवा सुनने में कठिनाई होती है।
- बहरापन है उंचा सुनना या कम सुनता है।

(7) मूक निःशक्तता

- बोलने में कठिनाई होती है।
- सामान्य बोली से अलग बोलता है (जिसे परिवार के सदस्यों के अलावा अन्य व्यक्ति नहीं समझ पाते है)।

(8) दृष्टि बाधिता

- देखने में कठिनाई होती है।
- दृष्टिहीन है।

(9) अल्प दृष्टि

- कम दिखता है (60 वर्ष से कम आयु की स्थिति में)।

- रंगों की पहचान नहीं कर पाता है (60 वर्ष से कम आयु की स्थिति में)।

(10) चलन निःशक्तता

- हाथ या पैर अथवा दोनों की निःशक्तता है।
- लकवा है/हाथ या पैर कट गया है।

(11) कुष्ठ रोग से मुक्त

- हाथ या पैर या अंगुलियों में विकृति/टेढापन है।
- शरीर की त्वचा पर रंगहीन धब्बे।
- हाथ या पैर या अंगुलियां सुन्न हो जाना।

(12) बौनापन

- व्यक्ति का कद व्यस्क होने पर भी 4 फुट 10 इंच/147 सेंटीमीटर या इससे कम है।

(13) तेजाब हमला पीड़ित

- शरीर के अंग हाथ/पैर/आंख आदि तेजाब हमले की वजह से असामान्य/प्रभावित है।

(14) चलन निःशक्तता

- मांसपेशियां कमजोर है, मांसपेशियों में विकृति है।

(15) स्पेसिफिक लर्निंग डिऐबिलिटीज

- बोलने, समझने, श्रुति लेख, लेखन, साधारण जोड, बाकी, गुणा, भाग में कठिनाई होती है।
- व्यक्ति को आकार, भार, दूरी आदि को समझने में कठिनाई होती है।
- व्यक्ति को एवं परिवार के किसी भी सदस्य को भाषा समझने या शब्दों का अर्थ समझने में कठिनाई होती है।
- व्यक्ति को एवं किसी भी सदस्य को दिशा, चिन्ह समझने में एवं वस्तुओं का बोध करने में कठिनाई होती है।

(16) बौद्धिक निःशक्तता

- सीखने, समस्या समाधान, तार्किकता आदि में कठिनाई होती है।
- प्रतिदिन के कार्यों में सामाजिक कार्यों में एवं अनुकूलन व्यवहार मे कठिनाई आती है।

(17) मल्टीपल स्कलेरोसिस

- व्यक्ति के दिमाग एवं रीढ की हड्डी के समन्वय में परेशानी होती है।

(18) पार्किसंस रोग

- हाथ/पाव/मांसपेशियों में जकडन, तंत्रिका तंत्र प्रणाली संबंधी कठिनाई होना।

(19) हीमोफीलीया/अत्यधिक रक्तस्त्राव

- चोट लगने पर अत्यधिक रक्त स्त्राव होता है।

(20) थैलेसीमिया

- डाक्टर ने खून में हीमोग्लोबीन की विकृति एवं मात्रा कम होना बताई हा।

(21) सिकल सैल डिजीज

- चिकित्सक ने खून की अध्यधिक कमी (रक्त अल्पता) बताई हो।
- खून की कमी से शरीर के अंग/अवयव खराब हो गये हों।

शब्दावली स्पष्टीकरण एवं परिभाषाऐं –

समाजशास्त्रीय दृष्टि से निःशक्तजन हमारे समाज के एक विशेष वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। जिस प्रकार समाज में महिला वर्ग, युवा वर्ग, वृद्धजन उसी प्रकार निःशक्तजन समाज के महत्वपूर्ण अंग हैं। अतः इन्हें इसी प्ररिप्रेक्ष्य में समझने की आवश्यकता है।

निःशक्तता या निःशक्तजन के लिए समय–स्थान एवं परिस्थितियों के अनुसार कई शब्दावलियों का प्रयोग किया जाता है। निःशक्तता, निःशक्तजन, निर्योग्यता, विकृत अंग–शैथिटयना, असामान्यता इत्यादि प्रमुख प्रचलित शब्द हैं लेकिन भाषा–विज्ञान एवं शाब्दिक दृष्टि से इन शब्दावलियों में अंतर है।

किसी सामान्य क्षमता के मुकाबले अवांछित रूप से गति के नियंत्रण में असफलता विकृति कहलाती है। जबकि निःशक्तता सामान्य गतिविधियों की क्षमता में तुलनात्मक रूप से कमी को अभिव्यक्त करती है। जैसे– एक तीन वर्ष का बालक चलने में असमर्थ रहता है तो यह निःशक्तता कहलाएगी। क्योंकि तीन वर्ष का सामान्य बालक स्वतंत्र रूप से चलने–फिरने के योग्य से जाता है। निःशक्तजन शब्दावली का प्रयोग उस व्यक्ति के लिए किया जाता है जो किसी निःशक्तता के कारण समाज में अपनी सामान्य भूमिका निभाने, सामान्य गतिविधियों को करने में असफल रहता है, जैसे–एक 16 वर्ष का बालक स्वयं दैनिक दिनचर्या (स्नान आदि) को सम्पन्न करने या खाना खाने में असफल रहता है, तो वह निःशक्तजन है। लेकिन दूसरी और यदि एक 16 वर्षीय बालक जो बैसाखी के सहारे अपनी दैनिक दिनचर्या सम्पन्न कर लेता है और स्कूल भी जाता है तो वह निःशक्तजन नहीं है।

निःशक्तता के चूंकि अनेक प्रकार एवं स्वरूप हैं इसलिए इसे परिभाषित करना कठिन है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार निःशक्तता किसी विकृति के परिणामस्वरूप उत्पन्न क्षमता की कमी या बाधा को अभिव्यक्त करती है जो किसी मानव में सामान्य रूप से पाई जाती है।

निःशक्तता अधिनियम, 1995 के तहतसक्षम चिकित्सकके अनुसार 40 प्रतिशत या उससे अधिक विकृति (असामान्यता या निःशक्तता) से पीड़ित व्यक्ति ही निःशक्तता की श्रेणी में आता है।

निःशक्तजन को पूर्व में विकलांग कहकर सम्बोधित किया जाता था। इसके उपरान्त इन्हें निःशक्तजन कहा जाने लगा। तत्पश्चात इनके लिये विशेष योग्यजन शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। लेकिन अब इन्हें दिव्यांगन कहां जाता है। यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक निःशक्त में किसी न किसी असाधारण विशेषता या सृजनशीलता का समावेश होता है। उदाहरण के लिये सूरदास जो दृष्टि बाधित थे, में लोक साहित्य के व्यापक और एक सीमा तक असाधारण समझ थी। इस दृष्टि से प्रत्येक निःशक्त में कुछ न कुछ झमताऐं होती है, जिनको यदि उत्साहित किया जाऐं और व्यविस्थत रूप से उनके उन्नयन के प्रयास किये जाये तो निःशक्त विभिन्न विधाओं में एक प्रभावी भूमिका का निर्वाह कर सकते है।

मध्य–प्रदेश का एक गरीब, आदिवासी और विकास के मामले में बहुत पिछड़ा जिला बडवानी है। यहां जल, जंगल, जमीन के बावजूद भी व्यक्ति दाने–दाने को मोहताज है। यहाँ का आदिवासी समुदाय रोज कमाता और रोज खाता है या कई बार नहीं भी खा पाता है। योजनाओं को लागू करने को लेकर यह उपेक्षित और ऐसा इलाका है जो कम पढ़ा

लिखा तथा शोषित है। जो बिखरा, असंगठित, उबड–खाबड़ पहाड़ी, जंगली और नदी–नालों से भरा है। जहाँ प्रशासन की सुविधाएँ भी दूर, बहुत दूर–दूर है। यहां अंधविश्वास की भावना निःशक्तता को उत्पन्न कर देती है।

आज का युग बाजार और तकनीकी युग है। इस युग में गर्भावस्था के दौरान ही निःशक्तजन को लेकर भेदभाव बढ़ता जा रहा है। वह भी शिक्षित और शहरी समाज के सभ्य समझे जाने वाले समुदाय में। अब गर्भ में ही पल रहे लड़का–लड़की, उसकी शारीरिक बनावट और लिंग संबंधी जानकारी पायी जा सकती है। ऐसे में यदि यह मालूम हो जाए कि एक तो लड़की और उस पर भी निःशक्तजन है तो उसे गर्भ में ही मार दिया जाता है और अगर वह गलती से आ जाए तो ऐसा परिवार बेचारा बन जाता है। इस सबका दोष आखिरकार गर्भवती महिला के ऊपर ही जाता है।

शिक्षकों की सवेदनशीलता और अध्ययन के तरीकों पर चर्चा होनी चाहिये। शिक्षकों के द्वारा सामान्य बच्चों की अपेक्षा निःशक्त बच्चों के साथ उपेक्षित/गैर जिन्मेदाराना व्यवहार किया जाना अनुचित है, जबकि इनके साथ अन्य सामान्य बच्चों जैसा ही व्यवहार करना चाहिये तथा यह भी सम्मान के हकदार है। इस क्रम में शिक्षकों का दायित्व है कि वे बालकों में निःशक्त बालकों के प्रति सहयोग की भावन का संचार करें साथ ही निःशक्तजन बच्चों को कक्षा तक लाने ले जाने के लिये सीढियां, बैठक व्यवस्था, ब्लैक बोर्ड, उस पर लेखन प्रणाली, पेयजल तथा शौचालय तक पहुंचने तक उत्पन्न न होने वाली बाधाओं के उचित निराकरण हेतु प्रयास करने चाहिये।

ऐसे कितने ही उदाहरण देखे सुने जाते हैं, जिनमें अक्षम जन भी सर्वांगपूर्ण व्यक्तिजैसी क्षमता का प्रदर्शन करते हैं। ऐसा ही एक व्यक्ति कार्ल अंथन था। वह वयाना, आस्ट्रेलिया का रहने वाला था। जब पैदा हुआ तो एकदम स्वस्थ था, किंतु उसके बाँहें नहीं थी। जन्म से ही उसके हाथ कंधों से गायब थे। पिता ने बच्चे की स्थिति देखी, तो पहले तो कुछ निराश हुए, पर अगले ही पल उन्होंने मन को मजबूत बनाया और बालक को स्वावलम्बी बनाने का निश्चय किया। इस दिशा में उनने जो पहला कदम उठाया, वह यह कि सहानुभूति दिखाने वालों को आना बंद करा दिया। जो बालक को देखने का बहुत हठ करते, उनसे पहले ही कह दिया जाता कि उसके सामने कोई भी ऐसी बात न कही जाए, जो उसके बाल–मन को ठेस पहुँचाए। उनका विश्वास था कि बालक के समक्ष उसकी दयनीय स्थिति पर चिन्ता प्रकट करना उसके उत्साह और मनोबल को तोड़ेगा। हीन भावना

यदि एक बार उसके मन में घर कर गई, तो पूरी जिन्दगी वह उससे उबर नहीं पायेगा और पराश्रित बनकर जीना पड़ेगा।

राज्य के निःशक्तजनों के प्रति उत्तरदायित्वों के सामान्य एवं विशिष्ट स्वरूपों का विश्लेषण समाजशास्त्रीय दृष्टि से आवश्यक है क्योंकि इनसे सम्बद्ध चेतना का प्रसार ही निःशक्तजनों को उनके अधिकारों एवं दायित्वों से परिचित करवा सकता है।

संदर्भ सूची

1. रिपोर्ट ऑन दि स्मालफोक्स इराडिक्शन प्रोग्राम (1966–80), विश्व स्वास्थ्य संगठन, जेनेवा, स्विटजर्लैण्ड।
2. विटकिन, स्टैन्ले. (2011) ''सोशल कंस्ट्रक्शन एडं सोशल वर्क प्रैक्टिस : इन्टरप्रटेशंस एंड इनोवेशंस'', कोलम्बिया युनिवर्सिटी प्रेस, कोलंबिया, पृष्ठ 156।
3. एडगर्टन, ब्रिज. (2016) ''इमेजनैटिव बायोग्राफी'' पलल प्रेस, यूएसए, पृ. सं. 176।
4. निम्बर, कमला, जी–''ए न्यू लाइज फॉर दी हेन्डीकेप्ट'' बम्बईः निम्बर रिहेबिलीटेशन ट्रस्ट, भारत, पृ. सं. 82।
5. तुलसीदास, (1983), ''श्रीरामचरितमानस'' गीता प्रेस गोरखपुर, पृ.सं. 117।

   (www.hindibooks pdf.com/shree-ramcharitmanas-bookpdfdownload)
6. नाथवानी, ए. (1987), ''डिस्ऐबिलिटी इन द ऐशियन कम्युनिटीज'', लंदनः ग्रेटर ऐसोसिऐशन फोर डिस्ऐबल्ड प्यूपिल, पृ.स.111।
7. महरोत्रा, नीलिका. (2013) ''डिस्ऐबिलिटीजेण्डर एण्ड स्टेट पॉलिसी–एक्सप्लोरिंग मार्जिन्स'' जयपुर रावत पब्लिकेशन, पृ.सं. 108।
8. सिंघल, निधि. (2009), ''फोरगेटन यूथः डिस्ऐबिलिटी एण्ड डवलपमेंट इन इंडिया.'' डीएफआईडी यूनिवर्सिटी ऑफ कैम्ब्रिज, पृ. सं. 121।
9. विकिपीडिया, ''सोशियोलोजी ऑफ डिस्ऐबिलिटी, डाउनलोडेड ओन 19 फरवरी 2014''।
10. प्रशासनिक प्रतिवेदन, (2017–2018) निदेशालय विशेषयोग्यजन, राजस्थान, जयपुर।

द्वितीय अध्याय

निःशक्तजन : संस्कृति, राजनीतिक और अर्थतंत्र

समाज शास्त्रों की दृष्टि में जनसंख्या के किसी भी भाग का जीवन तंत्र का विश्लेषण संस्कृति, राजनीति एवं अर्थतन्त्र की गत्यात्मक अन्तःसम्बद्धता को व्यक्त करता है। इन तीनों अवधारणाओं की एवं व्यवस्थाओं को अन्तःनिर्भरता समाज विज्ञान के प्रत्येक विषय को अन्तः अनुशासनात्मक परिप्रेक्ष्य से सम्बद्ध कर देती है। एक सामाजिक इकाई अरस्तू की दृष्टि से सामाजिक प्राणी है क्योंकि यह अपने जीवन को समूह से परे व्यतीत नहीं करते हैं। यही समूह 'हम' की भावना को निर्मित करता है और अन्ततः यह 'हम' अनेक अवसरों पर अनेक 'अन्य' में विभाजित हो जाता है। 'हम' एवं 'अन्य' की यह सम्बद्धता संस्कृति, राजनीति और अर्थतन्त्र की गत्यात्मक भूमिकाओं का परिणाम है और इसलिये अरस्तू का सामाजिक प्राणी नियम एवं प्रतिमानों का निर्माण करने वाला प्राणी है संस्कृति,यही सामाजिक प्राणी है। उपइकाईयों का निर्माण करने वाली प्रणाली है। साथ ही उत्पादन एवं उपभोग की प्रक्रिया में सहभागी प्राणी है। प्रौद्योगिकीय एवं तन्त्र विकास की प्रक्रिया में यह सामाजिक इकाई शक्ति सम्बन्धों का भाग बनकर एक ऐसे अवयव को जन्म देती है जिसे राजनीतिक प्राणी (राजनीति) की संज्ञा दी जाती है। अतः समाजशास्त्र एक समाज विज्ञान की शाखा के रूप में उस सामाजिक प्राणी का अध्ययन करता है जो संस्कृति, अर्थतन्त्र, प्रौद्योगिकीय एवं राजनीति के माध्यमों से निर्देशित होती है एवं विभिन्न अवसरों पर समूह के रूप में निर्देश देती है। शोधार्थी ने इस समाज शास्त्रीय समझ के आधार पर निःशक्तों की जनसंख्या को संस्कृति, राजनीति एवं अर्थतन्त्र की अन्तःनिर्भरता एवं स्वायत्तता के सन्दर्भों के साथ इस अध्याय में प्रस्तुत किया है।

निःशक्तजन की संस्कृति एक विशिष्ट संस्कृति है जिसका सामान्य संस्कृति के साथ अनुकूलनमूलक तथा अन्तःविरोधी सम्बन्ध है। निःशक्तजन चूँकि विशिष्ट भूमिकाओं का निर्वाह करते हैं अतः उनके नियम, प्रतिमान भी विशिष्ट होते हैं। इस भूमिका व्यवहार के लिये उन्हें विशिष्ट भौतिक उपकरणों की सहायता लेनी पड़ती है।निःशक्त जनों की जीवन पद्धति अर्थात् संस्कृति व्यवस्था, सामान्य संस्कृति व्यवस्था से भिन्न है। वास्तव में सामान्य संस्कृति एवं निःशक्त जनों की विशिष्ट संस्कृति एक सातत्व है। ऐसे अनेक बार अवसर आते हैं जब सामान्य सामाजिक इकाईयां चलचित्र एवं नाटक इत्यादि में निःशक्त सामाजिक इकाईयों के चरित्र को प्रस्तुत करती है। महाभारत जैसी महान परम्परा में धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी को

राजनीतिक बाध्यताएं सामान्य व्यक्तित्व का होते हुए भी निःशक्त बनाती है। यह स्थिति समाज मनोविज्ञान में समानुभूति को जन्म देती है अर्थात् सामान्य सामाजिक इकाई वैसा ही व्यवहार करने की कोशिश करे जो कि निःशक्त सामाजिक इकाई करती है। इन सबके बावजूद निःशक्त की जीवन पद्धति विशिष्ट है कि वे अनेक अवसरों पर अपनी जीवन पद्धति को अधीनस्थामूलक बनाने के लिये बाध्य है। दृष्टिबाधित सामाजिक इकाईयों को गतिशीलता हेतु सामान्य सामाजिक इकाईयों के सहयोग की आवश्यकता पडती है। ऐसे ही चलनबाधित इकाईयों को अन्य इकाईयों का सहयोग लेना पडता है अथवा इन दोनों ही प्रकार की बाधित इकाईयों के चलने की प्रक्रिया सामान्य इकाईयों से भिन्न है।

भारत का संविधान देश के सभी नागरिकों के लिए समानता, आजादी, न्याय एवं आत्मसम्मान सुनिश्चित करता है और इन लक्ष्यों को हासिल करने के लिए निःशक्तजनों समेत सभी नागरिकों के लिए एक समावेशी समाज के निर्देश देता है। विभिन्न विषयों को लेकर संविधान की अनुसूचियों में निःशक्तजनों के सशक्तिकरण की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी राज्य सरकारों को दी गई है। इस कारण से निःशक्तजनों के सशक्तिकरण की प्राथमिक जिम्मेदारी राज्य सरकारों पर भी हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार देश में निःशक्त जनसंख्या लगभग 2.68 करोड़ है। इनमें दृष्टिबाधित, चलनबाधित एवं श्रवण वाधित इत्यादि विभिन्न श्रेणी के निःशक्त संम्मिलित है।

भारत ने निःशक्त जनों के लिए एक समावेशी बाधारहित और अधिकारयुक्त समाज की दिशा में प्रयत्नशील 'बिवाको मिलेनियम फ्रेमवर्क' समझौते पर भी हस्ताक्षर किये है। भारत ने निःशक्तजनों के अधिकारों और अस्मिता की सुरक्षा तथा उसे बढ़ावा देने के संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन पर भी हस्ताक्षर किये हैं जिसका 1 अक्टूबर, 2008 को अनुमोदन किया था। देश में निःशक्तजनों के लिए वर्ष 2005 में एक राष्ट्रीय नीति बनाई गई थी। इस नीति में मुख्य ध्यान विभिन्न प्रकार की निःशक्तताओं को रोकने एवं ऐसे नागरिकों के आर्थिक एवं भौतिक पुनर्वास के उपायों पर केंद्रित किया गया है। इस नीति को सरकार एवं अन्य एजेंसियों द्वारा क्रियान्वित किया गया है। संयुक्त राष्ट्र के दिशा–निर्देशों के अनुसार विश्व में प्रतिवर्ष 3 दिसंबर को अंतर्राष्ट्रीय निःशक्तता दिवस मनाया जा रहा है।

देश की निःशक्त जनसंख्या की विभिन्न समस्याओं से कारगर तरीके से निपटने के लिए प्रत्येक श्रेणी के निःशक्तजनों के लिए निम्नलिखित राष्ट्रीय संस्थानों की स्थापना की गई है।

1. राष्ट्रीय दृष्टिबाधिता संस्थान, देहरादून।

2. राष्ट्रीय ओर्थोपेडिकली संस्थान, कोलकाता।

3. अली यावर जंग राष्ट्रीय बधिर संस्थान, मुंबई।

4. राष्ट्रीय मानसिक निःशक्तजन संस्थान, सिकंदराबाद।

5. राष्ट्रीय पुनर्वास, प्रशिक्षण एवं शोध संस्थान, कटक।

6. शारीरिक निःशक्तजन संस्थान, नई दिल्ली।

7. राष्ट्रीय बहुव्याधि सशक्तीकरण संस्थान, चेन्नई।

ये सभी संस्थान नई–नई खोजों और ऐसे नागरिकों की क्षमता में विकास से जुडे प्रशिक्षण कार्यक्रमों और सेवा प्रदान करने जैसे कार्यक्रमों के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार है। निःशक्तजनों के लिए देश के पांच केंद्रों श्रीनगर, लखनऊ, भोपाल, सुंदरनगर और गुवाहाटी में क्षेत्रीय पुनर्वास केंद्र हैं। ये केंद्र विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों के जरिए निःशक्तजनों को व्यापक प्रशिक्षण देने तथा उनके पुनर्वास में मदद करते हैं। रीढ़ की हड्डी की चोट के कारण तथा हड्डियों एवं मांसपेशियों में विभिन्न व्याधियों से ग्रस्त नागरिकों के लिए मोहाली, कटक, जबलपुर और बरेली में चार क्षेत्रीय पुनर्वास केंद्र ऐसे नागरिकों को बेहतर सेवाएं दे रहे हैं ताकि वे अपना जीवन आत्मसम्मान से जिये और दूसरों पर आश्रित न हो।

कानपुर स्थित कृत्रिम बांह निर्माण निगम एलिम्को (ए.एल.आई.एम.सी.ओ) सावर्जनिक क्षेत्र का निकाय है जो निःशक्तजनों के लिए सहायक उपकरण बनाने में संलग्न है। यहां तैयार किये जाने वाले उत्पादों का विपणन क्षेत्रीय विपणन केंद्रों– कोलकाता, मुबंई, चेन्नई, भुवनेश्वर और दिल्ली द्वारा किया जाता है। इसके अलावा राष्ट्रीय संस्थानों और स्वैच्छिक संगठनों की भी इनमें मदद ली जाती है।

राष्ट्रीय निःशक्तजन वित्त एवं विकास निगम 'एनएचएफडीसी'निःशक्तजनों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए उन्हें ऋण सुविधाएं प्रदान करने में शीर्ष स्तर का वित्तीय संस्थान है। राज्य सरकारों, संघशासित प्रदेशों और गैर–सरकारी संगठनों द्वारा अधिकृत विभिन्न एजेंसियों के माध्यम से अनुदान राशि वितरित की जाती है। यह निगम स्नातक एवं उच्च शिक्षा के लिए ऋण सहायता उपलब्ध कराता है। इसके अलावा यह उनकी तकनीकी एवं व्यापारिक कौशल के उन्नयन, उनकी उत्पादन इकाईयों के बेहतर प्रबंधन में भी सहायता करता है। केंद्र सरकार निःशक्तजनों के लिए सहायक उपकरणों एवं मशीनों की खरीद के लिए एक सहायता योजना क्रियान्वित कर रही है।

इस योजना का मुख्य लक्ष्य जरूरतमंद निःशक्तजनों को उनके काम में आने वाले बेहतर, टिकाऊ, वैज्ञानिक रूप से निर्मित उपकरणों की खरीद में सहायता करना है जिससे उनके भौतिक–सामाजिक एवं मानसिक पुनर्वास को बढ़ावा मिल सके और वे अपनी निःशक्तता के प्रभाव को कम करते हुए अपनी आर्थिक क्षमताओं में वृद्धि कर सके। यह योजना एजेंसियों जैसे स्वैछिक संगठनों, सामाजिक न्याय एवं आधिकारिक मंत्रालय के तहत राष्ट्रीय संस्थानों एलिम्को (एएलआईएमसीओ,) जिला परिषदों, जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों के द्वारा लागू की जाती है। इस तरह के कार्यों में जुड़ी क्रियान्वयन एजेंसियां सहायक उपकरणों एवं मशीनों की खरीददारी उनके निर्माण एवं वितरण के लिए अनुदान राशि उपलब्ध कराती है। इस योजना में ऐसे नागरिकों की चिकित्सा सर्जरी भी शामिल है।

सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में एक ऐतिहासिक फैसले में सरकार ने निःशक्तजनों को आवंटित किए गए तीन प्रतिशत आरक्षण को प्राथमिकता देने का निर्देश दिया है। सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार को यह भी निर्देश दिए हैं कि वह निःशक्तजनों के मानवीय अधिकारों की रक्षा करे और सार्वजनिक स्थानों और दफ्तरों में उनके लिए बाधारहित माहौल को सुनिश्चित बनाया जाए।

निःशक्तजन (समान अवसर, अधिकार सुरक्षा एवं पूरी भागीदारी) अधिनियम, 1995 को फरवरी 1996 से लागू किया गया । इस कानून में केंद्रीय व राज्य दोनों स्तरों पर शिक्षा रोजगार एवं व्यवसायिक प्रशिक्षण जैसे पुनर्वास के निवारण व प्रोत्साहन संबंधी पहलुओं, बाधारहित माहौल के निर्माण, निःशक्तजनों के लिए पुनर्वास सेवाओं के प्रावधान, संस्थागत सेवाओं और सहयोगी सामाजिक सुरक्षा युक्तियों जैसे बेरोजगारी भत्ता और शिकायतों को निपटाने के प्रावधान है। निःशक्तजन (समान अवसर, अधिकार सुरक्षा एवं पूरी भागीदारी) अधिनियम, 1995 की धारा 57 के अंतर्गत मुख्य आयुक्त निःशक्तजन नियुक्त किया गया है जो एक महत्वपूर्ण वैधानिक अधिकारी है। मुख्य आयुक्त के कार्यों और कर्तव्यों में निःशक्तजनों के लिए राज्य आयुक्तों के कामों में ताल–मेल बनाए रखना, केंद्र सरकार द्वारा दिए गए अनुदानों के उपयोग पर निगरानी रखना, निःशक्तजनों को दिए गए अधिकारों एवं सुविधाओं की रक्षा के लिए कदम उठाना और निःशक्तजनों को अधिकारों से वंचित रखे जाने पर की गई शिकायतों का समाधान करना शामिल है। मुख्य आयुक्त निःशक्तजनों के लिए बने किसी नियम–कानून को लागू न किए जाने पर इस मामले का स्वतः संज्ञान ले सकते हैं तथा गवाहों को बुलाने, उनका पता लगाने, पुनः पूछताछ आदि के अधिकार उनके पास है।

निःशक्तजनों के लिए राष्ट्रीय न्यास ऑटिज्म, सेरेब्रल पाल्सी, मानसिक निःशक्तजन और विभिन्न प्रकार की व्याधियों संबंधी अधिनियम, 1999 के अंतर्गत स्थापित की गई एक वैधानिक संस्था है।

इस न्यास का मुख्य उद्देश्य ऐसी व्याधियों से ग्रस्त व्यक्तियों को जहां तक संभव हो सके, आत्मनिर्भरता से जीने के समर्थ व सशक्त बनाना, आवश्यकता आधारित सेवाएं प्रदान करने वाले संगठनों के पंजीकरण के लिए सहयोग बढ़ाने और आवश्यकता पड़ने पर निशक्तजनों को कानूनी संरक्षक नियुक्त करने की प्रक्रिया शुरू करना है।

भारतीय पुनर्वास परिषद –

भारतीय पुनर्वास परिषद 1992 के भारतीय पुनर्वास परिषद अधिनियम के अंतर्गत स्थापित की गई एक वैधानिक संस्था है। यह परिषद पुनर्वास के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण, नीतियां व कार्यक्रम विधिवत रूप से तैयार करने व विशेष शिक्षा का दायित्व संभालती है। इसके कार्यों में देशभर में सारे प्रशिक्षण संस्थानों में विभिन्न स्तरों पर प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों को नियंत्रित करना, पारस्परिक आधार पर देश में व देश के बाहर निःशक्तजनों के पुनर्वास के क्षेत्र में प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चलाने वाले संस्थानों, विद्यालयों को मान्यता प्रदान करना, पुनर्वास और विशेष शिक्षा के क्षेत्र में शोध को प्रोत्साहन देना, पुनर्वास के क्षेत्र में मान्यता प्राप्त योग्यताएं रखने वाले पेशेवरों के लिए एक केंद्रीय पुनर्वास पंजीकरण प्रक्रिया का रख–रखाव और निःशक्तजन के क्षेत्र में काम कर रही संस्थाओं के सहयोग से पुनर्वास शिक्षा कार्यक्रमों को जारी रखने को प्रोत्साहन देना शामिल है।

निःशक्तजन सांख्यिकी –

संयुक्त राष्ट्र संघ के आँकड़ों के अनुसार संसार की कुल जनसंख्या का लगभग 10 प्रतिशत व्यक्ति निःशक्तता से पीड़ित है। निःशक्तता से पीड़ित बालकों में से 90 प्रतिशत बालक विद्यालय नहीं जाते हैं। निःशक्त बालक सामान्य की तुलना में अधिक हिंसात्मक गतिविधियों में शामिल माने जाते हैं। विश्व में करीब 15 करोड बालक विभिन्न प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक निःशक्तताओं से पीड़ित हैं।

राजस्थान में विशेष बालकों के लिए संचालित विशेष शिक्षण संस्थाऐं निम्न प्रकार हैं–

1. आवा आशा विद्यालय, जोधपुर।
2. जैमिनी शिक्षक एवं ग्रामीण विकास संस्थान, जयपुर।

3. करम मनोविज्ञान संस्थान, अलवर।

4. मानव धर्म सेवा संस्थान, झालावाड़।

5. नारायण सेवा संस्थान, उदयपुर।

6. नवदीप विकास समिति, अलवर।

7. नवदिशा विकास समिति, अलवर।

8. प्रयास–विशेष शिक्षा एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र, जयपुर।

9. सौर चेतना एवं ऊर्जा विज्ञान शोध संस्थान, हनुमानगढ़।

10. मानसिक निःशक्तजन कल्याण समिति, जयपुर।

11. सोना निःशक्तजन पुनर्वास एवं शोध संस्थान, भीलवाड़ा।

12. तपोवन मनोविज्ञान विद्यालय, श्री गंगानगर।

सारणी क्रमांक 2.1 : निःशक्तजन (राज्य/संघ क्षेत्र) (वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार)

क्र.सं.	राज्य/संघ क्षेत्र	जनसंख्या (निःशक्त)
1.	अंडमान और निकोबार	6,660
2.	आन्ध्रप्रदेश	22,66,607
3.	अरूणाचल प्रदेश	26,734
4.	असम	4,80,065
5.	बिहार	23,31,009
6.	चण्डीगढ	14,796
7.	छत्तीसगढ	6,24,937
8.	दादर और नागर हवेली	3,294
9.	दमन और द्वीप	2,196
10.	दिल्ली	2,34,882
11.	गोवा	33,012
12.	गुजरात	10,92,302
13.	हरियाणा	5,46,374
14.	हिमाचल प्रदेश	1,55,316

15.	जम्मू–कश्मीर	36,11,53
16.	झारखण्ड	7,69,980
17.	कर्नाटक	13,24,205
18.	केरल	7,61,843
19.	लक्ष्य द्वीप	1,615
20.	मध्यप्रदेश	15,51,931
21.	महाराष्ट्र	29,63,392
22.	मणिपुर	54,110
23.	मेघालय	14,317
24.	मिजोरम	15,160
25.	नागालैण्ड	29,631
26.	ओडिसा	12,44,402
27.	पण्डिचेरी	30,189
28.	पंजाब	6,54,063
29.	राजस्थान	15,63,694
30.	सिक्किम	18,187
31.	तमिलनाडू	11,77,963
32.	त्रिपुरा	64,346
33.	उत्तरप्रदेश	41,57,514
34.	उत्तराखण्ड	1,85,272
35.	पश्चिम बंगाल	20,17,406
	कुल	**2,68,10,557**

(http//disabilityaffairs.gov.in/content/page/state_ut-wise-persons.php)[1]

निःशक्तता और भारतीय समाज : एक ऐतिहासिक दृष्टि :

भारत में भी विगत इतिहास पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होता है कि प्रारंभ में निःशक्तजनों की शिक्षा, प्रशिक्षण एवं विकास हेतु विशेष एवं गंभीर प्रयास नहीं किये गये।

यदि वैदिक काल में झाँक कर देखे तो निःशक्तजन शिक्षा की एक सुदीर्घ परम्परा ऋग्वेद के इस श्लोक में परिलक्षित होती है।

याभिः श्चीभिवृर्षणा परा वृज प्रान्धं

श्रोणं चक्षसएतवे कृथः।

याभिर्वर्तिका ग्रासिताम पच्यर्त ताभिरूषु

अतिभिरश्विना गतम्। – ऋग्वेद (1/112/8)[2]

अर्थात् "सृष्टि में जो अपंग, अन्धे, लूले, लंगड़े बहरे आदि हैं–वे समाज में घृणा के पात्र नहीं है। हमें उनके साथ सह्यदयतापूर्वक मानवता का व्यवहार करना चाहिए। अर्थात् समाज निःशक्तों के प्रति सद्भाव रखकर उन्हें पुरुषार्थी एवं शिक्षित बनाये।" दरिद्रहीन व्यक्तियों की सहायतार्थ निजी हितों का परित्याग करना, परोपकार करना भारतीय सांस्कृतिक परम्परा रही है, फलतः समाज में निःशक्तों की सुरक्षा हेतु प्रत्येक संभव प्रयास किया जाता था। प्राचीन भारत में शासन का परम दायित्व माना जाता था कि वह निःशक्तों के प्रति मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाये। इसी प्रकार विशेष ,योग्यजनों पर ईश्वर की विशेष कृपा का उल्लेख ग्रंथों में किया गया है।

मूकं करोति वाचालं, पंगु लंघयते गिरिम्।

यत कृपा तं हम वंदे, परमानंद माधवम्।।[3]

अर्थात् जिसकी कृपा से गूंगा बहुत सुन्दर बोलने वाला हो जाता है, और लंगड़ा–लूला दुर्गम पहाड़ पर चढ़ जाता है। वे कलयुग के सब पापों को जला डालने वाला दयालु (भगवान) मुझ पर द्रवित हो (दया करें)।

किन्तु कालान्तर में इस दृष्टिकोण में भी अंतर आ गया। अतः समाज निःशक्तजन को दैवीय अभिशाप, पापकर्मो का प्रतिफल, नियति का विधान कहकर जहां एक और निःशक्तों को घृणा एवं तिरस्कार की दृष्टि से देखता रहा। वही उनकी सुरक्षा एवं शिक्षा व्यवस्था भी उन पर दया के रूप में ही करता रहा। यही कारण है कि निःशक्तजन को समाज भी उन्हें एक उपेक्षित अंग के रूप में स्वीकारता रहा।[4]

स्वतंत्र भारत में भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय एवं समान अवसरों की प्राप्ति पर बल दिया गया। (अनुच्छेद 15, 38 एवं 41) समय–समय पर विभिन्न शिक्षा आयोगों ने भी निःशक्त बालकों की शिक्षा पर बल दिया जिससे निःशक्तजनों को सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण से अनुकूलन स्थापित करने हेतु तत्पर किया जा सके और वे एक सामान्य व्यक्ति होने के नाते अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।[5]

नई शिक्षा नीति के परिप्रेक्ष्य में निःशक्त बालकों की शिक्षा –

नई शिक्षा नीति के "प्रोग्राम ऑफ एक्शन" दस्तावेज में असमानताओं के निवारणार्थ शैक्षिक अवसरों की समान उपलब्धि पर बल देते हुए शारीरिक एवं मानसिक निःशक्तजनों की एकीकृत शिक्षा निर्धारण का समर्थन किया ताकि शेष समाज के साथ ही उन्हें सामान्य अभिवृद्धि एवं विकास हेतु तत्पर किया जा सकें और वे पूर्ण विश्वास एवं साहस के साथ जीवन यापन कर सके।

अन्य देशों में हुए शोध के सुखद एवं अच्छे परिणामों को दृष्टिगत रखे हुए भारत में भी केन्द्रीय सरकार ने 1975 से निःशक्तों के विकास हेतु "निःशक्तजन एकीकृत शिक्षा योजना" आरंभ की। इस योजना के अंतर्गत प्रारंभ में उच्च प्राथमिक स्तर तक और कालान्तर में माध्यमिक, उच्च माध्यमिक स्तर तक निःशक्तजन बालकों को सामान्य बालकों के साथ ही रखकर शिक्षा प्रदान की जाती है ताकि उनके व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण विकास संभव हो एवं अपने भावी जीवन में वे सुसमायोजित होकर समाज के अन्य सामान्य व्यक्तियों के साथ समान रूप से जीवनयापन कर सके।

राजस्थान में निःशक्त एकीकृत शिक्षा योजना –

निःशक्त एकीकृत शिक्षा योजना केन्द्र प्रवर्तित योजना है। जिसके अंतर्गत निःशक्त बालकों को पृथक एवं विशिष्ट विद्यालयों के विपरीत सामान्य बालकों के साथ शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की गई है। राजस्थान राज्य में इस योजना को संचालित करने की स्वीकृति की व्यवस्था की गई है। राजस्थान राज्य में इस योजना को संचालित करने की स्वीकृति 1976 में प्राप्त हो गई थी किन्तु इसे वास्तविक रूप से सत्र 1977–78 में राज्य में प्रारंभ किया गया। इस योजनांतर्गत निःशक्त बालकों को विभिन्न सुविधाऐं– पुस्तकें एवं स्टेशनरी भत्ता, वाहन भत्ता, एस्कोर्ट भत्ता, व्यक्तिगत उपकरण क्रय करने हेतु चिकित्सा सुविधा तथा गणवेशादि हेतु आर्थिक सहायताकेन्द्र सरकार द्वारा शत–प्रतिशत प्रदान की जाती है।[6]

किसी भी कार्य अथवा योजना की सफलता अथवा असफलता इस बात पर निर्भर करती है उस कार्य के लिए निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति कहां तक हुई है। इस निःशक्त एकीकृत शिक्षा योजना हेतु निम्नांकित प्रमुख लक्ष्य निर्धारित किये गये।

1. निःशक्त बालकों को समाज के साथ समानता के आधार पर एकीकृत करना।
2. निःशक्तों को सामान्य वृद्धि एवं विकास के लिए तत्पर करना।

3. निःशक्त बालकों को साहस एवं विश्वास के साथ जीवन का सामना करने योग्य बनाना।

यह योजना राजस्थान राज्य में गत कई वर्षो से चल रही है। वर्तमान में यह योजना राज्य के कुछ चुनिंदा विद्यालयों में चल रही है। आरंभ में योजना को राज्य में केवल छः जिला मुख्यालयों में ही आरंभ किया गया था किन्तु योजना की लोकप्रियता के कारण इसे अन्य जिला मुख्यालयों के उच्च प्राथमिक विद्यालयों तथा 6 माध्यमिक/उच्च माध्यमिक विद्यालयों में शुरू किया गया है।

निःशक्त एकीकृत शिक्षा योजना की प्रकृति अनुसार भी कुछ उद्देश्य निर्धारित किये गये –

1. सामान्य विद्यालयों में निःशक्त बालकों को शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराना।

2. जहां तक संभव हो सके गत्यात्मक निःशक्तता युक्त एवं अन्य अल्प निःशक्तजनों की शिक्षा की व्यवस्था सामान्य छात्रों के साथ करना।

3. प्राथमिक कक्षाओं को अध्यापकों हेतु विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।

शारीरिक एवं मानसिक बाध्य व्यक्तियों के सामाजिक एवं आर्थिक हितों की देखभाल करने का उत्तरदायित्व सरकार का है। संसार के विभिन्न भागों से प्राप्त किये गये अनुभवों से ज्ञात होता है कि उचित शिक्षा और प्रशिक्षण से निःशक्त व्यक्ति भी अपने कार्य का निर्वाह करने में समर्थ हो सकते हैं। यही कारण है कि छात्रवृत्तियों द्वारा निःशक्तजनों को आर्थिक सहायता प्रदान कर उनमें जीवन जीने की लालसा, उमंग का संचार किये जाने का प्रयास किया जा सकता है।[7]

निःशक्तजन हमारे समाज का विशेष वर्ग है जो किन्हीं शारीरिक– मानसिक अक्षमता के कारण समाज की मुख्यधारा से पिछड़ गया है। प्रस्तुत शोध अध्ययन भरतपुर के निःशक्त बालकों की आकांक्षाओं, व्यक्तित्व, समायोजन, शैक्षिक उपलब्धि एवं समस्याओं की दृष्टि से विशेष रूप से उपयोगी है। निःशक्तजन व्यक्ति पर काल के क्रूर हाथों की दोहरी मार पड़ती है ऐसे बालक को जहां अपनी निःशक्तता को स्वीकार करना पडता है, वहीं परिस्थितियों एवं सामाजिक वातावरण से भी अनुकूलन स्थापित करना पड़ता है।

निःशक्त बालक चाहे शारीरिक दृष्टि से निःशक्तजन हो अथवा मानसिक दृष्टि से उसे अपने साथी बालकों जिनके सम्पर्क (घर, परिवार , समुदाय विधालय अथवा संगी साथी हो) में वह आता है, निःशक्तता के परिणामस्वरूप अपनी सीमित भागीदारी के कारण, स्पर्धा

में उनसे पिछड़ जाने के कारण, आत्मविश्वास के अभाव स्वरूप वे अधिक हीन भावना तथा उपहास के भय के कारण सामाजिक एवं संवेगात्मक तनाव के प्रभाव स्वरूप वे अधिक वंचित, कुष्ठित एवं तनाव ग्रस्त अनुभव करते हैं। समाज उन्हें परिवारएवं समाज पर भार स्वरूप, अनुपयोगी परजीवी स्वीकार कर दया, करूणा एवं उपेक्षा का पात्र मानता है।

अतः व्यक्ति की शारीरिक अथवा मानसिक निःशक्तता से भी अधिक सामाजिक, संवेगात्मक तनावयुक्त वातावरण उनके जीवन को दुष्कर एवं नारकीय बना देता है। परिवार के सहज– स्नेह से वंचित, समवयस्क मित्र मण्डली की गति, हास परिहास, खेलादि के उत्साह उमंग एवं आनंद से वंचित निःशक्त बालक एकाकी, अंतर्मुखी प्रवृति के, जड़ पदार्थ सम हो जाते हैं।

अतः किसी भी समाज के लिए है कि निःशक्त बच्चों के लिए यह आवश्यक है कि वहां विशेष बच्चों के लिए शैक्षिक विकल्पों के द्वार खुलें हों, जहां निःशक्तजन बालक अपनी निःशक्तता की सीमाओं को स्वीकारते हुये अपनी क्षमता एवं योग्यतानुसार शिक्षा प्राप्त करें। अपनी निःशक्तता को ईश्वरीय देन के रूप में स्वीकार न कर हीन भावना, नैराश्य एवं ग्लानि से विमुक्त हो उसे स्वीकारते हुये स्वालम्बी एवं उत्तरदायी नागरिक बने। उनमें दया नहीं अपितु आशा एवं विश्वास के साथ जीवन को आत्मसम्मान के साथ जीने की ललक विकसित की जाए ताकि वे स्वयं को निष्क्रिय, दीनहीन, परजीवी, पराश्रित, तिरस्कृत एवं उपेक्षित नहीं समझें।[8]

भारतीय समाज में निःशक्तता को दैवीय अभिशाप, नियति के क्रूर आघात के रूप में माना जाता है किंतु सत्य तो यह है कि निःशक्त होना न तो स्वयं बालक के लिए और न माता–पिता के लिए ही पाप अथवा कोई सामाजिक अपराध है। इस मानसिकता से मुक्त कराने हेतु जनमानस में इस सामाजिक चेतना का विकास किया जाना आवश्यक है कि निःशक्त भी एक विवेकशील प्राणी है, उसमें भी अनंत संभावनाएं छिपी रहती हैं।

यह तभी संभव है जबकि निःशक्तजन बालक के माता– पिता एवं समाज सभी को इन संभावनाओं से अवगत कराया जाए। निःशक्तों की शारीरिक एवं मानसिक दशाओं के अनुरूप ही उनकी आकांक्षाओं को जाना जायें तभी वे अपने जीवन में विषय परिस्थितियों का साहस से सामना करते हुए सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण में समायोजित हो सकेंगे और शैक्षिक उपलब्धियों को प्राप्त करने में सफल हो सकेगे।

किंतु यह तभी संभव है जबकि निःशक्त बालको को स्वयं के व्यक्तित्व की पहचान करायी जाए कि उनकी आकांक्षाएं क्या है? अपनी क्षमतानुसार उन्हें वे कहां तक पूर्ण कर

सकते है? किन कारणों से अस्थिदोष युक्त निःशक्तजन बालक समायोजन नहीं कर पाते एवं किस प्रकार से वे समायोजित हो सकते है? यही नहीं कैसे वे अपने निष्क्रिय अंगों को वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से गति दे सकते हैं एवं कैसे उन्हें यह अनुभूति हो कि वे भी उत्पादन में भूमिका का निर्वाह कर समाज और राष्ट्र की चहुंमुखी प्रगति में भी वृद्धि कर सकते हैं।[9]

प्रस्तुत शोध अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि निःशक्त बच्चों की आंकाक्षाएं, व्यक्तित्व, समायोजन, शैक्षिक उपलब्धि एवं अन्य समस्याएं क्या हैं और कहां तक इन समस्याओं का निराकरण अथवा इन्हें कम किया जा सकता है। निस्संदेह शोध का विषय यह देखना है कि निःशक्तों के लिए सरकार एवं स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा प्रदत सुविधाएं और अवसर क्या– क्या हैं? निःशक्तजन बालकों को इनकी जानकारी कहाँ तक है और वे इन सुविधाओं का उपयोग कर भी पाते हैं अथवा नहीं ?

अतः निःशक्त बच्चों की समस्याओं का शोध का विषय बनाया गया है कि ताकि शोध द्वारा उनकी समस्याओं का विश्लेषण कर उनके समाधान हेतु समाज के समक्ष निष्कर्ष प्रस्तुत किए जा सके जिससे चिकित्सा उपलब्ध कराकर उनकी शिक्षा का क्षेत्र निर्धारित कर उन्हें समाज का आत्मनिर्भर एवं उपयोगी नागरिक बनाया जा सके।

प्रशासन, अभिभावक, विद्यालय एवं विभिन्न स्वैच्छिक संस्थाएं, निःशक्त बालकों की इस श्रेणी में सुधार, उनकी शिक्षा, सुरक्षा, व्यवसायिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समायोजन के प्रति कृत संकल्प होंगी तो राष्ट्र का एक बडा हिस्सा आत्मविश्वास, स्वस्थ दृष्टिकोण, जीवन के प्रति आशान्वित होकर कुशल एवं सुयोग्य जन शक्ति के रूप में परिणित हो सकेगा।

वर्तमान लोकतांत्रिक युग में समानता, स्वतंत्रता एवं सामाजिक न्याय के सिद्धांतों के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति को उसकी समुचित शिक्षा, प्रशिक्षण, कौशल, रोजगार एवं व्यक्ति के संतुलित और बहुमुखी विकास हेतु अधिकार प्राप्त है। किंतु अधिकारों को समुचित सदुपयोग व्यक्ति तभी कर सकता है जबकि वह पूर्णतः स्वस्थ हो अर्थात् जहां शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से व्यक्ति पूर्णतः स्वस्थ हो।

यही कारण है कि प्रत्येक समाज और देश में व्यक्ति को उसकी शक्ति, गति एवं सामर्थ्यानुसार, व्यक्तित्व के अधिकतम विकास करने के लिए सुअवसर एवं सुविधाएं प्रदान की जाती है जिससे व्यक्ति देश का स्वावलम्बी एवं सुयोग्य नागरिक बन कर प्रगति की इस दौड में न केवल स्वयं के व्यक्तित्व का विकास कर सके, वरन देश के विकास, सम्पन्नता

एवं समृद्धि की वृद्धि में भी योगदान कर सके। अतः देश में, समाज में एवं संसार भर में सामान्य बालकों के साथ साथ शारीरिक अथवा मानसिक निःशक्तता युक्त बालकों की शिक्षा एवं विकास पर भी समुचित ध्यान देना आवश्यक है।[10]

निःशक्तजों की शिक्षा : वैश्विक परिदृश्य –

वर्ष 1961 अंतर्राष्ट्रीय निःशक्तजन वर्षके रूप में मनाया गया। फलस्वरूप निःशक्तों की शिक्षा एवं पुनर्वास पर अधिकाधिक ध्यान केन्द्रित किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस दृष्टि से अनेक लक्ष्य निर्धारित किये जिनमें से प्रमुख लक्ष्य निम्नानुसार है :–

- निःशक्त व्यक्तियों को अधिक से अधिक सहायता देना। निःशक्तों को प्रशिक्षण देने, देखरेख करने एवं परामर्श हेतु राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विविध प्रयास करना जिससे वे उन्हें प्रदान किये जाने वाले अवसरों का समुचित उपयोग कर सकें।
- निःशक्त व्यक्तियों के आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन के विभिन्न पक्षों में भाग लेने, उनके योगदान और उनके अधिकारों के संबंध में सामान्य जनता को अवगत कराना।

स्वतंत्र भारत में भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय एवं समान अवसरों की प्राप्ति पर बल दिया गया। समय–समय पर विभिन्न शिक्षा आयोगों ने भी निःशक्तजन बालकों की शिक्षा पर बल दिया जिससे निशक्तों को सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण में अनुकूलन स्थापित करने हेतु तत्पर किया जा सके और वे एक अन्य व्यक्ति होने के नाते अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। अतः उनके लिए विशेष प्रावधानों पर बल दिया गया।[11]

मानव जीवन में संवेगों की भूमिका महत्वपूर्ण है। संवेग व्यक्ति–जीवन को प्रभावित करते हैं। जहां सुखद संवेग बालक के व्यक्तित्व का संतुलित विकास करते हैं उसके जीवन को नई दिशा, नवीन चेतना, प्रफुल्लता प्रदान करते हैं, ऐसे निरंतर प्रगति हेतु प्रेरित करते हैं वहीं विपरीत स्थिति में दुखद संवेग बालक के जीवन पर दुष्प्रभाव भी डालते हैं। संवेगात्मक अवरोध जहां शारीरिक विकास को बाधित करते हैं वहीं बालक वैयक्तिक और सामाजिक दृष्टि से असमायोजित भी होते हैं।[12]

किशोरावस्था जो कि संक्रमण काल की अवस्था है, में किशोरों के संवेगों का विकास यदि संतुलित और समरस न हो तो किशोरका व्यक्तित्व, उसका जीवन विघटित विखंडित

हो जाता है उसके जीवन में विभिन्न विसंगतियां घर कर लेती है जिनका दुष्प्रभाव उसके जीवन पर पडता है।

प्रसिद्ध बाल एवं विकास मनोवैज्ञानिक हर्लोक के अनुसार कोई बालक सामाजिक पैदा नहीं होता वह दूसरे के होते हुये भी एकांकी ही होता है। समाज में दूसरे के सम्पर्क में आकर समायोजन की प्रक्रिया सीखता है। आज के समाज में व्यक्ति की अच्छाई तथा बुराई की कसौटी उसका सामाजिक समायोजन है। सामाजिक समायोजन से अभिप्राय है व्यक्ति समाज के साथ सामंजस्य स्थापना में सफल होता है। सुसमायोजित व्यक्ति वह है जो समाज में उन कौशलों को सीखता है जिनके द्वारा वह चतुराई से अपने परिचितों अथवा अपरिचितों के साथ व्यवहार करने की योग्यता ग्रहण करता है जिससे समाज के अन्यव्यक्तिों का उसके प्रति अनुकूल दृष्टिकोण बनता है तथा स्वयं व्यक्ति में भी अनुकूल दृष्टिकोण का विकास होता है जिससे उसमें विभिन्न मानवीय तथा सामाजिक गुणों का विकास होता है।[13]

जैसे–जैसे देश में उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण बढ़ रहा है वैसे–वैसे निःशक्तजनों के जीवन में आर्थिक चुनौतियां बढ़ती जा रही है। निःशक्त चूंकि सामान्य भूमिका का निर्वाह क्षमता एवं सफलता के साथ नहीं कर पाते हैं, अतः इनका अर्थतंत्र भी सामान्य अर्थतंत्र से भिन्न है। सकल घरेलू उत्पाद में उनका योगदान कम है और उत्पादन सम्बन्धों में उनकी भूमिका अनेक संरचनात्मक विसंगतियों को अभिव्यक्त करती है। प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों में निःशक्तजनों की भूमिका एवं उनका योगदान कम रहता है।

निःशक्तजन व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम 1995 बनाया गया और जिसे 2 फरवरी 1996 से लागू किया गया है। इसके तहत निःशक्तजन व्यक्तियों के लिए प्रोत्साहन के अंतर्गत शिक्षा, रोजगार और व्यवसायिक प्रशिक्षण, बाधाओं से मुक्त वातावरण का निर्माण और निःशक्तजनों के लिए पुनर्वास सेवाओं का प्रावधान और बेरोजगारी भत्ते देने जैसे आर्थिक सामाजिक सुरक्षा उपाय शामिल हैं।

लेकिन यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि अधिनियम का व्यावहारिक पालन नहीं हुआ है। सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्र की हर स्तर की नौकरियों कों निःशक्तजनों के तीन प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान कार्यान्वित होते हुए नहीं दिखाई दे रहा है।

लोकतांत्रिक परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य में निःशक्तजनों के लिए आर्थिक सुधारों को एक नया सुदृढ आधार प्रदान करना होगा। उदारीकरण निजीकरण एवं वैश्वीकरण के युग में भी निःशक्त जनों के लिए समुचित प्रयास करने होगे तभी निःशक्तजन समाज की मुख्य धारा से जुड सकेगे।

निःशक्त जनसंख्या परिवार के संचालन की प्रक्रिया ऐसी अनेक आर्थिक क्रियाओं को कर नहीं पाती है अथवा मन्द गति से कर पाती है। जो कि पारिवारिक जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए आवश्यक है। महिला निःशक्त सामाजिक इकाई अनेक पारिवारिक क्रियाओं को जो कि घरेलु अर्थशास्त्र की प्रणाली का भाग है, के करने में कठिनाई का अनुभव करती है अथवा उन्हें एक अधीनस्थ इकाई के रूप में अन्य इकाईयों के सहयोग की आवश्यकता होती है। निःशक्त सामाजिक इकाईयां ज्ञान दक्षता के बावजूद ऐसी अनेक गतिविधियों का उपयुक्त रूप से निर्वाह नहीं कर पाती जो कि प्रशासनिक अथवा पेशे से सम्बन्धित कौशल्य की अवधारणा को निर्मित करते हैं। संगठित एवं असंगठित प्रकृति के औपचारिक एवं अनौपचारिक क्षेत्र में साथ ही प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र में ऐसी अनेक गतिविधियां है जिनमें निःशक्त सामाजिक इकाईयां कुशल, अर्द्ध कुशल अथवा अकुशल श्रमिक की भूमिका का सुचारू रूप से निर्वाह नहीं कर पाती है। इन सबके परिणामस्वरूप सकल घरेलु उत्पाद में निःशक्त सामाजिक इकाईयों का योगदान सामान्य सामाजिक इकाईयों की तुलना में कम होता है और इस कारण निःशक्त सामाजिक इकाईयां आर्थिक सीमांतीकरण की प्रक्रिया का भाग बन जाती है।

विकासात्मक देरी वाले नागरिकों के प्रति इतिहास दयालु नहीं रहा है। पूरे इतिहास में विकासात्मक देरी वाले नागरिकों को निर्णय लेने और विकास के लिए उनकी क्षमता को अयोग्य और अक्षम करार किया जाता रहा है। पुनर्जागरण के दौरान समुदायों के लोग नावों पर उन्ही नागरिकों को भेजते थे, जो विकासात्मक देरी से प्रभावित थे। वे इन्हें मूर्खों के जहाज कहते थे और वे दूसरे बंदरगाह दिखा देते थे, ताकि ये किसी दूसरे समुदाय में चले जायें.।

बीसवीं सदी के शुरू में युजनिक्स (जनसंख्या को नियंत्रित करने वाले) आंदोलन पूरी दुनिया में लोकप्रिय बन गया। इसी कारण से ज्यादातर विकसित देशों में बलात् नसबंदी और शादी के निषेध के लिए मजबूर करने की प्रवृत्ति दिखी और बाद में हिटलर ने यहूदियों के नरसंहार के दौरान मानसिक रूप से निःशक्तजनों की सामूहिक हत्या को तार्किक बताया. युजनिक्स आंदोलन बाद में गंभीर रूप से त्रुटिपूर्ण हो गया और मानवाधिकारों का उल्लंघन होने लगा।

18वीं और 19वीं शताब्दियों में व्यक्तिवाद के आंदोलन और औद्योगिक क्रांति से पैदा हुए अवसरों के चलते मानसिक चिकित्सालयों के मॉडल पर आवास और देखभाल करने की प्रवृत्ति निःशक्तजनों के लिए दिखी.। निःशक्तजनों को उनके परिवारों से हटाकर (आम तौर

पर बचपन में) बड़े संस्थानों में रखा जाने लगा, (3000 नागरिकों तक, कुछ संस्थानों में इससे भी ज्यादा नागरिकों को रखा गया, जैसे 1960 के दशक में पेंसिल्वेनिया राज्य के फिलाडेल्फिया सरकारी अस्पताल में 7,000 नागरिकों को रखा गया)। इनमें से कुछ संस्थानों में बहुत बुनियादी स्तर की शिक्षा (जैसे रंगों में अंतर, अक्षरों और अंकों की पहचान) दी जाती थी, लेकिन ज्यादातर का ध्यान केवल बुनियादी जरूरतों के प्रावधान पर ही केंद्रित रहा। और आर्थिक उत्पादकता के निम्न स्तर के कारण निशकतजनो को समाज के लिए एक बोझ के रूप में माना गया। निःशक्तजन का चिकित्सकीय मॉडल बरकरार रहा. सेवाएं प्रदाता की सुविधा के हिसाब से प्रदान की जाती थीं, न कि व्यक्ति की मानवीय जरूरतों पर आधारित थीं।

प्रचलित दृष्टिकोण की अनदेखी करते हुए 1952 में नागरिकों ने विकासात्मक निःशक्तजनों की सेवा को बड़े संगठनात्मक रूप से प्रमुखता देने का सिलसिला शुरू किया। उनके प्रारंभिक प्रयासों में निःशक्तजनो को विशेष शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षकों के लिए कार्यशालाएं आयोजित करना और निःशक्त बच्चों के लिए दिवस शिविर आयोजित करना शामिल था, यह सब उस समय हुआ, जब इस तरह के प्रशिक्षण कार्यशालाओं और कार्यक्रमों का अस्तित्व नहीं था। विकासात्मक निःशक्तजनके अलगाव पर शिक्षाविदों और नीति निर्माताओं ने तब तक व्यापक रूप से सवाल नहीं उठाया, जब तक 1969 में वोल्फ वोल्फेंसबर्गर के बीजगर्भित कार्य 'दि ऑरिजिन एंड नेचर ऑफ आवर इंस्टीट्यूशनल मॉडल्स' का प्रकाशन हुआ। इसमें कुछ ऐसे विचारों को लिया गया, जिन्हें 100 साल पहले एसजी होव ने प्रस्तावित किया था। इस पुस्तक में कहा गया है कि निःशक्तजनों को समाज बेकार, उप मानव और दान के बोझ के रूप में मानता है और इसका परिणाम यह होता है कि लोग इन्हें 'विसामान्य' भूमिका में पाते हैं। वोल्फेंसबर्गर ने तर्क दिया कि इस अमानवीकरण और इससे पैदा हुए अलग संस्थाओं ने उन संभावित उत्पादक योगदानों की उपेक्षा की जो ये लोग समाज को दे सकते हैं। उन्होंने नीति और व्यवहार में बदलाव पर जोर दिया, ताकि 'निःशक्तजनों' की मानवीय जरूरतों को मान्यता प्राप्त हो सके और तथा समान मानव बुनियादी मानव अधिकार प्रदान किये जा सकें।

निःशक्तजन के इन प्रकारों के संबंध में निःशक्तजन के सामाजिक मॉडल को व्यापक रूप से ग्रहण करने के प्रति पहला कदम माना जा सकता है और अलगाव की सरकारी रणनीतियों के लिए यह प्रेरक तत्व रहा। सरकार के खिलाफ सफल मुकदमों और मानवाधिकारों तथा आत्म–वकालत के प्रति बढ़ती जागरूकता ने भी इस प्रक्रिया में योगदान

किया है, जिसके कारण से 1980 में अमेरिका में सिविल राइट्स ऑफ इंस्टीट्यूटशनाइज्ड पर्सन्स एक्ट को पारित किया जा सका।

1960 के दशक से अब तक ज्यादातर राज्यों ने इन संस्थाओं के उन्मूलन की दिशा में कदम उठाया है। वोल्फेंसबर्गर और गुन्नूर सहित अन्य नागरिकों के कार्यों से सरकारी संस्थानों के डरावने हालातों के घोटालानुमा खुलासों ने जनाक्रोश पैदा किया, जिससे सेवाएं प्रदान करने में और ज्यादा सामुदायिक पद्धति की ओर बदलाव का रुख हुआ। 1970 के दशक के मध्य तक, ज्यादातर सरकारें असंस्थानीकरण करने के लिए प्रतिबद्ध दिखीं और सामान्यीकरण के सिद्धांतों की तरह आम समुदाय में नागरिकों के घूमने–फिरने की छूट देने की तैयारी शुरू की। ज्यादातर देशों में 1990 के दशक के आखिर तक यह काम अनिवार्य रूप से पूरा कर लिया गया, हालांकि इस बात पर बहस होती रही कि मैसाचुसेट्स सहित कुछ राज्यों मे मौजूद संस्थानों को बंद किया जायें या नहीं।

यह तर्क दिया जा सकता है कि हमें अभी भी इस तरह के निःशक्तजनो को समाज के पूर्ण नागरिक के रूप में देखने के लिए बहुत लंबा रास्ता तय करना है। व्यक्ति केन्द्रित योजना और व्यक्ति केन्द्रित दृष्टिकोण के विकास को उन पद्धतियों के रूप में देखा जाता है, जिनमें सामाजिक अवमूल्यन वाले नागरिकों को ठप्पा लगाने और उन्हें अलग–थलग रखने का काम जारी रहता है, जैसे विकासात्मक निःशक्तजन के ठप्पे वाले व्यक्ति को एक ऐसे व्यक्ति पर ध्यान केंद्रित करने को प्रोत्साहित किया जाता है, जिसके पास आवश्यक जरूरत को पूरा करने की क्षमता और कुछ देने की योग्यता है।

'मानसिक निःशक्तजन शब्द एक नैदानिक शब्द है, जो मानसिक कामकाज के अतार्किक श्रेणियों के समूह की ओर संकेत करता है, जैसे 'मूर्ख' 'हीनबुद्धि' और 'बेवकूफ,' जिसे प्रारंभिक बुद्धि परीक्षण के जरिये तय किया जाता है और जिसने आम बातचीत में अपमानजनक अवधारणा ग्रहण कर ली। 'रिटार्डेड' या 'रिटार्ड' शब्दों को अपमान के तौर पर प्रयोग करने के कारण 'मानसिक निःशक्तजन ' शब्द का अर्थ निंदात्मक और लज्जाजनक अवधारणा वाला हो गया।

उत्तरी अमेरिका में मानसिक निःशक्तजन को एक विकासात्मक विकार की एक व्यापक अवधारणा में शामिल किया जाता है, जिसमें विकासात्मक अवधि (जन्म से 18 वर्ष की उम्र तक) में मिरगी, आटिज्म (स्व–लीनता), मस्तिष्क अंगघात व अन्य विकारों को भी शामिल किया जाता है। चूँकि सेवा के प्रावधान निःशक्तजन विकास के पदनाम से बंधा है, इसलिए इसका प्रयोग कई माता पिता, प्रत्यक्ष सहायता पेशेवर और चिकित्सक करते हैं। हालांकि,

संयुक्त राज्य अमेरिका में विद्यालय पर आधारित व्यवस्था में अधिक विशिष्ट शब्द के रूप में मानसिक निःशक्तजन का अभी भी आमतौर पर इस्तेमाल किया जाता है।

ब्रिटेन में 'मानसिक निःशक्तजन' एक आम चिकित्सकीय शब्द बन गया और इसने स्कॉटलैंड में 'दिमागी उप–सामान्यता' तथा इंग्लैंड और वेल्स में 'मानसिक कमी' शब्द की जगह ली.।सीखने की अयोग्यता शब्द का प्रयोग अकसर विद्यालय के काम को प्रभावित करने वाले (अमेरिकी प्रयोग) के रूप में किया जाता है, जो ब्रिटेन में 'सीखने में कठिनाई' के रूप में जाना जाता है। ब्रिटिश सामाजिक कार्यकर्ता 'सीखने में कठिनाई' का उपयोग मानसिक निःशक्तजन और डिस्लेक्सिया (शब्दों और प्रतीकों को समझने में कठिनाई), डिसकैलकुलिया या डिसपाराक्सिया (अंकगणित के हल में कठिनाई) दोनों के संदर्भ में करते हैं। शिक्षा में सीखने की कठिनाइयों का प्रयोग व्यापक स्थितियों में किया जाता है।'सीखने की विशिष्ठ कठिनाइयों' को डिस्लेक्सिया, डिसकैलकुलिया या डिसपाराक्सिया (अंकगणित के हल में कठिनाई) कहा जा सकता है, जबकि 'सीखने की औसत कठिनाइयां', 'सीखने की गंभीर कठिनाइयां' और 'सीखने की विशिष्ठ कठिनाइयां' स्थितियां अधिक महत्वपूर्ण हानि के लिए प्रयोग की जाती हैं।

निर्णय प्रक्रियाओं में निःशक्तों की सहभागिता आंशिक है, क्योंकि निर्णयकारी राजनीतिक संस्थाओं ने निःशक्तों का प्रतिनिधित्व आंशिक है। निःशक्त जनसंख्या शक्ति सम्बन्धों का चूँकि प्रभावी भाग नहीं है, अतः वह राजनीतिक दबाव के लिये आवश्यक हित समूह एवं दबाव समूह का निर्माण नहीं कर पाती।राजनीतिक क्षेत्र में निःशक्तों की स्थिति कहीं ना कहीं बहिष्करण की प्रक्रिया की भी परिचायक है। राजनीतिक अभिजन की संरचना में निःशक्त जनों की संख्या बहुत कम है। विभिन्न राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय राजनीतिक दलों में नेतृत्वकारी इकाईयों में ही इनकी संख्या बहुत कम है।

महिला निःशक्तजन सामाजिक इकाई के रूप में राजनीतिक सहभागिता की दृष्टि से लगभग पूर्ण रूप से हाशिये पर है। राजनीतिक समाजशास्त्र की दृष्टि से निःशक्त जनसंख्या को राजनीतिक सहभागिता से लगभग पूर्णरूपेण पृथक नागरिक की सामाजिक श्रेणी में रखा जा सकता है।चुनाव में चूंकि गतिशीलता होना आवश्यक है जो कि निःशक्त सामाजिक इकाई की कमोवेश विशेषता नहीं है। यह भी देखा गया है कि विभिन्न राजनीतिक दलों मे निःशक्त जन सक्रिय कार्यकर्त्ता भी नहीं है और इस कारण उनसे सम्बन्धित नीतियाँ, कार्यक्रम एवं अन्य संस्थागत प्रयास लगभग न के बराबर है। यदि हैराल्ड लास्की की

शब्दावली को केन्द्र में लाया जाये तो निःशक्त जन द्वितीय श्रेणी के नागरिक बन जाते हैं जिनके हितों के प्रति अन्य सजग इकाईयां उपेक्षा का भाव बरतती है।

इस दृष्टि से राजनीतिक व्यवस्था को निःशक्त जनों के सन्दर्भ में केन्द्र एवं परिधि में विभक्त किया जा सकता है। केन्द्र में सामान्य सामाजिक इकाईयां सम्मिलित है जबकि परिधि में निःशक्त सामाजिक इकाईयों सहित हाशिये पर खडी अन्य सामाजिक श्रेणियां भी है पर सबसे अन्त में निःशक्त भी आते हैं अर्थात् हाशिये पर खडी जनसंख्या वाली सामाजिक श्रणियों में निःशक्त और भी हाशिये पर है। संस्तरण की यह जटिलता दबावसमूह एवं हितसमूहों के निर्माण की प्रक्रिया में निःशक्तों की भूमिका को सीमित कर देती है। विश्व में किसी भी भाग में ऐसा कोई महत्वपूर्ण सामाजिक आन्दोलन दृष्टिगोचर नहीं होता है जो मुख्यतः निःशक्तजनों के द्वारा या तो संचालित हो या निःशक्त जनों के हितों के समर्थन में हो।संस्कृति, राजनीति एवं अर्थतन्त्र अन्तःसम्बद्ध अवधारणाएं है और इस अन्तःसम्बद्धता में केन्द्र और परिधि का वर्गीकरण निःशक्तों के संदर्भ में अर्थपूर्ण तरीके से लागू होता है। अत शोधार्थी ने संस्कृति,राजनीति एवं अर्थतंत्र की अंतःसंम्बद्धता को रेखांकित करने का प्रयास किया है। तथा उसमें निःशक्त जनसंख्या के सामाजिक स्थान की तलाश की।

संदर्भ सूची

1. स्टेट यूटी वाइज परसंस विथ डिसएबिलिटी (जनगणना 2011)

   (http//disabilityaffairs.gov.in/content/page/state_ut-wise-persons.php)

2. ऋग्वेद, भाग–1, सूक्त–112/8।

   (http://vedpuran.net>download-all-ved-puran-pdf-hindi-free)

3. नीति श्लोक, ''वैदिक साहित्य''।

   (http://vichaarsanklan.wordpress.com/tag/नीतिश्लोक)

4. रमामणि, डी. (1988) ''फिजीकली हैण्डीकैप्डइन इंडिया'' आशीष पब्लिशिंग हाउस, पंजाबीबाग, न्यू देहली, पृ. सं. 191।

5. भारत का संविधान, भाग–3 एवं 4।

   (http://hi/m-wikipedia.org/wiki/भारत का संविधान)

6. आनंद, एस. एवं साथी (1991) ''निःशक्तजन एकीकृत शिक्षा योजना'' स्पोन्सर्ड बाई राज शिक्षा विभाग, बीकानेर, पृ. सं. 108।

7. कौर एण्ड अमृत, रथ एवं सागर, एम.एम. (1989) ''स्पेशल एजूकेशन'' डिपार्टमेन्ट आफ स्पेशल एजूकेशन, रीजनल कालेज आफ एजूकेशन, एन.सी. ई. आर.टी. अजमेर, पृ. सं. 83।

8. टेलर, वैलेस. डब्ल्यू एण्ड आईसाबेला डब्ल्यू (1960)''इनडिविजुएल स्पेशल एजुकेशन आफ फिजिकली हैण्डीकैप्ड चिल्ड्रन इन वेस्टन यूरोप'' न्यूयार्क इंटीग्रेशन सोसायटी फॉर द रिहैबिलिंटेशन आफ डिसेबल्ड, पृ. सं. 155।

9. मण्डल, बी.बी''फिजीकली हैण्डीकैप्ड इन बिहार इन्स्टीट्यूट आफ सोशल रिसर्च एण्ड एप्लाईड एन्थ्रोपोलॉजी कोलकता'' एम.बी. बुच सैकण्ड सर्वे आफ रिसर्च एजुकेशन, पृ. सं. 110।

10. कौशिक, बी.एन. (1977)''निःशक्तजन शिक्षा सिंधु'' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ. सं. 102।

11. केलकर, निर्मला ''एग्जिस्टिंग सोशल बैरियर एण्ड कम्युनिटी एटीटयूडस एण्ड लॉ कन्सर्निंग दी डिसेएबल्ड सेमीनार रिपोर्ट उद्धत''।

12. एण्डरसन, एलिजाबेथ एम. (1983)''द डिसेबल्ड स्कूल चाईल्ड एक स्टडी आफ इटीग्रेशन इन प्राईमरी स्कूल्स'', मैथ्यूज एण्ड क. लि.न्यू फैदर लेन लंदन, पृ. सं. 93।

13. हर्लोक, इ.बी. (1967) ''एडोलेसेन्टस डवलपमेंट'' मैकग्रा हिल्स बुक क. लंदन पृ. सं. 38।

तृतीय अध्याय

निःशक्तजन एवं सामाजिक परिवेश : समाज वैज्ञानिकों की दृष्टि

निःशक्तजनों की सामाजिक परिवेश का अतीत वर्तमान एवं भावी स्वरूप क्या हो सकता है, के पक्ष समाज वैज्ञानिकों को अध्ययन के लिये आकर्षित करते रहे हैं। हालांकि यह एक सामाजिक एवं अकादमिक यथार्थ है कि निःशक्त जनों पर समाज विज्ञानों में अन्य विषयों की तुलना में अध्ययन कम हुए हैं। सम्भवतया प्रत्येक समाज विज्ञान मुख्यधारायी (मैन स्टीम) समाज विज्ञान एवं सीमांत (मार्जिनल) समाज विज्ञान में विभक्त किया जा सकता है। निःशक्त जनों का अध्ययन शोधार्थी की दृष्टि से धीमा सीमांत समाज विज्ञान का भाग है। शोधार्थी ने अनेक प्रयासों के माध्यम से उन अध्ययनों एवं शोध लेखों को तलाशने की कोशिश की जो निःशक्त जनों के जीवन विश्व की व्याख्या करते हैं। इन सम्बन्धित अध्ययनों को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया गया है।

निःशक्तों की अवधारणा को अनेक समाज वैज्ञानिकों ने निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है :–

डब्ल्यू.एम. क्रक्स बैंक का कहना है कि किसी व्यक्ति की निःशक्तता उस संस्कृति या समाज की आवश्यकताओं पर निर्भर करती है, जिसमें वह रहता है; किसी समाज या संस्कृति में जो चीज प्राकृतिक व सही हैं, वहीं दूसरे समाज में अलग दृष्टिकोण से भी देखी जा सकती हैं। जैसे–चीन में पैरों की प्राकृतिक वृद्धि को रोकना फैशन है, वहीं अमेरिका में असाधारण है।[1]

यह अवधारणा परिभाषित करती है कि निःशक्तता प्रत्येक समाज एवं संस्कृति में विशिष्ट होती है। अर्थात् कोई समाज या संस्कृति जिसे निःशक्तता के रूप में स्वीकार करें। आवश्यक नहीं है कि उसे दूसरे समाज और संस्कृति की स्वीकृति भी प्राप्त हों।

जोन डी. कर्शा का कहना है कि वर्णान्धता एक प्रकार की अक्षमता है, जिसके कारण ऐसे व्यक्ति समुन्दर में नैविगेटिव अधिकारी व ड्राइवर के रोजगार के लिये असमर्थ होते है। परन्तु कुछ ऐसे क्षेत्रों को छोड़कर ये व्यक्ति इस तरह अपने रोजगार में आगे बढ़ते हैं कि कई बार दूसरे व्यक्तियों को उनकी इस निःशक्तता के बारे में पता भी नहीं लगता है।[2]

यह अवधारणा विवेचना करती है कि वर्णान्धता एक अक्षमता है, जिसमें व्यक्ति कुछ क्षेत्रों को छोड़कर अपने रोजगार हेतु अन्य क्षेत्रों में इस तरह कार्य करता है कि उसकी निःशक्तता उस कार्य को करने में बाधक नहीं होती है, और न ही उसकी अक्षमता की जानकारी अन्य नागरिकों को हो पाती है।

उषा भट्ट का मानना है कि निःशक्तता कई प्रकार के मापदण्डों पर आधारित है। किसी एक मापदण्ड के आधार पर निःशक्तता का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है।[3]

यह अवधारणा निरूपित करती है कि निःशक्तता को कई मापदण्डों पर परखा जा सकता है। निःशक्तता के मूल्यांकन को किसी एक मापदण्ड के आधार पर नहीं परखा जा सकता है। ये मापदण्ड समय, काल और परिस्थिति के अनुरूप बदल सकते हैं लेकिन कुछ सार्वभौमिक मान्यतायें सदैव स्थायी रहती हैं।

डब्ल्यू. जोन ने समाजशास्त्रीय शब्दकोष में निःशक्त व्यक्ति को पारिभाषित करते हुए लिखा है कि निःशक्त व्यक्ति वह है, जिसमें शारीरिक दोष हो और वह अपने व्यक्तिगत एवं सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करने में असमर्थ हों तथा समाज में अपना एक निश्चित स्थान न बना सके।[4]

यह अवधारणा परिभाषित करती है कि शारीरिक दोष से निःशक्त व्यक्ति अपने व्यक्तिगत व सामाजिक कर्तव्यों के निर्वहन करने में अक्षम होने के कारण समाज में अपना एक निश्चित स्थान नहीं बना पाता है।

जीओआई प्लानिंग कमिश्नर के अनुसार, "सामान्यतः दृष्टिहीन व्यक्ति वह है, जो अपने देखने की क्षमता का उपयोग अपनी शिक्षा व जीवन यापन के लिये नहीं कर सकता है।[5]

यह अवधारणा परिभाषित करती है कि दृष्टिहीन व्यक्ति वह है कि जो अपनी शिक्षा व जीवन यापन हेतु अपनी दृष्टिहीनता के कारण अपनी अन्दर की छिपी क्षमता का उपयोग नहीं कर सकता है और वह सामान्य नागरिकों के अनुरूप संसार को नहीं देख पाता है।

टी.आर. शुक्ला कहते हैं कि मानसिक विमंदित व्यक्ति वह है, जिनकी बुद्धिलब्धि का स्तर सामान्य व्यक्ति के बुद्धिलब्धि के स्तर से कम होता है। मानसिक विमंदित व्यक्तियों में विभेदीकरण, पूर्वाग्रह और पृथक्करण की क्षमता सामान्य व्यक्तियों की तुलना में कम होती है।[6]

मानसिक विमंदिता समाज में कई प्रकार की कठिनाईयां उत्पन्न कर रही है। समाज भी मानसिक विमंदितों के लिये हमेशा से प्रयत्नशील रहा है। मानसिक विमंदित बालक अपनी सीमित मानसिक क्षमताओं के कारण सामान्य बालकों की अपेक्षा अपने जीवन में अधिक कठिनाईयों का सामना करते है। मानसिक विमंदितों की बुद्धिलब्धि का स्तर सामान्य से कम होता है और मानसिक विमंदिता प्रायः जन्मजात या जन्म के बाद होती है।

यह अवधारणा निरूपित करती है कि मानसिक विमंदित व्यक्ति का बुद्धिलब्धि स्तर सामान्य व्यक्ति के बुद्धिलब्धि स्तर से कम होने के कारण मानसिक विमंदित व्यक्तियों में विभेदीकरण, पूर्वाग्रह और पृथक्करण की क्षमता सामान्य व्यक्तियों की तुलना में कम होती है।

भारत में मुंबई में 1984 में निःशक्त के लिये सर्वप्रथम मूक विद्यालय खोला गया और दूसरा अमृतसर में दृष्टिहीनों के लिए 1986 में खोला गया।

ब्र.ना. कौशिक का मानना है कि अंधापन प्रकृति, बीमारी, कुपोषण और साधनहीनता की देन है। सामाजिक विषमताओं, शोषण, सरकार तथा समाज द्वारा उपेक्षित व अनुचित व्यवहार के कारण अंधे सदियों से दया के पात्र बनकर जी रहे हैं। कई व्यक्ति जीवन से निराश होकर आत्महत्या भी कर लेते हैं। अंधता जीवन के प्रत्येक स्तर पर आंकी जाती है। जैसे– स्वार्थान्ध, मदान्ध, पदान्ध आदि। यह प्रयोग समय व कार्य के अनुसार समाज में होता रहता है। आयुर्विज्ञान में अंधता से अभिप्राय है– चक्षुओं से कुछ भी नहीं देख पाना अर्थात् पूर्णतः दृष्टिहीनता।[7]

इस अवधारणा का अभिप्राय है कि अन्धापन के कारण प्रकृति, बीमारी, कुपोषण और साधनहीनता है। अन्धे व्यक्ति सामाजिक विषमताओं एवं समाज द्वारा उपेक्षित एवं अनुचित व्यवहार के कारण हमेशा से ही दया के पात्र समझे जाते रहे है। इस उपेक्षित व्यवहार के कारण ऐसे व्यक्ति अपने जीवन से निराश हो जाते है। तथा आत्मघाती कदम उठा लेते है।

क्लॉस का कहना है कि बधिरता बधिर व्यक्ति के सामान्य जीवन को बिताने में बहुत बडी बाधा है। उसका पता केवल उस समय चलता है, जब बधिर दूसरे नागरिकों के साथ सम्पर्क में आता है। सुनाई न देना व्यक्ति के लिये न केवल कष्ट देता है, वरन यह उसके जीवन के लिये भी खतरा बन जाता है। बधिर व्यक्ति को उसकी सामान्य बुद्धि के होते हुये भी पढ़ने में, लिखने में, सीखने में, समझने में, काम करने में, सामाजिक जीवन में, भावनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक रूप में और रोजगार संबंधी समस्याऐं हो सकती हैं। बधिर की

समस्याओं को बहुत सावधानी से हल करने की जरूरत है। बधिर बातचीत में भाग न ले सकने के कारण बिल्कुल अलग–थलग, बहिष्कृत एवं एकाकीपन का अनुभव करते हैं।[8]

यह अवधारणा परिभाषित करती है कि बधिरता बधिर व्यक्ति के सामान्य जीवन को बिताने में बहुत बड़ी बाधा है। बधिर व्यक्ति को उसकी सामान्य बुद्धि के होते हुये भी पढ़ने में, लिखने में, सीखने में, समझने में, काम करने में, सामाजिक जीवन में, भावनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक रूप में और रोजगार संबंधी समस्याऐं होती हैं, जिसके कारण वे अपने आपको बिल्कुल अलग–थलग, बहिष्कृत एवं एकाकीपन का अनुभव करते हैं।

जगदीश चन्द्र मिश्र का कहना है कि आंगिक निःशक्तता आंगिक असामान्यता के फलस्वरूप शारीरिक निःशक्त प्रथम दृष्टि में ही पहचाने जा सकते हैं। यह अन्तर शरीर की संरचनायें, चलना, उठना, बैठना के अतिरिक्त कार्यविधि, कार्य क्षमता, कार्य परिणाम से स्पष्ट जाना जा सकता है। शारीरिक निःशक्त औसत शारीरिक अवस्था सम्पन्न शक्ति से आंतरिक एवं बाह्य संरचना से भिन्न होता है। अतः आंगिक निःशक्तता को किसी कमी के कारण या हड्डियों–पेशियों या जोड़ों के सामान्य कार्यो में बाधा पहुंचाने वाले के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।[9]

यह अवधारणा निरूपित करती है कि आंगिक निःशक्तता आंगिक असामान्यता के फलस्वरूप शारीरिक निःशक्त औसत शारीरिक अवस्था सम्पन्न शक्ति से आंतरिक एवं बाह्य संरचना से भिन्न होती है। यह अन्तर शरीर की संरचना, चलना, उठना, बैठना के अतिरिक्त कार्याविधि, कार्य क्षमता, कार्य परिणाम से स्पष्ट जाना जा सकता है।

टायलर एण्ड टायलर का मानना है कि निःशक्तता की परिभाषा का जन्म व्यवसायिक एवं शिक्षित वर्ग की बुद्धिमता से हुआ है। सामान्य नागरिकों की सेवा शुश्रुषा ने निःशक्तता की परिभाषा को अर्थ दिया, जिससे की निःशक्तों को उन शक्तियों द्वारा समझा जा सके, जिन्हें उनसे सेवा व लाभ प्राप्त करना है।[10]

यह अवधारणा विवेचना करती है कि निःशक्तता की परिभाषा का जन्म व्यवसायिक एवं शिक्षित वर्ग की बुद्धिमता से हुआ है।

एम.एस. हुसैन की परिभाषा है कि शारीरिक निःशक्त अलग–अलग व्यक्तियों ने कई प्रकार से परिभाषित किये हैं। शारीरिक निःशक्त की दो देशों ने एक जैसी परिभाषा नहीं दी है। सक्षम और असक्षम व्यक्ति में कोई स्पष्ट विभेदीकरण नहीं है।

निःशक्तता अपने आप में कई प्रकार की अक्षमताऐं अलग–अलग प्रकार से समावेशित किये हुये है, जो अलग–अलग व्यक्तियों को अलग–अलग रूप से प्रभावित करती है। इसकी सीमा की शुरूआत एक अंगुली के पूर्ण या अपूर्ण होने से न होने से शुरू हो सकती है, जिसमें व्यक्ति के दैनिक जीवन में कोई असर नहीं पडता है। दूसरी तरफ पूर्णरूपेण निःशक्तता जैसे दृष्टिहीनता, जिसमें व्यक्ति के जीवन व कार्य करने की क्षमता पर बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ता है।[11]

यह अवधारणा निरूपित करती है कि शारीरिक निःशक्त अलग–अलग व्यक्तियों ने कई प्रकार से परिभाषित किये हैं। शारीरिक निःशक्त की दो देशों ने एक जैसी परिभाषा नहीं दी है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन का कहना है कि चूंकि निःशक्तता मुख्यतः एक शरीर शास्त्रीय अवधारणा है। अतः विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसे विस्तृत रूप से अर्थ की दृष्टि से प्रस्तुत किया है।

निःशक्त व्यक्ति वह है जो निम्न तीन में से किसी एक से पीड़ित हो :–

1. अपंगता –

अपंगता से तात्पर्य किसी अंग की बनावट या कार्यशीलता में शारीरिक, मनोवैज्ञानिक एवं आंतरिक संरचना में स्थाई या अस्थाई रूप से कमी आना है। जैसे– पोलियों, डायबिटीज, मानसिक पिछड़ापन, कम श्रवण शक्ति, दूरदृष्टि दोष।

2. निर्योग्यता –

निर्योग्यता वह है, जिसमें व्यक्ति अपंगता के कारण सामान्य व्यक्ति की तरह कार्य करने में असमर्थ होता है। निर्योग्यता स्थाई या अस्थाई हो सकती है, जो अपने प्रभाव से व्यक्ति की स्थिति में परिवर्तन कर सकती है।

3 निःशक्तता –

निःशक्तता किसी भी व्यक्ति की आंतरिक व बाह्य संरचना में वह व्यवधान है, जो व्यक्ति की स्वतंत्र आर्थिक कार्यप्रणाली जैसे–स्वयं का ध्यान रखना, अपने विचार व्यक्त न कर पाना आदि को प्रभावित करती है।[12]

जगत सिंह का कहना है कि संसार में निःशक्त व्यक्तियों की संख्या 45 करोड़ से अधिक है। केवल भारत में यह संख्या 4 करोड़ से कम नहीं है। भारत में एक करोड़ से

अधिक तो केवल ऐसे व्यक्ति है, जो नेत्रहीन है। 20–25 लाख सुन नहीं सकते और 50–60 लाख ऐसे जिनका कोई ना कोई अंग नहीं है। अकेले मंद बुद्धि की संख्या एक और डेढ़ करोड के बीच में है।

निःशक्तता के कई कारण होते हैं। यह जन्म से भी हो सकती है और जन्म के समय के भी कई कारण हो सकते है। जैसे काम करते समय या सड़क दुर्घटना के कारण। शारीरिक व मानसिक रोग भी निःशक्तता का एक बहुत बडा कारण है। खानपान में उचित तत्वों की कमी, मदिरापान वस्तुओं का उपयोग आदि।[13]

हैराल्ड ने शारीरिक निःशक्तता को निम्न क्षेत्रों में विभाजित किया है –

(1) **चिकित्सा** – एक शारीरिक निःशक्त व्यक्ति वह है, जो सामान्य है, जिसमें यह निःशक्ता भले ही किसी भी कारण जैसे–बीमारी, चोट, पैतृकता से आई हो, उसके शरीर की शारीरिक क्रियाशीलता (चलने फिरने की क्षमता, अनुभव करना या विशेष अंगो को प्रभावित करना) को प्रभावित करती है।

(2) **व्यवसायिक** – व्यवसायिक पुर्नवास एक्ट 1954 यू.एस. के अनुसार निःशक्त व्यक्ति वह है, जो शारीरिक व मानसिक अक्षमता से ग्रसित है। व्यवसायिक पुर्नवास ऐसे शारीरिक निःशक्त को रोजगार मुहैया कराता है।

(3) **समाजशास्त्रीय** – शारीरिक निःशक्तता चिकित्सीय एवं एन्ट्रोपोलॉजिक दृष्टि की अपेक्षा सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। यह समाज में व्यक्ति की परिस्थिति को प्रभावित करती है। उन्होंने बताया कि हमने अपने उद्देश्यों के लिए शारीरिक निःशक्तता की परिभाषा को सीमित किया है। शारीरिक निःशक्तता वह है, जो व्यक्ति को शारीरिक अक्षमताओं के कारण समाज में एक नकारात्मक दृष्टिकोण प्रदान करती है।

(4) **शैक्षणिक** – निःशक्त बालक वह है, जिसकी शारीरिक अक्षमता उसे बचपन की सामाजिक, शैक्षणिक, व्यवसायिक गतिविधियिों में भाग लेने से रोकती है।[14]

सूर्यकान्त मिश्र ने मौटे तौर पर शारीरिक एवं मानसिक निःशक्तता की श्रेणियां दी है। निःशक्तता जन्मजात या अर्जित है; अत्यधिक औषधि का प्रयोग, तेज बुखार, चोट लगना, मां का कमजोर होना, मानसिक तनाव, खून में कमी, हाथ पैर में जलन, दौरा पड़ना, रक्तचाप की परेशानी आदि निःशक्तता के मुख्य कारण है।[15]

यह अवधारणा निरूपित करती है कि निःशक्तता जन्मजात या अर्जित है। अत्यधिक औषधि का प्रयोग, तेज बुखार, चोट लगना, मां का कमजोर होना, मानसिक तनाव, खून में कमी, हाथ पैर में जलन, दौरा पड़ना, रक्तचाप की परेशानी आदि निःशक्तता के मुख्य कारण है।

डॉ॰ किरण का कहना है कि चिकित्सकों का मानना है कि बच्चों के अतिक्रियाशील मस्तिष्क के आधे भाग की क्रियाशीलता के छिन्न भिन्न हो जाने पर ये हकलाने लगते हैं। ऐसे में उनके मस्तिष्क की सोचने व समझने की क्रिया समाप्त हो जाती है। हकलाने की अवस्था में सर्वप्रथम शब्द ध्वनियों की पुनरावृत्ति होती है। बच्चा शब्दों को बार–बार दोहराने लगता है और वह संयत होकर बोलने का प्रयास भी करता है। मगर हीनता की ग्रन्थि उसके बोलने में गतिरोध उत्पन्न कर देती है। हकलाने की द्वितीय अवस्था में बच्चा शब्दों की ध्वनि को दोहराने की बजाय उसे बाहर नहीं निकलने देता है।[16]

यह अवधारणा परिभाषित करती है कि बच्चों के अतिक्रियाशील मस्तिष्क के आधे भाग की क्रियाशीलता के छिन्न भिन्न हो जाने पर ये हकलाने लगते है। ऐसे में उनके मस्तिष्क की सोचने व समझने की क्रिया समाप्त हो जाती है।

एल. स्वार्ट्ज का कहना है कि निःशक्त व्यक्ति व उनके संगठनों का निःशक्तता की शोध प्रक्रिया में योगदान नीहित है। उन्होंने इंगित किया कि निःशक्कता के विश्लेषण के बहुत सीमित प्रयास है। स्वार्ट्ज ने कहा है कि व्यक्तियों में निःशक्तों की संख्या को जानने के लिए बहुत सीमित क्षेत्र है, जबकि शोध प्रक्रिया में इन सभी तथ्यों का होना अत्यन्त आवश्यक है। शोध प्रक्रिया के लिए निःशक्त व्यक्तियों एवं संगठनों दोनों का सशक्त होना महत्वपूर्ण है।[17]

यह अवधारणा निरूपित करती है कि शोध प्रक्रिया में निःशक्त व्यक्ति एवं उनके संगठनों का महत्वपूर्ण योगदान है।

आक्ये अबोसी का मानना है कि बोत्सवाना सरकार की प्राथमिकताओं में निःशक्तता का अध्ययन व्यक्तियों के विशेष शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण है। स्वास्थ्य सेवा सम्बन्धी नीतियों एवं कार्यक्रमों को बनाने में बहुनिःशक्तता के उदाहरणों का अध्ययन बेहद लाभकारी होता है, जो एड्स, एचआईबी एवं गरीबी के उन्मूलन में सहायक होते है।[18]

यह अवधारणा परिभाषित करती है कि निःशक्तता का अध्ययन व्यक्तियों एवं विशेष शिक्षा के विकास एवं सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

हमारे समाज में प्रचलित रीति के अनुसार हम किसी योजना या किसी आन्दोलन की, शुरुआती तारीख को प्रतिवर्ष उस दिन उसकी याद में पूरे मनोयोग से मनाते हैं और तो और उस आयोजन के उद्देश्य को भी याद करते हैं। इसी परंपरा का निर्वाह करते हुए हम 1992 से 3 दिसम्बर को प्रतिवर्ष निःशक्तजन दिवस मनाते हैं। इस दिन कई तरह के सांस्कृतिक तथा खेलकूद से संबन्धित कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं, रैलियाँ निकाली जाती है तथा सरकार द्वारा शारीरिक अक्षम नागरिकों के हित के लिये कई लाभकारी योजनाओं की भी घोषणा की जाती है। निःशक्तजन दिवस मनाने का उद्देश्य है कि आधुनिक समाज में शारीरिक रूप से अक्षम नागरिकों के साथ हो रहे भेद–भाव को समाप्त करना तथा शारीरिक रूप से अक्षम नागरिकों को मुख्य धारा में लाने का प्रयास करना। इसी के तहत 2013 के निःशक्तजन दिवस का थीम था –

"बाधाओ को तोड़ें, दरवाजों को खोलें सभी के लिए एक समावेशी समाज एवं विकास"।

वास्तविकता तो यह है कि हम वर्ष के सिर्फ एक दिन उस दिवस के उद्देश्यों और आदर्शों को बहुत मनोयोग से मनाते हैं लेकिन अगले ही दिन हम उन आदर्शों और उद्देशों को भूल जाते हैं। हम सब अपने–अपने जीवन में व्यस्त हो जाते हैं। जबकी खास तौर से निःशक्तजन दिवस का उद्देश्य तभी सार्थक हो सकता है जब हम सिर्फ एक दिन नहीं वरन वर्ष के सभी दिन उन्हे अपने समाज का हिस्सा माने और उनके साथ सहयोग की भावना रखें।

आज हमारा देश भारत विकासशील देश की श्रेणी में है। हमने विज्ञान में अनेक कीर्तिमान रचे हैं, हाल ही में हम मंगल पर भी अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुके हैं। परंतु अभी भी हम भेद–भाव के वायरस को समाप्त नहीं कर सके हैं। शारीरिक अक्षमता जन्मजात भी हो सकती है और दुर्घटना के कारण से भी हो सकती है, परंतु जिस निःशक्तता का उन्हे अहसास कराया जाता है वह हमारे समाज की निःशक्तजन मानसिकता को ही दर्शाता है।

यदि हम दृष्टिबाधित नागरिकों की बात करें तो उन्हे सबसे पहले अपने परिवारिजनों की ही उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है क्योंकि कई परिवार तो इस डर से कि समाज में कोई क्या कहेगा या परिवार के बाकी बच्चों का विवाह कैसे होगा जैसे कारणों के कारण से दृष्टिबाधितों को छुपाकर रखते है या उन्हे किसी संस्था में छोड कर दुबारा उनकी तरफ देखते भी नही। बहुत कम खुशनसीब दृष्टिबाधित बच्चे हैं जिनका परिवार उनके साथ होता

है। ऐसी उपेक्षित परिस्थिति में दृष्टिबाधित बच्चों का सफल विकास कैसे संभव हो सकता है?

हमारी प्रचलित मान्यताएं और रुढ़िवादी विचारधारा इस परेशानी में आग में घी का काम करती हैं। वर्षों पहले तक अक्षम बच्चों को अपमान जनक समझा जाता था। दृष्टिबाधिता को सजा का प्रतीक समझा जाता था। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि आज भी समाज के कुछ वर्ग में ये मनोवृत्ति व्याप्त है कि अंधापन उनके पूर्व जन्म के पाप की सजा है या उनके माँ–बाप के अनुचित कार्यों का ही परिणाम है। आज समय के साथ शिक्षा के विस्तृत ज्ञान ने समाज की अवधारणा को थोड़ा परिवर्तित जरूर किया है किन्तु आज भी अंधापन सजा की परिभाषा से निकलकर दयाभाव, भिक्षादान के जाल में उलझ गई है। जिसमें अकसर मानवतापूर्ण सहानुभूति का अभाव नजर आता है। सच्चाई तो यह है कि यदि हम दृष्टि बाधित बच्चो को भी उचित सहयोग और अवसर प्रदान करें तो वह भी आत्मनिर्भर बनकर देश के विकास में अपना योगदान दे सकते हैं क्योकि निःशक्तजन कोई अभिशाप नही है।

मदर टेरेसा का कहना था कि महत्वपूर्ण ये नही है की आपने कितना दिया, बल्कि महत्वपूर्ण ये है कि देते समय आपने कितने प्यार से दिया।

विकास के इस दौर में आवश्यकता है कि हम सब मिलकर दृष्टिबाधित बच्चों के लिये मानवीय भावना से ओत–प्रोत एक ऐसे आसमान की रचना करें, जिसकी छाँव में दृष्टिबाधित बच्चे सकारात्मक सहयोग और स्वयं के प्रयास से आत्मनिर्भर बन सकें।दृष्टिबाधितों के विकास में हम उनकी शैक्षणिक पाठ्य सामग्री को रिकार्ड करके, परीक्षा के समय सहलेखक बनकर तथा चिकित्सा आदि के माध्यम से अपनी सामाजिक जिम्मेदारी को निभा सकते हैं। हम सबकी सामाजिक चेतना के सहयोग से, दृष्टि बाधित बच्चों में भी आत्म–सम्मान से जीने की भावना का विकास होगा, जो किसी भी समाज और देश के लिये हितकर होगा। समाज की प्रथम इकाई परिवार के भावनात्मक सहयोग और हम सबके मानवीय दृष्टिकोंण से देखें तो दृष्टिबाधितों को जो सुरक्षित और आशावादी क्षितिज प्राप्त होगा उसकी मधुर एवं संवेदनशील छाँव में यह बच्चे निश्चय ही विकास की इबारत लिखेंगे। निःसंदेह हम सबके साथ से विकलांगता दिवस सार्थक और सफल बन सकता है। सुगम्य भारत अभियान की पहल समाज के निःशक्तजन व्यक्तियों को मजबूती प्रदान करने के लिये शुरु की गयी है। यह आसानी से सभी सार्वजनिक स्थानों का उपयोग करने के लिए उन्हें सक्षम बनाना है। यह अभियान सुलभ भारत अभियान (एक्सेसिबल इंडिया कैंपेन) के रूप में

भी जाना जाता है क्योंकि यह निःशक्तजन नागरिकों के लिये समान सुविधाओं के लिए आसान पहुँच प्रदान करता है। यह कदम भारत सरकार द्वारा निःशक्तजन नागरिकों द्वारा झेली जा रही बड़ी समस्या को हल करने के लिए उठाया गया है। यह अभियान पूर्ण गरिमा के साथ शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य देखभाल, परिवहन, खेल, मनोरंजन और समान अवसर उपलब्ध कराने के लिये निःशक्तजन नागरिकों को सार्वभौमिक पहुँच प्राप्त करने के उद्देश्य से शुरु किया गया है। वर्तमान प्रधानमंत्री ने अपने भाषण में निःशक्त जनों के लिये दिव्यांग शब्द का संबोधन किया। यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक निःशक्त में किसी न किसी असाधारण विशेषता अथवा सृजनशीलता का समावेश होता है। उदाहरण के लिये सूरदास जो दृष्टिबाधित थे, में लोकसाहित्य के व्यापक और एक सीमा तक असाधारण समझ दी। इस दृष्टि से प्रत्येक निःशक्त में कुछ न कुछ क्षमताएं हैं जिनको यदि उत्साहित किया जाए और व्यवस्थित रूप से उनके उन्नयन के प्रयास किये जाये तो निःशक्त विभिन्न विधाओं में एक प्रभावी भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं।

सुगम्य भारत अभियान भौतिक वातावरण को निःशक्तजनों के लिये सुलभ, सहज और योग्य बनाने के उद्देश्य से शुरु किया गया है। यह निःशक्तजन नागरिकों के लिए सार्वजनिक स्थानों, परिवहन, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की पहुंच के साथ–साथ प्रयोज्य (उपयोग) को बढ़ाने के लिए है।

इस अभियान के बारे में जागरूकता फैलाने के लिए ऑनलाइन वेब पोर्टलों और मोबाइल अनुप्रयोग विकसित किया गया। ऑनलाइन वेबसाइटों और मोबाइल एप्लिकेशन के उपयोग के माध्यम से इस अभियान के बारे में अपने दृष्टिकोणों और विचारों को अपलोड करने के लिए आम जनता को सक्षम करने का प्रयास किया गया। लिफ्टों, रैंप, शौचालय, और साइनेज (वाणिज्यिक या सार्वजनिक प्रदर्शन के संकेत) के निर्माण से निःशक्तजन व्यक्तियों के लिए पूरी तरह से सुलभ हवाई अड्डों, रेलवे स्टेशनों, और मेट्रो बनाने के लिए इस अभियान को शुरू किया गया। जुलाई 2016 तक लगभग 75 महत्वपूर्ण रेलवे स्टेशनों और सभी हवाई–अड्डों को सुलभता के मानकों के साथ–साथ जुलाई 2019 तक सांकेतिक दुभाषियों के मानकों को प्राप्त करना। इस अभियान में समर्थन करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों और निगमों को ऑडिट और परिवर्तन के लिए आमंत्रित किया गया।

महाराष्ट्र के चार प्रमुख शहरों (मुम्बई, नागपुर, पुणे और नासिक) को पूरी तरह से निःशक्तजनों के अनुकूल बनाने का प्रयास किया गया। निःशक्तजनों के लिये आन्तरिक और बाहरी सुविधाओं (जैसेः विद्यालयों, कार्यस्थलों, चिकित्सा सुविधाओं, फुटपाथों, परिवहन

व्यवस्था, भवनों, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी, आदि) के बारे में बाधाओं और अवरोधों को दूर करने का प्रयत्न किया गया।

इस अभियान को सही दिशा में कार्यान्वित करने के लिये सरकार द्वारा कार्य योजना तैयार की गयी हैं। यहाँ इस पहल की कार्य–योजना के कुछ संकेत दिये गये हैं। विभिन्न कार्यशालाओं के माध्यम से जोनल जागरूकता के लिए प्रमुख हितधारकों को अवगत करने के लिये आयोजित किए जाने के लिए कार्य योजना बनाई गई है, (सरकारी अधिकारियों, आर्किटेक्ट, रियल एस्टेट डवलपर्स, इंजीनियर, छात्रों आदि सहित)। सुगम्यता के मुद्दे के बारे में ब्रोशर, शैक्षिक पुस्तिकाएं, वीडियो बनाने और वितरित करने के लिए योजना बनाई गयी है।

पब्लिक से सार्वजनिक दुर्गम स्थानों, सुलभ शौचालयों, रैम्पों आदि के बारे में सूचना प्राप्त करने के लिये वेब पोर्टल और मोबाइल एप्लिकेशन को (हिन्दी, अंग्रेजी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में) सोर्सिंग मंच के रुप में बनाया जायेगा। सीएसआर (निगमित सामाजिक दायित्व) संसाधनों को सुलभ इमारतों और परिवहन साधन बनाने के लिए श्रृंखलित किया जाएगा।

इस सन्दर्भ में की गयी कार्य–योजना शारीरिक सुलभता को प्रदर्शित करेगी जो शिक्षा, रोजगार और आजीविका में वृद्धि करेगी। कार्य–योजना बन चुकी हैं और यह निःशक्तजन और असक्षम नागरिकों की उत्पादकता के साथ–साथ देश के लिये आर्थिक सहयोग में वृद्धि करने के लिये बहुत जल्द लागू भी हो जायेगी। इस अभियान के सफल और प्रगतिशील होने में कोई भी संदेह नहीं है। यह अभियान वास्तविकता में अपनी कार्य–योजना के अनुसार सभी लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्राप्ति करेगा।

भारत को स्वतंत्र हुये बहुत वर्ष बीत गये हांलाकि, हम यह नहीं कह सकते कि भारत के लोग आत्मनिर्भर हैं क्योंकि निःशक्तजन या शारीरिक रुप से असक्षम व्यक्ति आज भी अपने माता–पिता और परिवार के नागरिकों पर निर्भर हैं या अपनी बहुत सी आधारभूत क्रियाओं के लिये अपने देखभाल करने वालों पर निर्भर हैं। निःशक्तजन लोग आज भी पिछड़े हुये हैं क्योंकि उनकी सार्वजनिक स्थानों, भवनों, कार्यालयों, विद्यालयों, सड़कों, रेलवे स्टेशनों, हवाई–अड्डों, मेट्रों आदि तक उनकी पहुँच नहीं है। वह शारीरिक रुप से अपनी व्हील चैयर को इस तरह के स्थानों पर नहीं ले जा सकते। समाज का एक होनहार व्यक्ति होने के बाद भी उनका जीवन बहुत कम स्थानों तक सीमित होता है। यह पहल सच में निःशक्तजन के किसी भी प्रकार से पीड़ित सभी व्यक्तियों के लिए बहुत उपयोगी साबित होगी। यह उन्हें

बहुत आसानी से सभी सुविधाओं तक पहुँचने के लिए समान अवसर प्रदान करेगी। इस अभियान के माध्यम से, वह अपने कैरियर को विकसित कर सकते हैं, आत्मनिर्भर हो सकते है और साथ ही साथ देश की अर्थव्यवस्था में भी योगदान कर सकते हैं।

समावेशी शिक्षा का आशय निःशक्तजन विद्यार्थियों (जिन्हें विशिष्ट आवश्यकताओं वाले विद्यार्थी भी कहा जाता है) को सामान्य बच्चों के साथ बिठाकर सामान्य रूप से पढ़ाना है, ताकि सामान्य बच्चों और विशिष्ट आवश्यकताओं वाले बच्चों में कोई भेदभाव न रहे तथा दोनों तरह के विद्यार्थी एक–दूसरे को ठीक ढंग से समझते हुए आपसी सहयोग से पठन–पाठन के कार्य को कर सकें। समावेशी शिक्षा का एक व्यापक लक्ष्य यह भी प्रतीत होता है कि एक साथ शिक्षित होने पर भविष्य में समाज के अन्दर विशिष्ट आवश्यकता वाले व्यक्तियों के सरोकारों को आम लोग बेहतर ढंग से समझ सकें तथा उनमें उनके प्रति अपेक्षित संवेदनशीलता का विकास हो सके। समावेशी शिक्षा को प्रोत्साहित करने का अपना एक राजनीतिक अर्थशास्त्र भी है जो भू–मण्डलीकरण या उदारीकरण की प्रक्रियाओं से प्रेरित है। यह राजनीतिक अर्थशास्त्र इस मान्यता पर आधारित है कि सरकार को जनकल्याण, सामाजिक तथा गैर–उत्पादक कार्यों पर कम से कम खर्च करना चाहिए। विशिष्ट आवश्यकताओं वाले बच्चों के लिए विशेष विद्यालय चलाना महँगा पडता है। इसलिए समावेशी शिक्षा की अवधारणा को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

समावेशी शिक्षा को जमीनी स्तर पर लागू करने के लिए देश के विभिन्न राज्यों के निःशक्तजनों की मुख्य श्रेणियों– दृष्टिबाधित, अस्थिबाधित, मूक–बधिर, मन्दबुद्धि तथा स्वलीनता से ग्रसित बच्चों को पढ़ाने के लिए अलग–अलग नामों से अंशकालीन शिक्षक एवं शिक्षिकाएँ रखे जाते हैं। इन्हें अधिकतर राज्यों में न्यूनतम मजदूरी से भी कम वेतन दिया जाता है। समावेशी शिक्षा, क्योंकि भू–मण्डलीकरण की देन है, इसलिए इसे अन्तर्राष्ट्रीय तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का भी व्यापक समर्थन हासिल है। इस समर्थन की भी अपनी राजनीति, गणित और विज्ञान है। निःशक्तजनों के विषयों में कार्यरत विभिन्न जन–संगठनों तथा समाजसेवी संस्थाओं की भी अपनी राजनीति है। किसी भी योजना से सबसे अधिक लाभ प्राप्त करने वाले अस्थिबाधित नागरिकों तथा मूकबधिर नागरिकों से जुड़े अत्यधिक संगठन समावेशन के नाम पर समावेशी योजनाओं के लाभों से अपेक्षाकृत वंचित नागरिकों, खासतौर पर दृष्टिबाधित नागरिकों के अधिकतर संगठन इसका विरोध करते हैं।

इस तरह समावेशी शिक्षा के समूचे मॉडल में शिक्षा की पहुँच तथा शिक्षा की गुणवत्ता दोनों ही गम्भीर प्रश्नों के घेरे में है। इसके लिए काम चलाऊ नीतियाँ तथा

तात्कालिक मसलों को क्षणिक रूप से हल कर लेने की प्रवृत्तियाँ काफी हद तक जिम्मेदार हैं। शिक्षा का समावेशीकरण यह बताता है कि विशेष शैक्षणिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक सामान्य छात्र और एक अशक्त या निःशक्त छात्र को समान शिक्षा प्राप्ति के अवसर मिलने चाहिए। इसमें एक सामान्य छात्र एक निःशक्त छात्र के साथ विद्यालय में अधिकतर समय बिताता है। पहले समावेशी शिक्षा की परिकल्पना सिर्फ विशेष छात्रों के लिए की गई थी। लेकिन आधुनिक काल में हर शिक्षक को इस सिद्धांत को विस्तृत दृष्टिकोण में अपनी कक्षा में व्यवहार में लाना चाहिए।

समावेशी शिक्षा या एकीकरण के सिद्धांत की ऐतिहासिक जड़ें कनाडा और अमेरिका से जुड़ीं हैं। प्राचीन शिक्षा पद्धति की जगह नई शिक्षा नीति का प्रयोग आधुनिक समय में होने लगा है। समावेशी शिक्षा विशेष विद्यालय या कक्षा को स्वीकार नहीं करता। अशक्त बच्चों को सामान्य बच्चों से अलग करना अब मान्य नहीं है। निःशक्त बच्चों को भी सामान्य बच्चों की तरह ही शैक्षिक गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार है।शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण यंत्र है, जो व्यक्ति के जीवन के साथ ही देश के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आजकल यह किसी भी समाज की नई पीढ़ी के उज्ज्वल भविष्य के लिए एक महत्वपूर्ण कारक बन गयी है। शिक्षा के महत्व को ध्यान में रखते हुए सरकार के द्वारा 6 साल से 18 साल तक की आयु वाले सभी बच्चों के लिए शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया है। शिक्षा सभी के जीवन को सकारात्मक तरीके से प्रभावित करती है और हमें जीवन की सभी छोटी और बड़ी समस्याओं का सामना करना सिखाती है। समाज में सभी के लिए शिक्षा की ओर इतने बड़े स्तर पर जागरुक करने के बाद भी देश के विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा का प्रतिशत अभी भी असमान है।

पिछड़े क्षेत्रों में रहने वाले नागरिकों के लिए अच्छी शिक्षा के उचित लाभ प्राप्त नहीं हो रहे हैं क्योंकि उनके पास धन और अन्य साधनों की कमी है। यद्यपि, इन क्षेत्रों में इस समस्या को सुलझाने के लिए सरकार द्वारा कुछ नई और प्रभावी रणनीतियों की योजना बनाकर लागू किया गया है। शिक्षा ने मानसिक स्थिति को सुधारा है और नागरिकों के सोचने के तरीके को बदला है। यह आगे बढ़ने और सफलता और अनुभव प्राप्त करने के लिए आत्मविश्वास लाती है और सोच को कार्य रुप में बदलती है।

बिना शिक्षा के जीवन लक्ष्य रहित और कठिन हो जाता है। इसलिए हमें शिक्षा के महत्व और दैनिक जीवन में इसकी आवश्यकता को समझना चाहिए। हमें पिछड़े क्षेत्रों में नागरिकों को शिक्षा के महत्व को बताकर इसे प्रोत्साहन देना चाहिए। निःशक्तजन और

गरीब व्यक्तियों को भी अमीर और सामान्य व्यक्तियों की तरह वैश्विक विकास प्राप्त करने के लिए, शिक्षा की समान आवश्यकता है और उन्हें समान अधिकार भी प्राप्त है। हम सभी को उच्च स्तर पर शिक्षित होने के लिए अपने सबसे अच्छे प्रयासों को करने के साथ ही सभी की शिक्षा तक पहुँच को संभव बनाना चाहिए जिसमें सभी गरीब और निःशक्त व्यक्ति वैश्विक आधार पर भाग ले सकें।

कुछ लोग ज्ञान और कौशल की कमी के कारण पूरी तरह से अशिक्षित रहकर बहुत दर्दनाक जीवन जीते हैं। कुछ लोग शिक्षित होते हैं लेकिन पिछड़े क्षेत्रों में उचित शिक्षा प्रणाली के अभाव के कारण अपने दैनिक कार्यों के लिए धन कमाने में भी पर्याप्त कुशल नहीं होते। इस प्रकार हमें सभी के लिए अच्छी शिक्षा प्रणाली को प्राप्त करने के समान अवसर देने की कोशिश करनी चाहिए, चाहे वो गरीब हो या अमीर। एक देश नागरिकों के वैयक्तिक विकास और वृद्धि के बिना विकसित नही हो सकता। इस प्रकार एक देश का व्यापक विकास उसके देश के नागरिकों के लिए उपलब्ध प्रचलित शिक्षा प्रणाली पर निर्भर करता है। देश में हर क्षेत्र में नागरिकों के लिए अच्छी और उचित शिक्षा प्रणाली को उपलब्ध कराए जाने के सामान्य लक्ष्य को निर्धारित किया जाना चाहिए और शिक्षा प्राप्ति के रास्ते को सुगम व सुलभ्य बनाए जाने की कोशिश की जानी चाहिए। इस तरह देश अपने चहुँमुखी विकास की ओर अग्रसर होगा।

प्रत्येक वर्ष 3 दिसंबर को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर निःशक्तजन व्यक्तियों का अंतर्राष्ट्रीय दिवस मनाने की शुरुआत हुई थी और 1992 से संयुक्त राष्ट्र के द्वारा इसे अंतर्राष्ट्रीय रीति–रिवाज के रुप में प्रचारित किया जा रहा है। निःशक्तजनों के प्रति सामाजिक कलंक को मिटाने और उनके जीवन के तौर–तरीकों को और बेहतर बनाने के लिये उनके वास्तविक जीवन में बहुत सारी सहायता को लागू करने के द्वारा तथा उनको बढ़ावा देने के साथ ही निःशक्तजन नागरिकों के बारे में जागरुकता को बढ़ावा देने के लिये इसे प्रत्येक वर्ष मनाया जाता है। 1992 से इसे पूरी दुनिया में ढ़ेर सारी सफलता के साथ लगातार मनाया जा रहा है।

समाज में उनके आत्मसम्मान, सेहत और अधिकारों को दिलाने के लिये और उनकी सहायता के लिये एक साथ होने के साथ ही नागरिकों की निःशक्तजन के मुद्दे की ओर पूरे संसारभर की समझ को सुधारने के लिये इस दिन के उत्सव का उद्देश्य बहुत बड़ा है। जीवन के हरेक पहलू में समाज में सभी निःशक्तजन नागरिकों को शामिल करने के लिये भी इसे देखा जाता है जैसे राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक। इसी कारण से

इसे "संसार निःशक्तजन दिवस" के शीर्षक के द्वारा मनाया जाता है। संसार निःशक्तजन दिवस का उत्सव हर वर्ष पूरे संसार में निःशक्त नागरिकों के अलग–अलग मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित करता है।

रविन्द्र कुमार के अनुसार अंतमुर्खी, शारीरिक अभिक्षमतावान तथा बहिर्मुखी, शारीरिक क्षमता वाले इन दोनों की व्यवसायिक आकांक्षाओं में कोई अंतर नहीं होता है।[19]

यह अवधारणा परिभाषित करती है कि अन्तर्मुखी शारीरिक क्षमता वाले एवं बहिर्मुखी क्षमता वालें इन दोनों की व्यवसायिक आकांक्षाओं में कोई अंतर नहीं होता है।

ए.बी. फाटक के अनुसार ने निःशक्त एवं सामान्य बालकों की सहिष्णुता, अंतर्मुखता–बहिर्मुखता और संवेगात्मक व्यवहार में कोई विशेष अंतर नहीं है।[20]

यह अवधारणा बताती है कि निःशक्त एवं सामान्य बालकों में सहिष्णुता एवं संवेगात्मक व्यवहार में कोई विशेष अन्तर नहीं होता है।

बी.ए. राइट (1960) ने अपनी पुस्तक ''शारीरिक निःशक्तता एक मनौवैज्ञानिक उपागम'' में निशक्तों के प्रति दृष्टिकोण के संबंध में लिखा है कि सामान्यता ऐसा विश्वास किया जाता है कि कुटिल व्यक्ति का मन भी कुटिल ही होता है। निःशक्त बालकों को अनेक समस्याओं का सामना करना पडता है। लेखक के शब्दों में हमारी संस्कृति में निःशक्त बालकों को निम्न स्तर प्रदान किया जाता है। अपेक्षाकृत निम्न जाति अथवा अन्य अल्पसंख्यकों को दिये जाने वाले स्तर की तुलना में भी इन्हें निम्न दृष्टिकोण से देखा जाता है।[21]

वी.पी. वर्मा के अनुसार निःशक्त व्यक्ति को जहां स्वयं अपनी अक्षमताओं से समायोजन करना पड़ता है वहीं नीरस, सामाजिक वातावरण से भी और किस सीमा तक वे समुचित समायोजन करने में सफल होते हैं, यह उस समाज के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। जिसमें वे सांस लेते हैं, जीते हैं। निःशक्त आज भी निंदित किये जाते है, दण्डित किए जाते हैं। और दया के पात्र बन जाते हैं।[22]

पाल, डी. चौधरी के अनुसार निःशक्तता की स्थिति में पूरे संसार को यह बता देना चाहिए कि निःशक्त उपयोगी एवं उत्पादन नागरिक बन सकता है यदि उन्हें समुचित शिक्षा एवं प्रशिक्षण दिया जाये। वे भी सामान्य के समान ही अपना कार्य कुशलतापूर्वक सम्पन्न कर सकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि निःशक्तों के लिए कर सकने योग्य कार्य देना चाहिए जो उनकी मानसिक एवं शारीरिक क्षमता के अंतर्गत हो।[23]

यह अवधारणा परिभाषित करती है कि निःशक्तों को यदि समुचित शिक्षा एवं प्रशिक्षण दिया जाये तो वह भी सामान्य व्यक्तियों के समान राष्ट के विकास में अपना योगदान दे सकता है।

निःशक्त सामाजिक इकाईयां एक विशिष्ट जीवन पद्धति का प्रतिनिधित्व करती हैं अतः निःशक्त जनों के संदर्भ में अवधारणाओं, सिद्धान्तों एवं पद्धतिशास्त्र को विभिन्न स्वरूपों के साथ समझने एवं उन्हें स्थापित करने की आवश्यकता है। शोधार्थी समय एवं अन्य अवरोधों के कारण इच्छुक होने के बावजूद अवधारणाओं, सिद्धान्तों एवं पद्धतिशास्त्र को निःशक्त जनों के संदर्भ में आंशिक रूप से ही प्रस्तुत कर सकी है। इन सब के लिये स्वतंत्र शोध की आवश्यकता शोधार्थी महसूस करती है।

संदर्भ सूची

1. क्रक्स, बैंक, डब्ल्यू, एम., (1952) "ए स्टडी ऑफ दि रिलेशन ऑफ फिजिकल डिस्एबिलिटी टू सोशल एडजस्टमेंट" दि अमेरिकन जनरल ऑफ ऑक्यूप्शनल थ्योरी, पृ.सं. 05।

2. कर्शा, जॉन, डी., (1972)''हैण्डीकैप्ड चिल्ड्रन'' लंदन विलम हैनन मेडिकल बुक लिमिटेड, पृ.स.10।

3. भट्ट, उषा (1963)''फिजिकल हैण्डीकैप्ड इन इंडिया'' मुम्बई–7, पोपुलर बुक डिपो, पृ. सं 51।

4. जोन, डब्ल्यू, एमसी.''कॉनल इन डिक्शनरी ऑफ सोसियोलॉजी'' ऐडिटेड वाई हैनरी प्रतिफेयर चाइल्ड, पृ.सं.139।

5. जीओआई प्लानिंग कमीशन, (1961)''प्लानस एण्ड प्रोसपैक्टर ऑफ सोशल वैलफेयर'' इंडिया पब्लिकेशन, पृ.सं.48।

6. शुक्ला, टी .आर,''एडजस्टमेंट एण्ड स्पीच ऑफ मेंटली हैण्डीकैप्ड पर्सन्स'' पृ.सं.88।

7. कौशिक, ब्र.ना. (1977)''विकलांग शिक्षा संधू'' (चक्षु निःशक्तजन) राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर,पृ.सं.33–35।

8. स्क्लॉस पी.जे. एण्ड स्मिथ, एम.ए. (1994),''एप्लाईड बिहेवियर एनेलिसस इन द क्लासरूम'' बोसटोनः एलिन एण्ड बेकान।

9. मिश्र जगदीश चन्द्र (1981)''मनोरमा'' (आंगिक निःशक्तजन) पृ.सं. 22, 23, 24।

10. टायलर एण्ड टायलर ''सर्विसेज फोर दि हैण्डीकैप्ड इन इंडिया, न्यूयॉर्क इंटरनेशनल सोसायटी फोर रिहेबिलिटेशन''।

11. हुसैन, एम.एस. ''प्रोबलम्स एण्ड पैटेनशियल ऑफ दा हैण्डीकैप्ड'' पृ.सं. 506।

12. इंटरनेशनल ईयर ऑफ डिस्एबल्ड पर्सन (1981) ''डिविजन फॉर एकॉनोमी एण्ड सोशल इनफोरमेशन डीपीआई, न्यूज लैटर नं. 2 वर्ल्ड हैल्थ आर्गेनाईजेशन एण्ड आल्सो हू इंटरनेशनल क्लासीफिकेशन ऑफ इम्पोरमेंटस डिस्ऐलिटिज एण्ड हैण्डीकैप्ड'' जेनेवा (1980) आऊटेड वाई आर. मानी, पृ.सं. 18।

13. सिंह, जगत (1983) ''विकलांग बालक'' अरविन्द प्रकाशन 205, चावडी बाजार, दिल्ली–6 रूपाभ प्रिप्टर्स संस्करण।

14. हैराल्ड, बाल्म द''परपज एण्ड फुल कन्टैन्ट ऑफ ए रिहेबिलिटेशन सर्विस, इन मॉर्डन मैथड्स ऑफ रिहेबिलिटेशन ऑफ दा एडल्ट डिस्एबल्ड'' यूनाईटेड नेशन्स।

15. मिश्र, सूर्यकान्त (1995)''विकलांगता कारण निवारण'' विकलांग मंच।

16. किरण,(डॉ) (1996)''क्यों हकलाते हैं बच्चे'' विकलांग मंच।

17. स्वार्ट्ज, एल (2007) ''डिसएबिलिटी और पावर्टी – इस्यूज फोर फर्दर रिसर्च इन द एसएएफओडी रिजन पेपर प्रिपेयर्ड एसएएफओडी''।

18. अबोसी आक्ये (2007), ''एज्यूकेटिव चिल्ड्रन विद लर्निंग डिसएबिलिटिज इन अफ्रीका लर्निंग डिस्एबिलिटी रिसर्च एण्ड प्रेक्टिस 22 (3) 196–201 सी, 2007: दा डिविजन फोर लर्निंग डिस्ऐबिलिटीज ऑफ दा काउन्सिल फोर एक्सैप्नल चिल्ड्रन''।

19. कुमार, रविन्द्र (1988) ''शिक्षणीय मंद बुद्धि तथा अधिगम निःशक्तता एक तुलनात्मक अध्ययन'' भारतीय आधुनिक शिक्षा जुलाई, पृ.सं. 120।

20. फाटक, ए बी (1983)''डिसेबल्स इन नार्मल स्कूल प्रोजेक्ट रिपोर्ट''।

21. राईट, बी.ए (1960)''फिजीकली डिसेबलिटी–ए साइकोलॉजिकल एप्रोच'' न्यूयार्क हार्पर एण्ड राय, पृ.सं. 112।

22. वर्मा, वी.पी. (1978) ''सोशल इंटीग्रेशन आफ दी हैडीकैप्ड'' सोशल वेलफेयर वो. नं. अक्टू.।

23. चौधरी, डी. पाल (1960)''चाइल्ड वेलपफेयर डवलपमेंट'' आत्माराम एण्ड संस, न्यू देहली, पृ. सं. 145।

चतुर्थ अध्याय

पद्धतिशास्त्र

विज्ञान ऐसा व्यवस्थित ज्ञान है जिसके कारण परिणाम सम्बन्धों की तथ्य परकता को केन्द्र में रखकर वैचारिकी को निर्मित किया जाता है और इसलिये विज्ञान अंधविश्वास तथा तत्वशास्त्रीय चिन्तन से आगस्ट काम्ट वैज्ञानिक चेतना के उद्भव को प्रत्यक्षवादी चरण की संज्ञा देते हैं और वैज्ञानिक पद्धति में प्रयोग, तुलना एवं अवलोकन को आधारभूत अवयव के रूप में स्वीकार करते हैं। इन पक्षों को केन्द्र में रखकर शोध की विशेषताओं एवं शोध के चरणों को शोधार्थी ने प्रस्तुत किया है।

शोधार्थी के शोध की प्रकृति मूल्यांकनात्मक है और इसलिए यह शोध गुणात्मकता एवं परिमाणात्मकता का समन्वय है। शोध में सांख्यिकीय पक्षों को सउद्देश्य सम्मिलित नहीं किया गया है और वे शोध के परिणामों को प्रभावित कर पाने में केवल आंशिक रूप से ही सक्षम हो सकते थे। शोध कार्य के लिये शोधार्थी ने भरतपुर क्षेत्र को चुना, जो कि एक प्रशासनिक अधिकारी के रूप में शोधार्थी का कार्य क्षेत्र भी है। इस क्षेत्र के 200 निःशक्त बच्चों को जो कि 6 वर्ष से 18 वर्ष की आयु समूह के हैं, को निदर्श इकाई के रूप में स्तरीकृत एवं उद्देश्यमूलक प्रणालियों के अन्तर्गत चुना।शोध में 126 उत्तरदाता चलनबाधित तथा 30 उत्तरदाता दृष्टिबाधित है ।यह दोनो ही श्रेणीयां बालकों की है। जबकि 32 बालिका चलनबाधित एवं 12 बालिका दृष्टिबाधित के रूप में निदर्श इकाइयों को चुना गया है। इस अध्ययन में शोधार्थी ने शोध उद्देश्यों को रेखांकित किया है। जिनकी संख्या 07 है। चूंकि शोध की प्रकृति प्रधानतः गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक है इसलिये परिकल्पना के स्थान पर शोध प्रश्नों को निर्मित किया गया है। शोध प्रश्नों की संख्या 9 है जिनकी रचना शोधार्थी ने अपने प्रशासनिक अनुभवों एवं क्षेत्रीय अवलोकनों के आधार पर की है।प्रस्तुत शोध में प्राथमिक तथ्यों के लिये शोधार्थी ने साक्षात्कार अनुसूची को प्रयुक्त किया और साथ ही निदर्श इकाईयों के परिवारों से विभिन्न प्रकार की जानकारी अनौपचारिक वार्तालाप के आधार पर प्राप्त की, जिन्हें कि शोध में सम्मिलित किया गया। साथ ही शोधार्थी ने साक्षात्कार अनुसूची के समय अवलोकन प्रविधि को भी प्रयुक्त किया है। भारत सरकार एवं राज्य सरकार के द्वारा समय–समय पर प्रस्तुत प्रतिवेदनों को द्वितीयक सूचनाओं के संकेन्द्रण के लिये प्रयुक्त किया गया।

पद्धतिशास्त्र किसी भी वैज्ञानिक विषय के संगठित विकास का महत्वपूर्ण आधार है। पद्धतिशास्त्र के अन्तर्गत डॉ. योगेन्द्र सिंह की दृष्टि में अन्वेषण तर्क, अवधारणाओं एवं अनुसन्धान के उपकरणों के क्रियान्वयन की प्रविधियों, मापक की समस्या, सत्यापन एवं वैधता के पक्ष तथा अनुसन्धान के उपकरणों की सामान्यता एवं विशिष्टता से जुड़े हुए उन प्रश्नों को सम्मिलित किया जाता है। वस्तुतः अवलोकन एवं मापन हेतु प्रतीकात्मक भाषायी श्रेणियों का प्रयोग अनुसंधान अथवा अध्ययन ही पद्धतिशास्त्र की विद्या के आधार बनते है।[1]

अनुसंधान घटनाओ के बारे में ज्ञान प्राप्त करने और उन घटनाओं के मूल तक पहुचने एवं कार्यकारण सम्वन्ध को पता लगाने का एक व्यवस्थित तरीका है समाज से सम्बन्धित अध्ययनों में सामाजिक अनुसंधान की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। समाजिक अनुसंधान के द्वारा सामाजिक तथ्यो का संकलन, तथ्यों के आधार पर समस्या या घटनाओ के कार्यकारण सम्बन्धों का पता लगाना एवं सिद्धान्तो का पुनरावलोकन किया जाता है ''सामाजिक अनुसंधान वह अनुसंधान है जो सामाजिक समूह या सामाजिक अन्तः क्रियाओ की प्रक्रियाओ के अध्ययन पर ध्यान देता है।''

समाजशास्त्रीय अनुसंधान : मोटे तौर पर समाज या सामाजिक जीवन, सामाजिक क्रिया, सामाजिक व्यवहार ,सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक समूहो, सामाजिक प्रणालियों और सामाजिक संरचानाओ के विषय में व्यवस्थित विश्वसनीय ज्ञान को खोजने संगठित करने और विकसित करने से सम्बन्ध रखता है।

विषय विशेष के बारे में बोधपूर्ण तथ्यान्वेषण एवं यथा सम्भव सामग्री संकलित कर सूक्ष्मतर विवेचन, विश्लेषण, नए तथ्यों, नए सिद्धान्तों के उद्घाटन की प्रक्रिया अथवा कार्य शोध कहलाता है।शोध के लिए प्रयुक्त अन्य हिन्दी पर्याय हैं– अनुसन्धान, गवेषणा, खोज, अन्वेषण, मीमांसा आदि।दरअसल सार्थक जीवन की समझ एवं समय–समय पर उस समझ का पुनर्मूल्यांकन, नवीनीकरण का नाम ज्ञान है, और ज्ञान की सीमा का विस्तार शोध कहलाता है। नवीन तथ्यों की खोज, प्राचीन तथ्यों की पुष्टि, तथ्यों की क्रमबद्धता, पारस्परिक सम्बन्धों तथा कारणात्मक व्याख्याओं के अध्ययन की व्यवस्थित विधि को शोध कहते हैं। किसी प्रश्न, समस्या, प्रस्तावित उत्तर की जाँच हेतु उत्तर खोजने की क्रिया शोध कहलाती है।

अनन्त काल से यहाँ तथ्यों का रहस्योद्घाटन और व्यवस्थित अभिज्ञान का अनुशीलन होता रहा है। कई तथ्यों का उद्घाटन तो दीर्घ अन्तराल के निरन्तर शोध से ही

सम्भव हो सका है। जाहिर है कि इन तथ्यों की खोज और उसकी पुष्टि के लिए शोध की अनिवार्यता बनी रही है।मानव की जिज्ञासु प्रवृत्ति ने ही शोध प्रक्रिया को जन्म दिया। शोध कार्य सदा से एक प्रश्नाकूल मानस की सुचिन्तित खोज वृत्ति का उद्यम बना रहा है। जाहिर है कि किसी सत्य को निकटता से जानने के लिए शोध एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया मानी जाती है। समय–समय पर विभिन्न विषयों की खोज और निष्कर्षो की विश्वसनीयता एवं प्रमाणिकता गहन शोध की मदद से ही सम्भव हो पाई है। समय के बदलते क्रम में मानव जीवन की समस्याएँ विकट होती आई हैं, उत्तरोत्तर नई समस्याओं से मानव जाति का सामना होता आया है। शोध की महत्ता मानव समुदाय की सोच की संगत विविधता से सम्बद्ध रहती आई है, मानव समुदाय की रुचि, प्रकृति, व्यवहार, स्वभाव और योग्यता के आधार पर यह भिन्नता परिलक्षित होती रही है। मानवीय व्यवहारों की अनिश्चित प्रकृति के कारण जब हम व्यवस्थित ढंग से किसी विषय–प्रसंग का अध्ययन कर किसी निष्कर्ष पर आना चाहते हैं, तो शोध अनिवार्य हो जाता है। यूँ कहें कि सत्य की खोज या प्राप्त ज्ञान की परीक्षा हेतु व्यवस्थित प्रयत्न करना शोध कहलाता है। अर्थात शोध का आधार विज्ञान और वैज्ञानिक पद्धति है, जिसमें ज्ञान भी वस्तुपरक होता है। तथ्यों के अवलोकन से कार्य कारण सम्बन्ध ज्ञात करना, शोध की प्रमुख प्रक्रिया है। इस अर्थ में हम स्पष्ट देख सकते हैं कि शोध का सम्बन्ध आस्था से कम, परीक्षण से अधिक है।

शोध वृत्ति का उद्‌गम स्रोत प्रश्नों से घिरे शोधकर्मी की संशयात्मा होती है। प्रचारित मान्यता की वस्तुपरकता पर शोधकर्मी का संशय उसे प्रश्नाकूल कर देता है । फलस्वरूप वह उसकी तथ्यपूर्ण जाँच के लिए उद्यमशील होता है। स्थापित सत्य है कि हर संशय का मूल, दर्शन है और सामाजिक परिदृश्य का हर नागरिक दर्शन शास्त्र पढ़े बिना भी थोड़ा–थोड़ा दार्शनिक होता है। संशय वृत्ति उसके जैविक विकास क्रम का हिस्सा होती है। यह वृत्ति उसका जन्मजात संस्कार भले न हो, पर जाग्रत मस्तिष्क की प्रश्नाकूलता का अभिन्न अंग बना रहना उसका स्वभाव होता है। प्रत्यक्ष प्रसंग के बारे में अधिक से अधिक ज्ञान हासिल करने की लालसा और प्रचारित सत्य की वास्तविकता सुनिश्चित करने की जिज्ञासा अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार हर किसी में होती है। यही लालसा में उसकी चिन्तन प्रक्रिया का सहचर बन जाती है, जिसे जीवन यापन के दौरान मनुष्य अपनी प्रतिभा और उद्यम से निखारता रहता है।

नए ज्ञान की प्राप्ति हेतु व्यवस्थित प्रयत्न को विद्वानों ने शोध की संज्ञा दी है। एडवांस्ड लर्नर डिक्शनरी ऑफ करेण्ट इंग्लिश के अनुसार, किसी भी ज्ञान की शाखा में नवीन तथ्यों की खोज के लिए सावधानीपूर्वक किए गए अन्वेषण या जाँच पड़ताल, शोध है।

इस प्रक्रिया में तीन चरण शामिल हैं। सवाल उठाना, उठाए हुए सवाल के जवाब हेतु तथ्य जुटाना और तदनुसार सवालों का जवाब देना।

मेरियम वेब्स्टर ऑनलाइन शब्दकोश के अनुसार शोध का अभिप्राय एक अध्ययनशील जाँच है, जिसमें नए तथ्यों, व्यावहारिक अनुप्रयोगों या संशोधित सिद्धान्तों के आलोक में स्वीकृत सिद्धान्तों की खोजपूर्ण, तथ्यपरक, संशोधित व्याख्या प्रस्तुत की जाती है जो अनुसन्धान एवं अनुप्रयोग पर आधारित होती है।वैज्ञानिक शोध तथ्य संग्रह और जिज्ञासा के दोहन की व्यवस्थित पद्धति है। शैक्षिक सन्दर्भों एवं ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के अनुसार वैज्ञानिक शोध का कोटि विभाजन किया जा सकता है।

शोध संकल्पना तैयार कर लेने के बाद हर शोधार्थी अपने अनुभवजन्य संकल्पना की जाँच हेतु एक शोध प्रारूप बनाता है। यह क्रिया उस स्थापत्य अभियन्ता के उद्यम जैसा होता है जो भवन निर्माण से पूर्व तत्सम्बन्धी सारी व्यवस्था (मकान का उद्देश्य, स्वरूप संकल्पना, संरचना, सामग्री के स्रोत, संसाधन, अनुमानित व्यय, पूर्व–पश्चात की जनप्रतिक्रियाएँ आदि) बातों का अनुमानित निर्णय वह पूर्व में ही कर लेता है। अर्थात् अपनी योजना का एक आदर्श आधार वह तैयार कर लेता है। अपने शोध के सन्दर्भ में शोधार्थी भी इसी तरह अपनी योजना का एक आदर्श आधार तैयार कर लेता है। संकलित तथ्यों के विवेचन विश्लेषण से उसके बारे में सारा निर्णय कर लेता है। शोध प्रारूप वस्तुतः शोध के प्रारम्भ से अन्त तक की अभिकल्पित कार्य योजना है, जिसमें शोधार्थी की पूरी कार्य पद्धति दर्ज रहती है। आत्मस्फुरण से, अभिज्ञान से अथवा पर्यवेक्षक एवं सन्दर्भों के सहयोग से, जैसे भी हो, शोध प्रारूप के रूप में शोधार्थी वस्तुतः अपने लिए एक स्वनिर्मित विधान पंजीकृत करता है जिसका अनुसरण करते हुए वह अपने लक्षित उद्देश्य तक पहुँच जाने में सफल हो पाता है। प्रारूप बनाते समय शोधार्थी अपने अध्ययन के सामाजिक एवं आर्थिक सन्दर्भ का भी खास खयाल रखता है।

शोध प्रारूप से ही विषय की तार्किक समस्या का संकेत मिलता है। सच्चाई यह भी है कि शोध प्रारूप कोई अलाउद्दीन का चिराग नहीं है। शोध प्रारूप आत्मसंयम की एक कुँजी है, कभी कभी कोई कोई ताला इस कुँजी से नहीं भी खुल सकता है। इसीलिए इसे प्रारूप कहा जाता है। प्राप्त बोध, अनुभव, एवं सन्दर्भ के सहारे बनाई गई यह कार्य योजना पूरे शोध के लिए पर्याप्त हो ही, यह आवश्यक भी नहीं है । देश, काल, परिस्थिति के अनुसार, कार्य प्रगति के दौरान कभी कभी लक्षित उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उस निर्धारित प्रारूप से इतर भी जाना पड़ सकता है ऐसी स्थिति में किसी शोधार्थी को किसी धर्म संकट में

नहीं पड़ना चाहिए। शोध प्रारूप, शोध कार्य सम्पन्न करने का साधन है, साध्य नहीं, आचरण है, धर्म नहीं। शोध सामग्री एकत्र करने के क्रम में ऐसी असंख्य उलझनें उपस्थित हो सकती हैं, जिसका तनिक भी भान प्रारम्भ में नहीं हो पाता। इसलिए शोध की रूप रेखा तैयार कर लेने के बाद किसी शोधार्थी को उतना बेफिक्र भी नहीं हो जाना चाहिए। तथ्य संग्रह के मार्ग में उत्पन्न होने वाली सभी समस्याओं का संकेत प्रारम्भ में नहीं भी मिल सकता है।

शोध प्रारूप दरअसल शोध से पूर्व किए गए निर्णयों की एक ऐसी शृंखला है, जो पूरे शोध कार्य के दौरान शोधार्थी की गतिविधियों को मार्ग निर्देश देती रहती है। निर्णय के क्रियान्वयन की स्थिति आने के पूर्व निर्णय निर्धारित करने की प्रक्रिया को शोध प्रारूप कहते हैं।

कह सकते हैं कि अपने सम्पूर्ण प्रभाव के साथ शोध प्रारूप एक व्यवस्था है, जिसके द्वारा शोध के दौरान उपस्थित बेहिसाब विधियों की तामझाम से बचते हुए लक्ष्य केन्द्रित ज्ञान हेतु प्राप्त सामग्रियों और विश्लेषणों को समायोजित किया जाता है।

शोध प्रारूप का उद्देश्य शोध प्रश्नों का उत्तर खोजने की तरकीब ढूँढना, शोध के दौरान उपस्थित असंगतियों को नियन्त्रित करना होता है। इसके सहारे शोधार्थी उन स्थितियों को नियन्त्रित करता है, जिनके प्रभावों का अध्ययन वह नहीं करना चाहता।प्रारूप में तथ्य संग्रह के स्रोत (दस्तावेज, पुस्तक, सर्वेक्षण, पत्रिका, वेबलिंक, इण्टरनेट आदि) और अध्ययन की ''ऐतिहासिक, तुलनात्मक, मिश्रित आदि'' पद्धति की सूचनाएँ रहती हैं। शोध की विधियों–सर्वेक्षण विधि, सांख्यिकीय विधि आदि तथा शोध के विभिन्न चरणों की निर्धारित समयावधि का उल्लेख भी यथासम्भव वहाँ होता है।

शोध प्रारूप अपने नामानुकूल प्रारूप ही होता है। पर इसमें इतना लोच होता है कि प्रयोजन पड़ने पर उसमें आवश्यक परिवर्तन किया जा सकता है। इसके अलावा अपनी संरचना में ही वह प्रमाणिकता, विश्वसनीयता, उचित अवधारणाओं के चयन में सावधानी के लिए दृढ़ एवं सुचिन्तित होता है। उसकी संरचना परिस्थिति, प्रयोजन, उद्देश्य एवं शोधार्थी की क्षमता (समय, धन, शक्ति) पर आधारित होती है, और उसमें व्यावहारिक मार्गदर्शकों का समावेश किया जाता है।

रिसर्च मैथोलोजी किसी भी शोध का सबसे महत्वपूर्ण भाग है। शोध पद्धति के माध्यम से ही प्राकल्पनाओं पर आधारित निष्कर्ष मूर्त रूप लेते है। शोध पद्धति वास्तव में शोध कार्य में काम ली जाने वाली सम्पूर्ण शोध विधि का नाम है, जो उस शोध कार्य को वैद्य एवं मानक बनाती है। समाजशास्त्र के प्रतिपादक आगस्ट कॉम्टे, दुरखाइम एवं मैक्स

बेबर इन सभी का यह केन्द्रीय विषय रहा है। प्रत्येक शोध अध्ययन की अपनी एक शोध पद्धति होती है, जो विशिष्ट होती है।

प्रस्तुत शोध में अवधारणाओं का स्पष्टीकरण व महत्वपूर्ण तथ्यों को प्राप्त करने को भी उल्लेखित किया गया है। जो विज्ञान के वैज्ञानिक नियमों व ज्ञान पर आधारित होने से वैज्ञानिक पद्धति को स्पष्ट करता है। स्टूअर्ट चेज के अनुसार ''विज्ञान का संबध पद्धति से है न कि विषय सामग्री से''।[2]

अनुसन्धान पद्धति व अध्ययन के उद्देशयों को पूर्ण करने हेतु वैज्ञानिक पद्धति का चयन किया गया। प्रस्तुत शोध में वैज्ञानिक तत्वो को सम्मिलित करते हुए अनुसंधान की योजना वनाई गई जो निम्न चरणों द्वारा उल्लेखित है।

1. अध्ययन समस्या का चयन :–

शोध कार्य के लिये सर्वप्रथम समस्या का चयन किया जाता है जो मात्र वैज्ञानिक विचार पर आधारित न होकर किसी और दृष्टि से भी हो सकता है। तथापि उस विषय को वैज्ञानिक अध्ययन के लिये शोध समस्या के रूप में निर्मित करना किसी भी वैज्ञानिक पद्धति की प्राथमिक आवश्यकता है।पी.वी.यंग के ''किसी अध्ययन विषय की अनुसंधानकर्त्ता के उद्देश्यों व रूचि, आवश्यक अनुसंधान सामग्री की उपलब्ध मात्रा, विषय के बारे में निरूपित सैद्धान्तिक मान्यताओं की जटिलता व उस विषय पर हुए पूर्ववर्ती अध्ययनों के आधार पर सीमित किया जा सकता है।[3]

प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने अध्ययन हेतु राजस्थान के भरतपुर जिले के 6 से 18 आयु वर्ग के निःशक्त बच्चों को अध्ययन के लिये चयन किया क्योकि शोधार्थी भरतपुर की भौगोलिक, सामाजिक एवं आर्थिक संरचना के प्रति चेतन शील है। यह चेतना उस कार्य क्षेत्र का परिणाम है जिसमें शोधार्थी एक प्रशासनिक अधिकारी के रूप में कार्यरत है।

2. विषय से सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन :–

विषय से सम्बन्धित साहित्य शोधार्थी के अध्ययन कार्य को सुगम बना देता है। शोधार्थी को अध्ययन की प्रक्रियाओ का ज्ञान होता है तथा शोधार्थी का अनुसंधान कार्य सरल होता है। महत्वपूर्ण अवधारणाओ की जानकारी हो जाती है तथा शोध कार्य में आने वाली कठिनाइयों का पता लग जाता है।

अध्ययन उद्देश्य :

प्रस्तुत शोध के निम्न उद्देश्य हैं –

1. निःशक्तता का अर्थ एवं अवधारणा का विश्लेषण करना।
2. निःशक्तता के कारण एवं प्रकार के आधार पर निःशक्त बच्चो की समस्याओ को ज्ञात करना।
3. समाज की विभिन्न संस्थाओं द्वारा निःशक्त बच्चो के प्रति किये जाने वाले व्यवहार एवं दृष्टिकोण का विश्लेषण करना।
4. निःशक्त बच्चो की देख रेख एवं विकास का अध्ययन करना।
5. निःशक्त बच्चो के विकास में तत्संम्बन्धी सहायक साधन एवं विशिष्ट उपचारों का अध्ययन करना।
6. निःशक्त बच्चो के लिये उपलब्ध रियायतें, योजनाऐ एवं लाभों का विश्लेषण करना।
7. निःशक्तता के कारणों के आधार पर इस समस्या के निवारण एवं रोकथाम हेतु विभिन्न सुझावों के आधार पर परिवार एवं समाज के दायित्व एवं निर्वहन का विश्लेषण करना।

3. शोध प्रश्न का निर्माण :–

प्रस्तुत शोध की प्रकृति प्रधानतः गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक है इसलिये परिकल्पना के स्थान पर शोध प्रश्नों को निर्मित किया गया है। शोध प्रश्नों की संख्या 9 है जिनकी रचना शोधार्थी ने अपने प्रशासनिक अनुभवों एवं क्षेत्रीय अवलोकनों के आधार पर की।

किसी भी शोध कार्य में ''शोध प्रश्न'' वे व्यवस्थित संकेत है जिनके उत्तर के तार्किक परिणामों की जाँच की जाती है। वैज्ञानिक अनुसंधान में शोध प्रश्न का कार्य विशिष्ट तथ्यों के संदर्भ में स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना तथा अन्य तथ्यों के लिए मार्ग दर्शन करना होता है जो शोध कार्य को निश्चित दिशा प्रस्तुत करता है।

यह कहा जा सकता है कि ''हम किसी अध्ययन में एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते जब तक उससे उत्पन्न करने वाली कठिनाइयों के सुझाव पूर्ण विवेचन अथवा समाधान के अनुमान ना लगा सके। संक्षेप में अध्ययन हेतु अपनाया गया प्रारम्भिक सवाल 'शोध प्रश्न' कहलाते हैं –

शोध प्रश्न –

1. निःशक्तता एवं वर्ग संरचना के मध्य सम्बन्ध।

2. निःशक्तता एवं परिवार की प्रकृति के मध्य सम्बन्ध।

3. निःशक्तता के विषय में दैवीय दृष्टिकोण।

4. निःशक्तता एवं सामाजिक व्यवहार की प्रकृति।

5. निःशक्तता को चुनौती देने में परिवार की भूमिका।

6. निःशक्तता एवं अनुवांशिकता के मध्य सम्बन्ध।

7. निःशक्तता एवं सामाजिक नीतियां।

8. निःशक्तता की नीतियों के क्रियान्वयन के विश्लेषण।

9. निःशक्तता एवं सामाजिक नैतिक दायित्व।

4. अध्ययन क्षेत्र का चयन :–

अनुसंधान प्रक्रिया में सार्वभौम एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष है क्योंकि शोधार्थी निःशक्त बच्चे जो कि 6 से 18 वर्ष तक की आयु समूह के है, पर अपने अध्ययन को केन्द्रित करती है अतः भारत में और उसके पश्चात राजस्थान में तथा अन्ततः भरतपुर जो कि शोधार्थी का अध्ययन क्षेत्र है में विद्यमान है। ऐसे निःशक्त वच्चो की संख्या अध्ययन की दृष्टि से सार्वभौम के पक्षों की रचना करती है। शोधार्थी के अध्ययन क्षेत्र भरतपुर में 6 से 18 वर्ष तक की आयु समूह के निःशक्त बच्चे कार्यकारी सार्वभौम की रचना करते है । चूँकि शोधार्थी ने निःशक्तता के सन्दर्भ में दृष्टि बाधा एवं चलन बाधा के चरो को ही विभिन्न चरो मे से चुना है। अतः यदि सार्वभौम को और सीमित किया जाये तो भरतपुर जिले में विद्यमान दृष्टि बाधित एवं चलन बाधित बच्चे जो कि 6 वर्ष से 18 वर्ष तक की आयु समूह से सम्बद्ध है, कार्यकारी सार्वभौम की रचना करते है।

प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने शोध हेतु राजस्थान के भरतपुर जिले का चयन किया है। शोध कार्य की कार्य योजना जानने से पूर्व अध्ययन क्षेत्र की जानकारी अत्यंत आवश्यक है।

आर.एन. मुखर्जी के अनुसार ''एक सामाजिक शोध का अध्ययन क्षेत्र ही समस्त सामाजिक जीवन व सामाजिक जीवन से सम्बन्धित सामाजिक प्रक्रियाओं एवं उसके विधानों तक विस्तृत है''।[4]

BHARATPUR DISTRICT

Keoladev Ghna bird vihar Bharatpur

Lohagarh Fort -Bharatpur

अध्ययन क्षेत्र (भरतपुर जिले) का भौगोलिक परिचय –

हमारे सूचनादाता राजस्थान राज्य के भरतपुर जिले से है। देश के क्षेत्रफल के आधार पर सबसे बड़ा प्रदेश राजस्थान है। राजस्थान को पहले राजपूताना नाम से जाना जाता था। राजस्थान प्रदेश की सम्पूर्ण पश्चिमी सीमा पाकिस्तान से लगी हुई है, जबकि पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश इसके क्रमशः उत्तर–पूर्व व दक्षित–पूर्व से और गुजरात दक्षिण–पश्चिम से घिरे हैं। राजस्थान का क्षेत्रफल 3,42,239 वर्ग किमी. है। राजस्थान राज्य में 39810 गांव हैं, और 33 जिले हैं और इन जिलों में से 6वां जिला भरतपुर है तथा भरतपुर संभाग भी है। भरतपुर का क्षेत्रफल 5,066 वर्ग किमी. है।

अध्ययन क्षेत्र भरतपुर जिला है।यह राजस्थान का पूर्वी प्रवेश द्वार कहलाता है। यह उत्तर प्रदेश, हरियाणा की सीमा से भी लगा हुआ है। भरतपुर का ऐतिहासिक महत्व है कि यहां का किला 'लोहागढ़' के नाम से प्रसिद्ध है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 11 पर स्थित है जो कि इसे एक विश्व प्रसिद्ध स्थल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विश्व प्रसिद्ध 'राष्ट्रीय केवला देव उद्यान' भी भरतपुर में ही स्थित है।

भरतपुर के संस्थापक महाराजा सूरजमल थे जिन्होंने 1727 में भरतपुर की स्थापना की। भरतपुर का प्रसिद्ध दुर्ग 'लोहागढ़' का निर्माण वर्ष 1733 में शुरू करवाया था। उसी समय दुर्ग के चारों तरफ पत्थरों की मोटवाल के अन्दर की तरफ ढ़ाई–तीन सौ फुट ऊंचाई का कच्चा परकोटा बनवाया तथा बाहर की तरफ एक खाई खुदवाई। इस खाई पर दुर्ग के दो प्रवेश द्वार है, जबकि दूसरी तरफ काफी ऊंचाई वाली गिर्द की सड़क है। दुर्ग के दोनों प्रवेश द्वारों पर लकड़ी के पुल थे, कोई भी आक्रान्ता दुर्ग पर कब्जा करने की कोशिश करता तब दुर्ग को जोड़ने वाले लकड़ी के पुलों का हटाकर खाई में रामनगर दो मोरा के माध्यम से पानी भर दिया जाता था। इस खाई के एक ओर दुर्ग की मोटवाल तथा दूसरे किनारे पर भी पक्की मोटवाल है, चूँकि इसका निर्माण महाराजा सूरमल ने करवाया था तथा उनका नाम सुजान सिंह भी था। इसलिए इस खाई को 'सुजानगंगा' का नाम भी दिया गया है।

भरतपुर का क्षेत्रफल 5,066 वर्ग किलो मीटर है भरतपुर जिले की सम्पूर्ण जनसंख्या 25,48,000 है इसका घनत्व 503 व्यक्ति प्रति किलो मीटर है भरतपुर जिले की सम्पूर्ण जनसंख्या में 13,55,726 पुरूष तथा 11,92,736 स्त्रीयां है यहाँ पर 1000 पुरूषों के पीछे स्त्रियों की संख्या 880 है। यहॉ कुल साक्षरता का प्रतिशत 70.11 है जिसमें पुरूष साक्षरता का प्रतिशत 84.10 है तथा स्त्री साक्षरता का प्रतिशत 54.24 है। भरतपुर की कुल जनसंख्या

में से ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत 80.57 है एवं शहरी जनसंख्या का प्रतिशत 19.43 है। भरतपुर में उपखण्डों एवं तहसीलों की संख्या 11 है।

5. अध्ययन इकाईयों का चयन –

किसी भी अध्ययन कर्ता के लिए प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाईयो का चयन किया जाना बहुत कठिन कार्य है। अध्ययन पद्धति की उपर्युक्त सार्थकता सत्यता प्रतिनिधित्व पूर्ण इकाईयो के चयन पर निर्भर करती है। अतः शोधार्थी ने निदर्शन प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने से पहले शोध को उपयोगी बनाने हेतु कुछ पद्धति शास्त्रीय निर्णय लिये। यह निर्णय शोध पर्यवेक्षक के साथ विमर्श करने के उपरान्त लिये गये।

सर्वप्रथम तो यह निर्णय लिया गया कि चलन बाधित एवं दृष्टि बाधित बच्चों को ही अध्ययन के केन्द्र में रखा जाये क्योंकि इन बच्चो सें सम्बन्धित समस्याओ उनके निराकरण हेतु भूमिका, उनके जीवन संचालन हेतु सामूहिक प्रयास और बच्चे की समूह के सन्दर्भ में विशिष्ट भूमिकाओं को व्यापक रूप से जाना जाए। शेष निःशक्त बच्चे जैसे मनोभावनात्मक बाधा इत्यादि को अध्ययन प्रक्रिया में अध्ययन की समय सीमा को देखते हुए सम्मिलित न करने का निर्णय लिया गया।

दूसरा निर्णय शोधार्थी ने 200 निःशक्त निदर्श इकाईयों के चयन में स्तरीकृत निदर्शन प्रणाली एवं उद्देश्यपूर्ण निदर्शन प्रणाली को प्रयुक्त करने का लिया गया।यह स्तरीकृत प्रणाली दृष्टिबाधित एवं चलनबाधित चरों का प्रतिनिधित्व करती है, साथ ही बालक एवं बालिकाओं दोनो को तथा ग्रामीण एवं नगरीय परिवेश में पाये गये निःशक्त परिवारों को चयन प्रकिया में निदर्श इकाई के रूप में सम्मिलित किया गया।

तीसरा निर्णय यह लिया गया की चूँकि निःशक्त उत्तरदाता 6 वर्ष से 18 वर्ष तक की आयु के समूह का प्रतिनिधित्व करते है और साक्षर और गैर साक्षर भी हो सकते है। अतः प्राथमिक सूचनाओं के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची की प्रविधि को प्रयुक्त किया गया है। साक्षात्कार अनुसूची ने 34 प्रश्न संख्या की दृष्टि से सम्मिलित हैं। परिवार की विभिन्न सूचनाओं को जानने के लिए, उत्तरदाताओं के परिवारीजनों से भी सूचनाऐं प्राप्त की गई। साथ ही उनसे अनौपचारिक वार्तालाप द्वारा परिवार एवं समाज के परिवेश को जो कि निःशक्त बच्चें को प्रभावित करता है, जानने का प्रयास

किया गया। साथ ही शोधार्थी ने साक्षात्कार अनुसूची के समय अवलोकन प्रकिया को भी प्रयुक्त किया।

चौथा निर्णय यह लिया गया कि द्वितीयक सूचनाओ के संकलन के लिये ऐसे विभिन्न स्त्रोतों को तलाशा जाये जो कि भारत सरकार एवं राजस्थान सरकार के द्वारा समय समय पर प्रंस्तुत किये जाते है। ऐसे अनेक द्वितियक स्त्रोतो को आवश्यकतानुसार शोधार्थी के द्वारा अवलोकित किया जाये। यह समस्त पक्ष शोधार्थी के अनुसंधान की समूची प्रक्रिया को विवेचन मूलक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का बनाते है।

प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने भरतपुर जिले के 6 से 18 वर्ष तक के आयु समूह कें निःशक्त बच्चों का अध्ययन इकाई के रूप में चयन किया है। जिसकी सूची सारणी 4.1 में उल्लेखित है।

सारणी क्रमांक 4.1: क्षेत्रवार चयनित इकाईयों का विवरण

क्र. सं.	क्षेत्र का नाम	चयनित इकाईयो की श्रेणी वार संख्या				चयनित इकाईयो की कुल संख्या
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित		
		बालक	बालिका	बालक	बलिका	
1.	भरतपुर नगर	20	8	8	3	39
2.	चिकसाना	5	1	1	0	7
3	तुहिया	6	2	2	0	10
4	इकरन	5	2	0	0	7
5	पीपला	6	0	2	1	9
6	सिनपिनी	5	1	1	0	7
7	लुधावई	5	1	0	0	6
8	बछामदी	3	1	0	0	4
9	भझेरा	2	0	2	0	4
10	वरसो	6	1	0	0	7
11	कन्जोली	4	1	0	0	5
12	कासौदा	3	0	0	0	3
13	तमरोली	5	1	1	0	7
14	टोंटपुर	3	1	1	0	5
15	सुनारी	3	0	0	0	3
16	भांडौर	2	0	0	0	2
17	अभोर्रा	2	1	0	0	3
18	अवार	4	0	1	1	6
19	हेलक	3	1	0	0	4

20	चिमनी	4	0	2	0	6
21	सैंत	2	2	1	1	6
22	सोगर	3	0	1	0	4
23	सिकरोरी	6	0	1	0	7
24	बाबेन	1	1	0	0	2
25	अटारी	2	0	1	1	4
26	अरौदा	1	1	0	0	2
27	अलीपुर	2	0	2	0	4
28	लखनपुर	1	1	1	0	3
29	लुहासा	1	0	0	2	3
30	मई	2	1	2	0	5
31	न्यौठा	2	1	0	0	3
32	पहरसर	2	1	0	2	5
33	कवई	3	1	0	0	4
34	दयावली	2	1	0	1	4
	योग	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**

विषय का चुनाव करने के बाद उससे सम्बन्धित सूचना को एकत्रित करने के लिये इकाईयों की आवश्यकता होती है इकाईयों का चुनाव करने के लिये दो पद्धति को उपयोग में लाया जाता है।

(i) संगणना पद्धति

समग्र या समष्टि उस पूरे समूह को कहते है जिसके विषय में हम ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। एफ.एन. कालिन्जर ने लिखा है कि ''समग्र शब्द का अर्थ व्यक्तियों, घटनाओं अथवा वस्तुओं के सुपरिभाषित वर्ग के सदस्यों से है''।[5]

जहोदा ने लिखा है कि ''समग्र उन सभी व्यक्तियों का योग है जो विशिष्ट के एक समान स्तर को बताते है''।[6]

(ii) निदर्शन पद्धति

प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने इकाई को चयन निदर्शन विधि के द्वारा किया है। समग्र में कुछ इकाईयों को निदर्शन के रूप में चुनकर उनका अध्ययन किया जाता है। ये चुनाव अध्ययनकर्त्ता व्यवस्थित, वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग से भी कर सकता है तथा अपनी इच्छानुसार भी। अध्ययनकर्ता किस विधि से चुनाव करेगा, यह उसके विषय प्रकृति व स्त्रोतों पर निर्भर करता है।

सामाजिक अनुसन्धानों में निदर्शन अब लगभग एक अनिवार्यता है। अनुसंधान के अध्ययन हेतु समस्या के चयन उसकी विशद व्याख्या लक्ष्य एवं उद्देश्यों के निर्धारण के उपरान्त अध्ययन का निर्धारण होता है। अध्ययन के क्षेत्र के निर्धारण अध्ययन के उद्देश्य एवं प्रकृति पर निर्भर करता है। गुडे व हॉट ने लिखा है कि ''एक निदर्शन जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि बडे समग्र का अपेक्षाकृत छोटा प्रतिनिधित्व है''।[7]

अतः समग्र में जिन इकाइयों का चयन निदर्शन के रूप में किया जाता है उनके सामान्य लक्षण लगभग वे ही होते है, जो उस समग्र के होते है, और इसी दृष्टिकोण से उसे समग्र का प्रतिनिधि माना जाता है।

न्यादर्श का आकार इतना छोटा न हो कि जनसंख्या का प्रतिनिधित्व न ही कर सके। किन्तु इतना बड़ा अवश्य हो कि जनसंख्या जिसमें से उसका चयन किया गया है का प्रतिनिधित्व कर सके। न्यादर्श अनुसंधान कार्य का सौपान है। न्यादर्श वास्तव में अध्ययन क्षेत्र की समस्त इकाइयों का प्रतिनिधित्व करता है।

प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने 200 निदर्श इकाईयों के चयन में स्तरीकृत निदर्शन प्रणाली एवं उद्देश्यपूर्ण निदर्शन प्रणाली को प्रयुक्त किया है। शोध में 126 उत्तरदाता चलनबाधित तथा 30 उत्तरदाता दृष्टिबाधित है ।यह दोनो ही श्रेणीयां बालको की है। जबकि 32 बालिका चलनबाधित एवं 12 बालिका दृष्टिबाधित के रूप में निदर्श इकाइयों को चुना गया है।यह स्तरीकृत प्रणाली दृष्टिबाधित एवं चलनबाधित चरों का प्रतिनिधित्व करती है। साथ ही बालक एवं बालिकाओं दोनो को तथा ग्रामीण एवं नगरीय परिवेश में पाये गये निःशक्त परिवारों को चयन प्रकिया में निदर्श इकाई के रूप में सम्मिलित किया गया है। अनेक अवसरों पर स्तरीय निदर्शन प्रकिया सफल नहीं हो सकी, इसलिए

उददेश्य पूर्ण निदर्शन प्रणाली को भी शोधार्थी ने चुना। अतः शोधार्थी ने केवल ऐसे परिवारों का चयन किया है, जहाँ केवल एक बच्चा दृष्टि या चलनबाधित सन्दर्भ में निःशक्त है। यदि परिवार में दो अथवा अधिक बच्चे निःशक्त है तो उनका अध्ययन विविधता मूलक एवं गहन पक्ष का हो जाता है जिसके लिये अधिक समय की आवश्यकता होती है। चूँकि शोधार्थी विभिन्न प्रकार की नीतियों के क्रियान्वन का भाग है अतः ऐसे परिवारो के विश्लेषण करवाने में अनेक उपकरणों /प्रविधियों के प्रयोग की आवश्यकता हो सकती है। अतः समय, स्थान बहुस्तरीय भूमिकाऐं जो कि शोधार्थी से सम्बन्धित है एवं व्यय के पक्षों को ध्यान में रखकर एक निःशक्त वाले 200 परिवारों को निदर्श इकाई के रूप में चयनित किया है। निदर्श इकाईयो की यह प्रकृति निदर्श चयन को उद्देश्य मूलक भी बना देती है इस चयन में लैगिक प्रस्थिति, जन्म, स्थान, जाति एवं वर्ग को केन्द्र में रखकर परिवारों को अध्ययन केन्द्र में सम्मिलित करने का शोधार्थी ने प्रयास किया है।

6. तथ्य संकलन की विधि का चुनाव :–

किसी शोध–कार्य के प्राथमिक उद्यमों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सामग्री संकलन का काम होता है। विषय–वस्तु से सम्बन्धित तथ्यों के संकलन की सावधानी और विश्वसनीयता ही किसी शोध कार्य को उत्कर्ष एवं महत्ता देती है। इसमें शोधार्थी की निष्ठा का बड़ा महत्त्व होता है। सामग्री संकलन को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है।

(i) प्राथमिक सामग्री

यह सामग्री किसी शोध के लिए आधार सामग्री होती है। इसी के सहारे कोई शोधकर्मी अपने अगले प्रयास की ओर बढ़ता है। इन सामग्रियों का शोध विषय से सीधा सम्बन्ध होता है। अपने शोध विषय से सम्बद्ध समस्याओं के समाधान हेतु शोधार्थी विभिन्न स्रोतों, संसाधनों, उद्यमों से सामग्री एकत्र करते हैं। विभिन्न अवलोकनों, सर्वेक्षणों, प्रश्नावलियों, अनुसूचियों अथवा साक्षात्कारों द्वारा वे तथ्य के निकट पहुँचने की चेष्टा करते हैं। उनके द्वारा संकलित ये ही तथ्य स्रोत प्राथमिक सामग्री कहलाते हैं। ऐसे तथ्यों का संकलन शोधार्थी प्रायः अध्ययन स्थल पर जाकर करते हैं। शोध सामग्री संग्रह के ऐसे स्रोत को क्षेत्रीय स्रोत भी कहा जाता है। प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने प्राथमिक सामग्री संकलन हेतु सांक्षात्कार अनुसूची एवं अवलोकन प्रविधिं का प्रयोग किया है। साथ ही निदर्श इकाईयों के

परिवारों से विभिन्न प्रकार की जानकारी अनौपचारिक वार्तालाप के आधार पर प्राप्त की, जिन्हें कि शोध में सम्मिलित किया गया।

(अ) अवलोकन –

अवलोकन विधि अनुसंधान की अत्यधिक प्राचीन और सर्वाधिक प्रचलित विधि है। मानव ने चारों और के विश्व का प्रारंभिक ज्ञान अवलोकन के द्वारा ही प्राप्त किया है। मानव के पास संचित ज्ञान का अधिकांश भाग, अवलोकन का भाग है। दैनिक जीवन में नहीं वरन विज्ञानों में भी अवलोकन को अध्ययन एवं अनुसंधान की प्रमुख विधि माना गया है। ''अवलोकन केवल दैनिक जीवन की ही अत्यधिक व्यापक क्रिया मात्र नहीं है, यह वैज्ञानिक जांच का भी प्राथमिक यंत्र है''। विज्ञान अवलोकन से प्रारंभ होता है तथा उसे सत्यापन के लिये अन्ततः आवश्यक रूप से अवलोकन पर ही पुनः लौट आना पड़ता है।

ऐसा माना जाता है कि अवलोकन व्यक्ति के हाव भाव (हुलिया) के माध्यम से उसके बारे में प्रथम दृष्टया पता लगाया जा सकता है। इसलिये निःशक्तजनों के मामले में विशेष रूप से अवलोकन पद्धति कारगर साबित हुई है। साहित्यिक विषयों से सम्बद्ध शोध के लिए इस विधि में वे कार्य आएँगे, जिसमें शोधार्थी अपने शोध विषयक मूल सामग्री प्राप्त करने हेतु सूचित स्थान पर जाते हैं, अथवा सूचित व्यक्ति से मिलते हैं, और सूचित सामग्री को अपनी नजरों से स्वयं देखते हैं, अपनी ज्ञानेन्द्रियों से अनुभव करते हैं। सामाजिक शोध में प्रत्यक्ष अवलोकन ज्ञान प्राप्ति का मुख्य स्रोत है। इस पद्धति के अन्तर्गत शोधार्थी स्वयं अध्ययन स्थल पर जाकर अपने विषय से सम्बन्धित घटनाओं तथा व्यवहार का अवलोकन कर सूचना एकत्र करते हैं। समाज के रहन सहन, आचार व्यवहार, भाषा, त्यौहार, रीति रिवाजों के बारे में अध्ययन करने के लिए यह विधि सबसे अधिक उपयोगी और विश्वसनीय है। इस विधि का इस्तेमाल सबसे पहले सन् 1017 में फारसी विद्वान अल बरुनी ने अपनी भारत और श्रीलंका यात्रा में किया था। अल बरुनी ने भारतीय उपमहाद्वीप में रहकर, वहाँ की भाषाएँ सीखकर तुलनात्मक अध्ययन द्वारा वहाँ के समाज, धर्मों और परम्पराओं का विवरण प्रस्तुत किया था। आधुनिक अर्थ में इस विधि का उपयोग सबसे पहले आधुनिक मानव विज्ञान के पिता कहे जाने वाले अमेरिकी मानव विज्ञानी फ्रांज बोआज (सन् 1858–1942) ने शुरू किया। जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन, इयुगिन पेत्रोविच चेलिशेव, लिण्डा हेस्स जैसे शोधवेत्ता इस प्रसंग के लिए बेहतरीन उदाहरण हैं। वर्तमान में इस विधि का सबसे अधिक उपयोग समाजशास्त्र, सांस्कृतिक मानवविज्ञान, भाषाविज्ञान तथा सामाजिक मनोविज्ञान में होता है।

(ब) साक्षात्कार अनुसूची –

चूँकि उत्तरदाता 6 वर्ष से 18 वर्ष तक की आयु के समूह का प्रतिनिधित्व करते है और साक्षर और गैर साक्षर दोनो ही हो सकते है। अतः प्राथमिक सूचानाओ की संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची की प्रविधि को प्रयुक्त किया गया है। साक्षात्कार अनुसूची में 34 प्रश्न संख्या की दृष्टि से सम्मिलित है परिवार की विभिन्न सूचनाओं को जानने के लिये उत्तरदाताओ के परिवारीजनो से भी सूचनाऐ प्राप्त की गई। साथ ही उनसे अनौपचारिक वार्तालाप द्वारा परिवार एवं समाज के परिवेश को जो कि निःशक्तत बच्चे को प्रभावित करता है, जानने का प्रयास किया गया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में तथ्य संकलन के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। इसके लिए एक साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण किया गया है। इस अनुसूची को इस प्रकार डिजाइन किया गया है कि अध्ययन के उद्देश्य पूर्ण हो सके। इस अनुसूची के माध्यम से निःशक्त बच्चों से सम्बन्धित सूचनाएं विस्तृत एवं गहन रूप से संग्रहित करने का प्रयास किया गया। इस अध्ययन से भरतपुर जिले के निःशक्त बच्चों की समस्याओं को ज्ञात कर उनके समाधान के सुझावों को प्राप्त कर उनका निवारण करने का प्रयास किया गया है।

संरचित प्रश्नों का वह सैट जिसमें साक्षात्कार कर्ता द्वारा स्वयं उत्तर लिखे जाये, साक्षात्कार अनुसूची कहलाती है। प्रश्नावली से यह इस अर्थ में भिन्न है कि प्रश्नावली में स्वयं उत्तर उत्तरदाता द्वारा भरे जाते है। प्रश्नावली का प्रयोग तब किया जाता है जब उत्तरदाता शिक्षित हो, जबकि साक्षात्कार अनुसूची शिक्षित एवं अशिक्षित दोनों के लिये प्रयुक्त की जा सकती है।

(ii) द्वितीयक सामग्री

प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने भारत सरकार एवं राज्य सरकारों के द्वारा समय समय पर प्रस्तुत प्रतिवेदनों को द्वितीयक सूचनाओं के संकेन्द्रण के लिये प्रयुक्त किया है।

द्वितीयक सामग्री लक्षित विषय प्रसंग के बारे में पहले से ही उपलब्ध अथवा संकलित सामग्री को द्वितीयक सामग्री कहते हैं। इसके अन्तर्गत वे समस्त सामग्रियाँ एवं सूचनाएँ आती हैं जो प्रकाशित या अप्रकाशित रूप में कहीं न कहीं उपलब्ध हैं। लक्षित विषय प्रसंग से सम्बद्ध सन्दर्भ–ग्रन्थ, सम्बद्ध सरकारी विभागों में उपलब्ध सूचनाएँ आदि इसके उदाहरण हैं। इन्हें सहायक सामग्री अथवा प्रलेखीय स्रोत भी कहा जाता है।

द्वितीयक सामग्री के प्रकाशित स्रोतों में प्रमुख हैं :– पुस्तकालयों, संग्रहालयों में उपलब्ध सन्दर्भग्रन्थ, सरकारों के वार्षिक प्रतिवेदन, सर्वेक्षण, योजना प्रतिवेदन, जनगणना रिपोर्ट, पत्र पत्रिकाएँ, समाचार पत्र, पुस्तकें आदि। अप्रकाशित स्रोतों में प्रमुख हैः– हस्तलिखित सामग्री, डायरी, लेख, पाण्डुलिपि, पत्र, विभिन्न संस्थाओं में संकलित अप्रकाशित सामग्री आदि।

7. तथ्यों का संकलन तथा वर्गीकरण –

तथ्यों के संकलन के पश्चात् तथ्यों का वर्गीकरण किया जाता है। असम्बद्ध या बिखरे हुए आंकड़ों या तथ्यों के आधार पर कोई वैज्ञानिक निष्कर्ष निकालना संभव नहीं है। सही निष्कर्ष निकालने के लिए आवश्यक है कि प्राप्त तथ्यों को व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध किया जाएं। इसके लिए तथ्यों को समानता के आधार पर विभिन्न वर्गों में बांटा जाता है। यह कार्य वर्गीकरण के अन्तर्गत आता है।

बिना वर्गीकरण की व्यवस्था के तथ्यों के व्यवस्थित संग्रह एक विज्ञान न होकर एक रेल्वे चार्ट की भांति हैं। किसी भी व्यवस्था में वर्गीकरण कार्य जितना कुशलता एवं स्पष्ट रूप से किया जायेगा, वैज्ञानिक निष्कर्षों तक पहुंचना अनुसंधानकर्ता के लिए उतना ही आसान होगा।

तथ्यों का वर्गीकरण निम्न आधारों पर कर सकते है :–

(अ) अनिवार्य समानताओं या भिन्नताओं के आधार पर।

(ब) सम्बन्धित कारकों के परस्पर सम्बन्धों के आधार पर।

8. सारणीयन –

जब व्यापक स्तर पर तथ्यों का संकलन हो जाता है तो उनकों तार्किक व्यवस्था के अनुसार क्रमबद्ध करना अनिवार्य हो जाता है। अनुसंधान की इस क्रिया को सारणीयन कहा जाता है। सारणीयन में वर्गीकृत तथ्यों को संक्षिप्त रूप प्रदान करने हेतु संख्यात्मक सारणियों में रखा जाता है। ऐसा करने से वर्गीकृत तथ्य अधिक अर्थपूर्ण एवं स्पष्ट हो जाते हैं। ऐसे सूक्ष्म स्पष्ट एवं तुलना योग्य तथ्यों के आधार पर वैज्ञानिक निष्कर्ष निकालना एवं नियमों का प्रतिपादन करना संभव होता है। प्रस्तुत शोध में तथ्यों का संकलन एवं वर्गीकरण के बाद हमने तथ्यों को संक्षिप्त रूप प्रदान करने के लिए संख्यात्मक सारणी में रखा है।

9. तथ्यों का विवेचन एवं विश्लेषण –

इस चरण में संकलित किये गये तथ्यो का अर्थ निकाला जाता है और तथ्यों घटनाओं एवं विभिन्न दशाओ के मध्य सह सम्वन्ध ज्ञात किया जाता है एवं कार्यकारण सम्बन्धों का पता लगाया जाता है। तथ्यों के विवेचन एवं विश्लेषण के आधार पर वैज्ञानिक निष्कर्ष निकाले जाते है।

10. सामान्यीकरण एवं नियमो का प्रतिपादन –

प्रत्येक अनुसंधान से हमारा उद्देश्य विभिन्न प्रघटनाओं के बारे में सामान्यीकरण प्राप्त करना होता है। सामान्यीकरण से तात्पर्य प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर इस प्रकार व्याख्या करना है कि निदर्शन प्राप्त निष्कर्ष सम्पूर्ण समग्र एवं जनसंख्या के लिये भी लागू हो सके, तत्पश्चात सामान्यीकरण किया जाता है । वैज्ञानिक सामान्यीकरण तथा नियमों का प्रतिपादन करने के लिए तार्किक पद्धति, सांख्यिक पद्धति, आगमन एवं निगमन विधि को अपनाया जाता है।

कालपियर्सन ने लिखा है कि सत्य के लिए लघु (संक्षिप्त) मार्ग नहीं है, विश्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक पद्धति के द्वार से गुजरने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है।[8]

11. शोध प्रतिवेदन का प्रस्तुतिकरण –

शोध प्रतिवेदन तैयार करना शोध प्रक्रिया का अन्तिम चरण है। इसका उद्देश्य जिज्ञासु लोगों तक शोध के बारे में व्यवस्थित, विस्तृत और लिखित परिणाम पहुँचाना होता है। शोध प्रतिवेदन में शोध के उद्देश्य, क्षेत्र, प्रविधियाँ, संकलित तथ्यों का विवरण, विश्लेषण, व्याख्या और निष्कर्ष आदि लिखित रूप में प्रस्तुत किये जाते है। जब तक शोधार्थी अपना शोध लिखित रूप में प्रस्तुत नहीं करता, शोध कार्य पूर्ण नहीं माना जाता है। प्रतिवेदन द्वारा ही शोध सम्मत ज्ञान दूसरों तक पहुँचाया जाता है। शोध प्रतिवेदन के दो भाग होते हैं–प्राथमिक भाग तथा मुख्य भाग। प्राथमिक भाग के प्रमुख उपभाग होते हैं–मुखपृष्ठ, शोध निदेशक का प्रमाण–पत्र, शोधार्थी की घोषणा, समर्पण,कृतज्ञता ज्ञापन, तालिकाओं और आरेखों की सूची, संकेताक्षरों की सूची, अनुक्रमणिका। शोध प्रतिवेदन के मुख्य भाग अध्यायों में बँटे होते हैं। अध्यायों के विभाजन में उपभागों का ध्यान रखा जाता है। इसमें मुख्य उपभाग होते हैं–प्रस्तावना, विषय से सम्बद्ध पूर्व के अध्ययनों का विवरण, उपलब्ध सामग्री और शोध प्रक्रिया, तथ्यों का विवेचन , विश्लेषण, व्याख्या, निष्कर्ष, सन्दर्भ भाग, परिशिष्ट।

शोध प्रतिवेदन के मुख्य भाग का प्रवेश द्वार प्रस्तावना होता है, इसलिए प्रस्तावना में विषय प्रसंग का परिचय, समस्या निदान की विधियों के संकेत, विषय क्षेत्र एवं परीक्षण हेतु प्रस्तुत परिकल्पना आदि की जानकारी दी जाती है। बीच के उपभाग अध्यायों में विभक्त होते हैं। निष्कर्ष के बाद शोध प्रतिवेदन के सन्दर्भ भाग होते हैं, इस भाग में शोध के दौरान उपयोग की गई आधार सामग्री, सहायक सामग्री, अर्थात् सन्दर्भों, सन्दर्भ ग्रन्थों की अलग अलग व्यवस्थित सूची दी जाती है। इसमें पूरे विवरण के साथ पुस्तकों, पत्र पत्रिकाओं, इण्टरनेट के सन्दर्भों, वेबलिंकों की अलग सूची दी जाती है। इससे आगे का उपभाग परिशिष्ट होता है। यहाँ शोध से सम्बद्ध बची सूचनाएँ यथायुक्त उपशीर्षक बनाकर दी जाती हैं, जो पूरी तरह उपर्युक्त नहीं होने के कारण प्रबन्ध या प्रतिवेदन के मध्य भाग में नहीं दी सकती। किन्तु शोधार्थी को ऐसा प्रतीत होता है कि ये भी जनोपयोग में आनी चाहिए। इसमें विषय अथवा लेखक के अनुसार सूची पत्र अथवा अन्य आँकड़े बनाए जाते हैं।

अध्ययन में उत्पन्न कठिनाईयां –

शोधार्थी को सूचना संकलन के दौरान अनेक कठिनाइयों का भी सामना करना पडा शोधार्थी का मानना है कि कोई ऐसा भी शोध सम्भव नहीं है जहाँ क्षेत्रीय अध्ययन के दौरान समस्या उपस्थित न हो। निदर्श इकाईयां उत्तर देने में संकोच का अनुभव करती थी ।अतः उनसे एक प्रश्न पूछने का प्रयास किया गया। शोधार्थी ने प्रयास किया कि उत्तरदाता के साथ भावनात्मक निकटता निर्मित कि जाये ताकि उत्तर बिना किसी संकोच के प्राप्त हो सके।

परिवारीजन अनेक प्रश्नों का उत्तर अनुमान के आधार पर देते थे तो कभी कभी ऐसा लगता था कि यथार्थ का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नही करतें है। अनेक परिवारों के अध्ययन के लिये बार बार सम्पर्क करने पडे, क्योंकि या तो उत्तरदाता उपस्थित नही था या फिर परिवारीजन उत्तरदाता की किसी समस्या का उल्लेख शोधार्थी को दोबारा आने की सलाह देते थे। विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में इस समस्या का सामना शोधार्थी को अनेक बार करना पडा। यह शेाध शोधार्थी को निःशक्त बच्चो के अनेक मनोभावों एवं अनुभव की जाने वाली सामाजिक विसंगतियों से परिचित कराता है जिनकी विवेचना सम्भवतः शब्दो के माध्यम से नहीं की जा सकती है।

सन्दर्भ सूची

1. सिंह, योगेन्द्र (1983) ''इमेज ऑफ मेन आइडियोलोजी एण्ड थ्योरी इन इण्डियन सोशियोलोजी'' देहली पृ.सं. 103–104।
2. चेज, स्टुअर्ट (1956) ''दा प्रोपर स्टडी ऑफ मेन काइन्ड, '' न्यू यार्क, पृ.सं. 6।
3. यंग, पी.वी. (1966) ''साइंटिफिक सोशल सर्वे एण्ड रिसर्च'' पृ.सं. 44।
4. मुखर्जी, आर. एन. (2009) ''सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी'' विवेक प्रकाशन, दिल्ली पृ.सं. 5।
5. कर्लिन्जर, एफ.एन. ''फाउण्डेशन ऑफ बिहेविरीयल रिसर्च'', पृ.सं. 178।
6. जहौदा ''रिसर्च मैथड इन सोशल रिलेशन''।
7. गुडे एवं हॉट '' मैथड इन सोशल रिसर्च'' पृ.सं. 209।
8. पियर्सन, कार्ल (1892) '' दा ग्रामर ऑफ साइंस'' पृ.सं. 10।

पंचम अध्याय

निःशक्तजन बच्चों का सामाजिक, मनोवैज्ञानिक विश्व : अनुभाविक विवेचन

पूर्व अध्यायों में शोधार्थी ने समाजशास्त्रीय दृष्टि से निःशक्तजनों के सामाजिक सांस्कृतिक विश्व को समझनें का प्रयास किया है। वर्तमान अध्ययन में अपने प्रशासनिक अनुभवों, अर्द्ध सहभागी अवलोंकन एवं विशेष अवसरों पर क्षेत्रीय भ्रमण तथा उत्तरदाताओं एवं उनके परिवारों से अनौपचारिक साक्षात्कार के माध्यम से प्राप्त सूचनाओं एवं द्वितीयक सूचनाओं के आधार पर निःशक्त उत्तरदाता वच्चों के मनोवैज्ञानिक परिवेश की रचना इस अध्याय में की गई है। इस कारण यह अध्याय अनुभविक प्रकृति का हो जाता है। उत्तरादताओं से प्राप्त सूचनाओं के पूर्व शोधार्थी ने यह बताने का प्रयास किया है कि निःशक्त समाज मनोवैज्ञानिक परिवेश जो कि निःशक्त सामाजिक इकाईयों के जीवन का भाग है कि विसंगतियों को समझााने हेतु संयुक्त राष्ट संघ ने प्रत्येक वर्ष 3 दिसम्वर को विश्व विकलांग दिवस मनानें का निर्णय लिया, इसी के तहत अंतर्राष्ट्रीय निःशक्तजन दिवस 3 दिसम्बर को मनाया जाता है। यह दिवस शारीरिक रूप से अक्षम लोगों को देश की मुख्य धारा से जोडने के लिए मनाया जाता है। वर्ष 2013 हेतु अर्न्तराष्ट्रीय निःशक्तजन दिवस का थीम–'बाधाओं को तोड़ें, दरवाजों को खोलें, सभी के लिये एक समावेशी समाज और विकास' था।

अन्तर्राष्ट्रीय निःशक्तजन दिवस का उद्देश्य आधुनिक समाज में शारीरिक रूप से अक्षम लोगों के साथ हो रहे भेद–भाव को समाप्त किया जाना है। इस भेद–भाव को समाप्त करने में समाज और व्यक्ति दोनों की भूमिका रेखांकित होती रही है। भारत सरकार द्वारा किये गए प्रयासों में सरकारी सेवा में आरक्षण देना, योजनाओं में निःशक्तजनों की भागीदारी को प्रमुखता देना, आदि को शामिल किया जा रहा है।

सयुंक्त राष्ट्र संघ ने 3 दिसंबर 1991 से प्रतिवर्ष अन्तर्राष्ट्रीय निःशक्तजन दिवस को मनाने की स्वीकृति प्रदान की थी। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने वर्ष 1981 को अन्तर्राष्ट्रीय निःशक्तजन दिवस के रूप में घोषित किया था। सयुंक्त राष्ट्र महासभा ने सयुंक्त राष्ट्र संघ के साथ मिलकर वर्ष 1983–92 को अन्तर्राष्ट्रीय निःशक्तजन दिवस दशक घोषित किया था।

भारत में निःशक्तजनों से संबंधित योजनाओं का क्रियान्वयन सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय के अधीन होता है। संगम योजना का संबंध भारत में निःशक्तजनों से संबंधित है।

विश्व में आज हजारों–लाखों व्यक्ति निःशक्तता का शिकार है। निःशक्तता अभिशाप नहीं है क्योंकि शारीरिक अभावों को यदि प्रेरणा बना लिया जाये तो निःशक्तता व्यक्तित्व विकास में सहायक हो जाती है। यदि सकारात्मक रहा जाये तो अभाव भी विशेषता बन जाते हैं। निःशक्तता से ग्रस्त लोगों की मजाक बनाना, उन्हें कमजोर समझना और उनको दूसरों पर आश्रित समझना एक भूल और सामाजिक रूप से एक गैर जिम्मेदाराना व्यवहार है।[1]

हम इस बात को समझे कि उनका जीवन हमारी तरह है और वह भी समाज की मुख्यधारा से जुड सकते है। पंडित श्रीराम शर्मा जी ने एक सूत्र दिया है किसी को कुछ देना है तो सबसे उत्तम है कि आत्म विश्वास जगाने वाला उत्साह व प्रोत्साहन दें। भारत के वीर धवल खाडे ने निःशक्त होने के बावजूद राष्ट्रमंडल खेलों में भारत को तैराकी में स्वर्ण दिलाया था। आपके आस पास ही कुछ ऐसे व्यक्ति होंगे जिन्होंने निःशक्त होने के बाद भी बहुत से कौशल अर्जित किये है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक हाकिंस भी कृत्रिम यंत्रों के सहारे सुनते, पढ़ते है, लेकिन आज वह भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में दुनिया के सबसे श्रेष्ठ वैज्ञानिक माने जाते हैं। दुनिया में ऐसे अनेकों उदाहरण मिलेंगे, जो बताते है कि सही पथ मिल जाये तो अभाव भी एक विशेषता बनकर सबको चकित कर देता है।

भारत विकासशील देश की श्रेणी में आता है। विज्ञान के इस युग में हमने कई ऊंचाइयों को छुआ है। लेकिन आज भी हमारे देश में समाज में कई व्यक्ति है जो हीन दृष्टि झेलने को मजबूर है। वह व्यक्ति जो किसी दुर्घटना या प्राकृतिक आपदा का शिकार हो जाते है अथवा जो जन्म से ही निःशक्त होते है, समाज भी उन्हें हीन दृष्टि से देखता है। जबकि यह व्यक्ति सहायता एवं सहानुभूति के योग्य होते है। विश्व निःशक्तजन दिवस पर कई तरह के आयोजन किये जाते है, रैलियां निकाली जाती है, विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं लेकिन कुछ समय बाद यह सब भुला दिया जाता है, व्यक्ति अपने–अपने कामों में लग जाते है और निःशक्त जन एक बार फिर हताश हो जाते है। निःशक्तता शारीरिक अथवा मानसिक हो सकती है किन्तु सबसे बड़ी निःशक्तता हमारे समाज की उस सोच में है जो निःशक्तजनों से हीन भाव रखती है और जिसके कारण एक असक्षम व्यक्ति असहज महसूस करता है। हाल ही में एक सज्जन हमारे घर पधारे। उनके साथ उनकी 4 वर्ष की प्यारी सी बिटिया थी। मैंने सौजन्यतावश आदर सत्कार के पश्चात् छोटी सी बच्ची से उसका नाम जानना चाहा।

कई बार जब मेरा प्रयास बेकार गया तो उन सज्जन ने कहा कि अभी यह छोटी है, कुछ ही शब्द बोलती है। मैने प्यार से उस बच्ची से पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है तो उसने भी चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया लाए बिना मेरे ऊपर प्रश्न जड़ दिया कि तुम्हारा नाम क्या है ? मैं संदेहास्पद हो गई। उसे मैने खेलने के लिए टैडी–बीयर खिलौना दिया जिसे उसने फेंक दिया लेकिन वह चलते पंखे को लगातार देख रही थी। शायद वह आटिज्म से प्रभावित थी। फिर मैनें उसके माता पिता से कहा कि मुझे इसके व्यवहार में कुछ अलग दिख रहा है अतः हो सके तो आप इसे बाल मनोरोग विषेशज्ञ के पास ले जाएं, पर शायद उन्हें मेरी बात अच्छी नहीं लगी। इस तरह की कई घटनाओं को हम अपने आस–पास देखते हैं, व प्रायः नजरअंदाज भी कर देते हैं।

हम कई बार ऐसे व्यक्तियों को देखते हैं, जो अपने असामान्य व्यवहार के कारण सहज ही अलग पहचाने जा सकते हैं। सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा उनका असामान्य व्यवहार व्यक्तियों की नजरों में कौतूहल का सवब बन जाता है। उनकी शारीरिक एवं मानसिक विकृति को देखकर लोगों के मन में दया या घृणा का भाव ही उपजता है। यहाँ तक कि उनसे दूर रहने का बहाना भी ढूंढते हैं, परन्तु उनके प्रति स्नेह भाव नहीं रखते, जिसकी उन्हे सख्त आवश्यकता है। सच तो यह है कि वह भी उसी समाज का एक हिस्सा हैं। उन्हें भी समाज में उसी अधिकार एवं सम्मान से जीने का हक है, जितना सामान्य जन को। भारत जैसे विशाल लोकतांत्रिक देश में संवैधानिक कानून भी उनके हकों की पैरवी करता है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अनेक स्वयंसेवी संगठन उनके अधिकारों एवं न्याय के लिए कई महत्वपूर्ण कार्य कर रहे है। पिछले वर्ष 3 दिसम्बर पर संयुक्त राष्ट्र संघ ने निःशक्तजनो के अधिकारों की वकालत करते हुए 'न्याय एवं सम्मान सबके लिए' का नारा दिया, साथ ही निःशक्तजनों के आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों का खुलकर पक्ष लिया।

सिनेमा जगत में भी कई बार इन विषयों को लेकर फिल्में बनाई गई, जो काफी चर्चित हुई एवं पुरस्कृत भी की गई। आमिर खान द्वारा निर्देशित 'तारे जमीं पर' में 'डिस्लेक्सिया' यानि लर्निंग डिसआर्डर से प्रभावित बच्चों को केन्द्र में रखकर फिल्म बनी, जिसमें उसके पढ़ने लिखने के दौरान आने वाली समस्या, उसके पढ़े लिखे अभिभावक की अज्ञानता एवं बच्चे में मौजूद क्षमताओं को ढूँढकर उसके लिए नया मार्ग प्रशस्त करना आदि पहलुओं को दर्शाया गया। अमिताभ बच्चन द्वारा अभिनीत फिल्म ''ब्लैक'' में भी इसी प्रकार के एक अन्य विषय पर फिल्म बनी। जिसके कारण लोग इन समस्याओं पर सोचने को मजबूर हो गये। हाल ही में निःशक्तता को केन्द्रित कर 'प्रोगेरिया' से पीड़ित व्यक्ति पर 'पा'

फिल्म का फिल्मांकन किया गया है । कहने का अभिप्राय यह है कि सिनेमा भी निःशक्तजनों के प्रति लोगों में जागरूकता फैलाने का एक सशक्त माध्यम बन रहा है।

निःशक्तजनों से जीवन की अधिकांश समस्याओं की ओर हमने अभी तक ध्यान नही दिया है। अपने सामाजिक परिसर में हम जिन्हें निःशक्तजन कहते है, उनके प्रति उपेक्षा और घृणा से मिश्रित दयाभाव का ही हमारे भीतर सृजन होता है। हम भूल जाते हैं कि महाराज विदेह जनक की सभा मे अष्टावक्र की अंगरचना में निःशक्तजनवर्ग की बौद्धिक श्रेष्ठता का जयघोष किया था, तैमूरलंग के अभियानों ने निःशक्तजनो की विजय आकांक्षा का शंखनाद किया था, सूरदास की बन्द आंखों ने वात्सल्य और श्रृंगार भाव का सजग उद्‌घाटन किया था, मिल्टन के लुप्त नेत्र ज्योति ने 'पैराडाइज लॉस्ट' की प्रखर सर्जना की थी। ऐसे अनेक उदाहरण इतिहास में बिखरे हुए है फिर भी समाज की धारणा निःशक्तजनो के प्रति अत्यंत उपेक्षा पूर्ण है। उनकी आकृति तथा अंग संचालन का उपहास किया गया है अथवा उन्हें दया का पात्र बनाकर परजीवी घोषित किया गया है। शताब्दियों से उपेक्षित निःशक्तजनो की समस्या की ओर ध्यान आकर्षित करने के उद्देश्य से 1981 को अंतरराष्ट्रीय निःशक्तजन वर्ष घोषित किया गया।

समूचे देश में निःशक्तजनो को कहीं नैसर्गिक निःशक्तता का सामना करना पड़ता है, तो कही दुर्घटनाओं, रोगी तथा असामाजिक तत्वों का। अधिकांश निःशक्तजन ऐसा अनुभव करते है कि समाज उनके प्रति उपेक्षा भाव रखते है, लोग उनसे घृणा करते हैं। अपने समूचे जीवन को अर्थहीन मान कर असहाय और विवश जीवन बिताने के लिए बाध्य निःशक्तजन की समस्याऐं भिक्षावृति से जुड़कर और भी दुःखद हो जाती है। तिरस्कृत निःशक्तजन समाज से टूट कर लोगो के दुर्व्यवहार से पीड़ित होकर भीख मांगने के लिए विवश हो जाते है। स्थिति यह है कि भारत मे लगभग 83 लाख भिखारी है, जिसमे से 17 लाख भिखारी अपंग है। प्रारंभ में भीख मांगना एक विवशता हो सकती है, लेकिन बाद में यह आदत बन जाती है। निराश्रित निःशक्तजनो के पास भीख मांगकर अपनी न्यूनतम आवश्यताओं की पूर्ति करना एक मात्र साधन रह जाता है। अब समय आ गया है कि हम अपने परिवेश के इन निःशक्तजनो की समस्याओं को अपनी समस्या समझे और उनके कुठिंत व्यक्तित्व को विकास की सही दिशा दे। शरीर के निःशक्त हो जाने पर भी मन के घोड़े निःशक्त नही हो जाते है, उसकी उड़ान सभी दिशाओं का स्पर्श करती है। वस्तुतः निःशक्तजनों को दया की नहीं, सहयोग की आवश्यकता है, सहानुभूति की नहीं साहचर्य की आवश्यकता है। कृत्रिम अंग प्रत्यारोपण एवं आर्थिक स्वावलंबन की सुविधा प्रदान करने से उनका मानसिक विकास हो सकता है।

निःशक्तजनों की जिजीविषा को ऊंचाई प्रदान करने, एक सम्मानित स्तर प्रदान करने की कोशिश ही समाज के इस वर्ग को सही दिशा दे सकती है। वर्तमान व्यवस्था की कमजोरी ने निःशक्तजनो की समस्याओ के समाधान की दिशा में अपनी शिथिलता दिखलायी है।

संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 17 दिसंबर 1976 के प्रस्ताव संख्या 31.123 में 1981 को अंतर्राष्ट्रीय निःशक्तजन वर्ष घोषित किया था। निःशक्तजन एवं सामान्य व्यक्तियों के बीच विभाजन रेखा खींचने वाली सामाजिक और मनोवैज्ञानिक बाधाओं को दूर करने का शाश्वत संकल्प आज भी हमारे सामने है।

मन में उमंग हो और जीवन में कुछ बनने की ललक, तो अपंगता की अड़चन प्रगति में आड़े नहीं आने पाती। इस क्रम में अवरोध तब पैदा होता है जब निजी अक्षमता को लेकर मनुष्य अपनी सामर्थ्य को कम करके आँकना शुरू करता है, पर सच्चाई यह है कि उसकी असमर्थता शारीरिक कम मानसिक ज्यादा होती है। भौतिक अंग–अवयवों की कमी किसी की प्रतिभा के प्रकट–प्रत्यक्ष होने में उतनी बाधा पैदा नहीं करती जितनी कि मन की हताशा। इसे यदि दूर किया जा सके, तो कोई संदेह नहीं है कि अपाहिज व्यक्ति भी अपनी संपूर्ण क्षमता एवं प्रतिभा का परिचय न दे सकें।

ऐसे कितने ही उदाहरण देखे सुने जाते हैं, जिनमें अक्षम जन भी सर्वांगपूर्ण व्यक्ति जैसी क्षमता का प्रदर्शन करते हैं। ऐसा ही एक व्यक्ति कार्ल अंथन था। वह आस्ट्रेलिया का रहने वाला था। जब पैदा हुआ तो एकदम स्वस्थ था, किंतु उसके बाँहें नहीं थी। जन्म से ही उसके हाथ कंधों से गायब थे। पिता ने बच्चे की स्थिति देखी, तो पहले तो कुछ निराश हुए, पर अगले ही पल उन्होंने मन को मजबूत बनाया और बालक को स्वावलम्बी बनाने का निश्चय किया। इस दिशा में उन्होंने जो पहला कदम उठाया, वह यह कि सहानुभूति दिखाने वालों का आना बंद करा दिया। जो बालक को देखने का बहुत हठ करते उनसे पहले ही कह दिया जाता कि उसके सामने कोई भी ऐसी बात न कही जाए जो उसके बाल–मन को ठेस पहुँचाए। उनका विश्वास था कि बालक के समक्ष उसकी दयनीय स्थिति पर चिन्ता प्रकट करना उसके उत्साह और मनोबल को तोड़ेगा। हीन भावना यदि एक बार उसके मन में घर कर गई तो पूरी जिन्दगी वह उससे उभर नहीं पायेगा और पराश्रित बनकर जीना पड़ेगा।

बचपन से ही माता–पिता उसे प्रशिक्षण देने लगे कि अपना काम वह स्वयं कैसे करे। उन्होंने सामान्य बच्चों की तरह अंथन को जूते–मोजे पहनने की अनुमति नहीं दी और

उसे इस बात के लिए प्रेरित किया कि वह अपने पैरों का इस्तेमाल हाथ की तरह करना सीखे। आरंभ से ही उसकी टाँगों की कसरत कराकर उन्हें इतना लचकदार बना दिया गया था कि वह उन्हें मुँह तक आसानी से ले जा सके। अब आवश्यकता पड़ने पर वह उनका उपयोग खाने के लिए भी कर सकता था। जब कोई खाद्य वस्तु उसके सामने आती तो वह उसे टाँग के अँगूठे और बगल वाली अँगुली के सहारे पकड़कर मुँह में डाल लेता। जीवन में उसकी यह पहली विजय थी। इसके बाद तो लग्न और मेहनत के बल पर कई ऐसे कार्य करना सीख लिया जिसे हाथ के अभाव में संपन्न कर सकना अत्यन्त दुष्कर समझा जाता था। जब वह तीन वर्ष का हुआ तो उस उम्र के अधिकाँश बच्चे चलने–फिरने लगे थे। अंथन उन्हें देखकर बहुत मचलता और उनके जैसा ही खड़ा होने और चलने का प्रयास करता। बार–बार के प्रयत्न के बाद एक दिन वह खड़ा होने तथा एक–दो कदम बढ़ाने में सफल हुआ। इसके बाद धीरे–धीरे वह चलना और दौड़ना सीख गया।

पढ़ने में उसकी रुचि थी। दूसरे बच्चों के साथ वह भी स्कूल जाने लगा। वहाँ साथियों को स्लेट पर लिखता देख वह उनकी नकल करने की कोशिश करता। बाद में उसके पिता कार्ल फ्रांथन ने उसके लिए एक स्लेट ला दी। वह पाँव की अँगुलियों में चॉक फँसाकर उससे लिखने का प्रयास करता। उसके पिता इसमें उसका सहयोग करते। इस प्रकार उसका अक्षरज्ञान घर पर आरंभ हुआ। बाद में उसे स्कूल में भर्ती करा दिया गया। बड़ा होने पर उसने अपने पैर की अँगुलियों से लिखने का ऐसा अभ्यास कर लिया कि उसकी सुंदर लिखावट को देखकर यह अंदाज लगा सकना मुश्किल था कि इसे हाथ नहीं, पैर द्वारा लिखा गया है।

कठिन मेहनत द्वारा अपनी अपंगता को उसने किसी भी क्षेत्र में आड़े नहीं आने दिया। तैरना भी अपनी मेहनत एवं लग्न से सीखा। बाजूरहित व्यक्ति के लिए यह अत्यंत कठिन कार्य था। किन्तु यहाँ भी मनोबल, लग्न और अभ्यास को सफलता मिली। अंथन के घर के निकट एक तालाब था। गर्मियों में लड़के अकसर उसमें नहाया करते थे। उन्हें नहाता देख वह भी उसमें अभ्यास करने लगा। पहले छिछले पानी में इसकी शुरुआत की। जब कठिन अभ्यास के बाद यह भरोसा हो गया कि वह किसी भी प्रकार डूबेगा नहीं, तो थोड़े गहरे जल में तैरना प्रारंभ किया। इस प्रकार धीरे–धीरे उसने इसमें भी निपुणता प्राप्त कर ली।

भुजाओं के बिना वाद्ययंत्र बजा पाना लगभग असंभव है, लेकिन अंथन का उदाहरण इस बात को सिद्ध करता है कि लग्न यदि सच्ची हो और संकल्प प्रबल तो असंभव को

संभव कर दिखाना कुछ भी कठिन नहीं। कार्ल अंथन का संगीत से गहरा लगाव था। वह स्वयं इसमें पारंगत बनना चाहता था। उसे वायलिन बहुत प्रिय था। अतः उसने संगीत–शिक्षा इसी से प्रारंभ की। वह घंटों वायलिन को स्टूल पर रखकर पैर की अँगुलियों द्वारा उसके तारों को छेड़ा करता था। धीरे–धीरे वह इसमें निपुण बन गया और तरह–तरह की सुरीली धुनें निकालने लगा। 16 वर्ष की अल्पायु में उसकी ख्याति कुशल वादक के रूप में फैल गयी। उसकी इस उपलब्धि से लोग आश्चर्यचकित थे।

देश–विदेश में अंथन ने संगीत के अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। सभी ने उसकी प्रबल इच्छाशक्ति की भूरि–भूरि प्रशंसा की। प्रसिद्ध जर्मन उपन्यासकार जैराट हॉपर्ट ने उस पर एक उपन्यास लिखा। इसके अतिरिक्त 'दि आर्मलेस मैन' नामक उस पर एक फिल्म भी बनी, जिसमें उसकी खूबियों को भली प्रकार प्रदर्शित किया गया था।

दुनिया में कितने ही ऐसे व्यक्ति हुए हैं, जिन्हें अपंग तो नहीं कहा जा सकता पर उनको सामान्य कहना भी अनुचित होगा। ऐसे लोग सर्व–साधारण की तरह जीते रहे यह बात और है, लेकिन शरीर से वे अद्‌भुत और असाधारण थे।

फ्रैंक लैंटिनी ऐसा ही एक व्यक्ति था। वह सिसली के रोजोलिनी कस्बे में पैदा हुआ। वैसे तो वह एक साधारण इन्सान की ही तरह था, पर पीठ से जुड़ी अतिरिक्त टाँग उसे असाधारण के दर्जे में पहुँचा देती थी। उसके जन्म के पश्चात् उसके पिता आ गए। उसने 'बर्नम एण्ड बेली' तथा 'रिंगलिंग ब्रदर्स' जैसी कई प्रसिद्ध सर्कस कंपनियों में काम किया। वहाँ वह इस तीसरे पैर का इस्तेमाल कई प्रकार के करतब दिखाने में करता था। वह तीन टाँगों का स्टूल बनाकर आसानी से बैठ सकता था। तीसरे पैर से फुटबाल में किक लगा सकता था। उसे साइकिल चलाने में भी कोई परेशानी नहीं होती थी। साधारण मनुष्य की तरह वह चल–दौड़ भी सकता था किन्तु इसमें उसे पीछे के अतिरिक्त पैर की सहायता नहीं मिलती, कारण कि वह कुछ छोटा था।

वैसें तो उसकी टाँग पैसा कमाने का अच्छा स्रोत साबित हुई पर इस प्रकार के प्रदर्शन को फ्रैंक पसंद नहीं करता था। वह किसी और स्रोत के माध्यम से साधारण आदमी की तरह धन कमाना चाहता था। उसकी तीसरी टाँग इसमें बाधक थी इसीलिए उसने उसे कटवाने का निश्चय किया। इस सिलसिले में जब वह अपने पिता के साथ डॉक्टरों से मिला तो उन्होंने जान जोखिम की बात कहते हुए ऐसा करने से इंकार कर दिया। फ्रैंक बहुत निराश हुआ। इसी बीच एक दिन उसे अपाहिजों के एक अस्पताल में जाने का मौका मिला। वहाँ उसने जो कुछ देखा उससे उसका दृष्टिकोण ही बदल गया। वहाँ उसने देखा कि अंधे,

लूले लँगड़े सब मस्तीपूर्वक अपने काम में व्यस्त हैं। किसी को भी अपनी अपंगता की शिकायत नहीं। सभी के चेहरों पर प्रसन्नता थी। इस दृश्य से फ्रैंक को एक नई दृष्टि मिली। उसने अब भाग्य का रोना बंद कर दिया। बाद में उसने विवाह किया और उसके दो बच्चे भी हुए।

लेजारस जोनस बैपटिस्टा कॉलोरेडो दो शरीरों वाले एक स्विस व्यक्ति का नाम था, जिसका जन्म जेनेवा में हुआ था। इस विचित्र इनसान के दो सिर थे। एक अविकसित देह पूर्ण विकसित शरीर के साथ जुड़ी हुई थी, इसलिए माता–पिता ने दोनों के पृथक–पृथक नाम रखे। पूर्ण विकसित शरीर धारी बेटे का नाम लेजारस रखा गया, जबकि साथ जुड़े अपूर्ण अंगों वाले पुत्र को जोनस बैपटिस्टा के नाम से पुकारा जाता। बैपटिस्टा के केवल एक टाँग थी। भुजाएँ दो थीं, पर उनमें मात्र तीन–तीन अँगुलियां थीं। जब कोई उसकी छाती को धीरे–धीरे थपथपाता, तो प्रत्युत्तर में वह अपने हाथ और होंठों को हिला देता। वह बोल नहीं पाता था, किंतु सब कुछ सुन और समझ सकता था। उसे भोजन की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। लेजारस द्वारा लिये गये आहार से ही उसका काम चल जाता था। बैपटिस्टा का सिर तो पूर्ण विकसित था किंतु आँखें बंद थीं। उसका सिर बालयुक्त था और ठुड्डी में दाढ़ी भी थी, जननेन्द्रिय अल्प विकसित थीं। जबकि लेजारस हर प्रकार से स्वस्थ–सामान्य था। उसकी विनोदप्रियता के कारण हर समय उसके निकट भीड़ जमा रहती थी। सामान्य इनसान की तरह उसने जिंदगी गुजारी।

कलकत्ता में सन् 1783 में एक दो सिर वाले बच्चे का जन्म हुआ। उसके दोनों सिर अगल–बगल न होकर एक–दूसरे के ऊपर थे। उस समय के प्रसिद्ध अंग्रेज शरीर विज्ञानी जॉनहण्टर ने उसका विस्तृत अध्ययन किया था और उसे एकदम सामान्य बताया था। उसके दोनों सिरों में आँखें थीं, पर आँसू केवल ऊपर वाले सिर की आँखों से बहते थे। दो वर्ष की उम्र में साँप काट लेने से उसकी मृत्यु हो गई। आज भी उसकी दोनों खोपड़ियाँ लंदन के 'रॉयल कॉलेज ऑफ सर्जरी' में सुरक्षित हैं।

अपंगता का अभिशाप कष्टदायक है, यह सच है कि हमारी निजी सोच उसे और कष्टदायक बना देती है यह भी गलत नहीं है। अपाहिज व्यक्ति यह मान बैठता है कि वह किसी काम का नहीं उसका जीवन निरर्थक है। इसमें उसकी शारीरिक अक्षमता की तुलना में मानसिक हताशा ही अधिक झलकती है। मन यदि कमजोर हुआ तो शरीर बल से समर्थ व्यक्ति भी किसी कार्य को कर पाने में असफल साबित होता है।

इसके विपरीत देह दुबली हो, त्रुटिपूर्ण अथवा अपूर्ण हो लेकिन मनोबल और उत्साह अपने चरम पर हो तो शारीरिक कमी भी कार्य की सफलता में बाधा उत्पन्न नहीं कर पाती और कठिन–से–कठिन काम सरल प्रतीत होने लगते हैं, इसलिए शारीरिक पूर्णता की तुलना में हमें मानसिक समर्थता पर अधिक भरोसा करना चाहिए।

बहुत कुछ घटता रहता है। हम उसे सामान्य परिस्थिति मानते हैं। बातें और घटनाएं मन–मस्तिष्क के किसी कोने में छिप कर बैठ जाती हैं। अकसर उभरती हैं और मन को विचलित कर जाती हैं। फिर कहीं छिप जाती हैं। व्यक्ति को लगता है कि कोई उसे रोकने या नुकसान पहुंचाने की कोशिश कर रहा है। व्यक्ति को लगता है कि 'वह' मेरे बारे में बात कर रहा है! इसी आधार पर वह मानस बनाता है और व्यवहार करने लगता है। मन में बैठी बात तनाव में बदल जाती है। जीवन में फिर कोई घटना घटती है और व्यक्ति उस घटना से अपने मन से जोड ले तो यह तनाव अवसाद में बदल जाता है। मुझे लगता है कि मेरा साथी या परिजन मेरे मुताबिक व्यवहार नहीं कर रहा है। मेरे भीतर कुछ खलबलाने लगता है या तो मुझे गुस्सा आता है या फिर मैं मन में बातें दबाने लगता हूं।

व्यक्ति सोचता है कि आने वाले कल में क्या होगा? व्यापार या उद्यम चलेगा या नहीं? मंदी तो नहीं आ जाएगी? आय कम हो गई तो मैं परिवार की जरूरतें कैसे पूरी करूंगा या कर्ज की किश्तें कैसे चुकाऊंगा? ऐसे विचार हमेशा के लिए मन में आ गये तो क्या होगा ?

गर्भावस्था के दौरान महिलाओं के शरीर ही नहीं बल्कि मन में भी बहुत बोझ होता है। उन पर सामाजिक मान्यताओं और रूढ़ियों को मानने का दबाव होता है तो वहीं दूसरी तरफ सम्मानजनक व्यवहार, देखरेख और भोजन न मिलने के कारण भ्रूण के विकास पर भी गहरा असर पड़ता है। प्रसव शारीरिक रूप से बहुत पीड़ादायक होता है। बताते हैं, प्रसव के समय 20 हड्डियां टूटने के बराबर का दर्द होता है। जब ऐसे में संवेदनशील व्यवहार नहीं मिलता और उनकी पीड़ा को महसूस करने की कोशिश नहीं की जाती है तो वह अवसाद में चली जाती हैं। मजदूर को जब काम के बदले मजदूरी नहीं मिलती है या जब किसान की फसल खराब हो जाती है, तब वह संरक्षण और उपेक्षा के कारण अवसाद में चला जाता है। रिश्तों से लेकर, पढ़ाई–लिखाई, नौकरी, व्यापार, परीक्षा के परिणाम, सामाजिक–आर्थिक असुरक्षा, काम के दौरान अच्छा प्रदर्शन न कर पाना हमारे रोजमर्रा के जीवन की घटनाएं हैं, जिन पर मन में बातें चलती रहती हैं। उन बातों को बाहर न निकाला जाए तो पहले वे हमारे व्यवहार पर असर डालती हैं और फिर व्यक्तित्व का हिस्सा बन जाती हैं। व्यक्ति में यह

अपेक्षा कुछ ज्यादा ही गहरी हो सकती है कि दूसरे व्यक्ति मेरे बारे में अच्छी–अच्छी बात करें मेरा विशेष घ्यान रखें। ऐसा न होने पर व्यक्ति दूसरों की संवेदना हासिल करने के लिए स्वयं को निरीह और बहुत दुखी 'साबित' करने में जुटा रहता है। यह उसके व्यक्तित्व को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

जीवन में कुछ ऐसे अनुभव हो जाते हैं जो हमें भीतर से बहुत असुरक्षित और भयभीत बना देते है जैसे कहीं मेरा वाहन दुर्घटनाग्रस्त तो नहीं हो जाएगा, ट्रेन तो नहीं छूट जाएगी या कहीं पैसे तो चोरी नहीं हो जाएंगे? मन के अन्दर की बातें जब तक बाहर नहीं आती हैं या जब मन की गढ़ी हुई बातों पर संवाद नहीं होता है या सही परामर्श नहीं मिल पाता है, तो वह अवसाद (यानी डिप्रेशन) का रूप ले लेती है।

राष्ट्रीय अपराध अनुसंधान ब्यूरो (एनसीआरबी) द्वारा हाल में जारी आंकड़ों से पता चला कि एक वर्ष में भारत में पैरालिसिस और मानसिक रोगों से प्रभावित 8409 व्यक्तियों ने आत्महत्या की।

अवसाद मानसिक रोगों का एक रूप है। मानसिक रोग कोई एक अकेला रोग नहीं है। ये ऐसी स्थितियां या रोग हैं, जिसका असर हमारे व्यवहार, व्यक्तित्व, सोचने और विचार करने की क्षमता, आत्मविश्वास, सम्बंधों पर पड़ता है। मानसिक रोगों में मुख्य रूप से शामिल हैं – वृहद अवसादग्रस्तता (मेजर डिप्रेसिव डिसऑर्डर), एकाग्रताविहीन सक्रियता का विकार (अटेंशन डेफिसिट हायपरएक्टिव डिसऑर्डर), व्यवहार सम्बंधी विकार, ऑटिज्म, नशीले पदार्थों पर निर्भरता, भय, उन्माद, बहुत चिंता होने का विकार (एंजायटी), स्मृतिभ्रंश (डिमेंशिया), मिर्गी, शिजोफ्रेनिया, मानसिक कष्ट (डिस्थीमिया)। शोध पत्रिका दी लैंसेट ने हाल ही में भारत और चीन में मानसिक स्वास्थ्य की स्थिति और उपचार–प्रबंधन की व्यवस्था पर शोध पत्रों की श्रृंखला प्रकाशित की। इसके अनुसार इन दोनों देशों में मानसिक बीमारियां अगले दस वर्षों में बहुत तेजी से बढ़ेंगी। वर्तमान में ही दुनिया के 32 प्रतिशत मनोरोगी इन दो देशों में हैं।

दुःखद बात यह है कि अध्यात्म में विश्वास रखने वाला समाज अवसाद, व्यवहार में हिंसा, तनाव, स्मरण शक्ति के ह्रास, व्यक्तित्व में चरम बदलाव, नशे की बढ़ती प्रवृत्ति के संकट को पहचान ही नहीं पा रहा है। हम तनाव और अवसाद या व्यवहार में बड़े बदलावों को जीवन का सामान्य व्यवहार क्यों मान लेते हैं जबकि यह बदलाव खतरे के बड़े संकेत हैं?

भारत में आर्थिक विकास ने हमें मानसिक रोगों का उपहार दिया है। वर्ष 1990 में भारत में 3 प्रतिशत व्यक्ति किसी तरह के मानसिक रोगी होते थे और व्यक्ति गंभीर नशे की लत से प्रभावित थे। यह प्रतिशत वर्ष 2013 में बढ़ कर दुगुना हो गया। भारत में 3000 मनोचिकित्सक हैं, जबकि आवश्यकता लगभग 12 हजार की और है। यहां केवल 500 नैदानिक मनोवैज्ञानिक हैं, जबकि 17,259 की आवश्यकता है। 23,000 मनोचिकित्सा सामाजिक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है, जबकि 4000 ही उपलब्ध हैं।

मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं को सामान्य जन स्वास्थ्य सेवाओं से जोड़ कर देखने की आवश्यकता है। विशेष मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की जरूरत विशेष और गंभीर स्थितियों में ही होती है। अनुभव बताते हैं कि मानसिक स्वास्थ्य की नीति बनाने में अक्सर गंभीर विकारों (जैसे शिजोफ्रेनिया) को प्राथमिकता दी जाती है और आम मानसिक बीमारियों (जैसे अवसाद और उन्माद) को नजरअंदाज किया जाता है, जबकि ये सामान्य मानसिक रोग ही समाज को ज्यादा प्रभावित करते हैं। अवसाद और उन्माद के गहरे सामाजिक–आर्थिक प्रभाव पड़ते हैं। अतः आवश्यकता है कि बड़े–बड़े चमकदार निजी अस्पतालों के स्थान पर समुदाय केंद्रित मानसिक स्वास्थ्य केन्द्र की व्यवस्था की जाये।

हमारे यहां मानसिक रोगों के शिकार दस में से 1 व्यक्ति ही उपचार की तलाश करता है। शेष को सही मानसिक स्वास्थ्य सेवाएं न मिलने के कारण उनकी समस्या गहराती जाती है। भारत में इस तरह की समस्याओं के प्रति अपमानजनक नकारात्मक भाव रहा है। जैसे ही यह पता चलता है कि व्यक्ति किसी मनोचिकित्सक या स्नायु रोग चिकित्सक के पास गया है, तो उसे भेदभावजनक व्यवहार का सामना करना पडता है। हमारे यहां अविलम्ब ऐसे व्यक्ति को पागल घोषित कर दिया जाता है जिसे या तो पागलखाने भेज दिया जाता है या फिर रस्सियों से बांध कर रखा जता है। यह न भी हो तो सामान्य पारिवारिक और सामाजिक जीवन से उसे पूरी तरह से बहिष्कृत कर दिया जाता है। इनमें भी महिलाओं की स्थिति लगभग नारकीय बना कर रख दी गई है।

भारत में जो भी व्यक्ति मानसिक रोग के लिए परामर्श लेना चाहता है, उसे कम से कम दस किलोमीटर की यात्रा करनी होती है। 90 प्रतिशत को तो इलाज ही नसीब नहीं होता। मानसिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण से पता चला है कि गंभीर और तीव्र मानसिक विकारों से प्रभावित 99 प्रतिशत भारतीय देखभाल और उपचार को आवश्यक ही नहीं मानते।

भारत में 3.1 लाख की जनसंख्या पर एक मनोचिकित्सक है। इनमें से भी 80 प्रतिशत महानगरों और बड़े शहरों में केंद्रित हैं। अर्थात ग्रामीण व्यक्तियों के लिए दस लाख

पर एक ही मनोचिकित्सक है। हमारे स्वास्थ्य के कुल बजट में से डेढ़ प्रतिशत से भी कम राशि का व्यय मानसिक स्वास्थ्य के लिए होता है। 650 से ज्यादा जिलों वाले देश में अब तक कुल 443 मानसिक रोग अस्पताल हैं। उत्तर–पूर्वी राज्यों, जिनकी जनसंख्या लगभग 6 करोड़ है, में एक भी मानसिक स्वास्थ्य केंद्र नहीं है।

लैंसेट के अध्ययन से पता चलता है कि भारत में लगभग 70 प्रतिशत मानसिक चिकित्सकीय परामर्श और 60 प्रतिशत उपचार निजी क्षेत्र में होता है। तथ्य यह है कि डिमेंशिया से प्रभावित व्यक्ति की देखभाल की लागत उसके परिवार को 61,967 रुपए पड़ती है। क्या ऐसे में व्यक्ति निजी सेवा वहन कर सकते हैं? वैसे भारत में इस विषय पर बहुत विश्वसनीय अध्ययन और जानकारियां भी उपलब्ध नहीं है, जिनसे उनकी गंभीरता सामने नहीं आ पाती है।

भारत में मनोचिकित्सकों की 77 प्रतिशत, नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की 97 प्रतिशत और मानसिक स्वास्थ्य सामाजिक कार्यकर्ताओं की 90 प्रतिशत कमी है। 15 वर्षों में मानसिक–स्नायु रोगों के कारण 1,26,166 लोगों ने आत्महत्या की। 99 प्रतिशत मानसिक रोगी उपचार को आवश्यक नहीं मानते हैं।

एक बड़ी समस्या यह है कि मानसिक स्वास्थ्य की व्यवस्था में दवाइयों से उपचार पर ज्याादा ध्यान दिया जा रहा है, जबकि वास्तव में परामर्श, समझ विकास, समाज में पुनर्वास, मानसिक स्वास्थ्य शिक्षा पर सबसे ज्यादा पहल की जरूरत है। भारत में वर्ष 1997 में सर्वोच्च न्यायालय के दखल के बाद से इस विषय पर थोड़ी बहुत चर्चा होना जरूर शुरू हुई किन्तु समाज आधारित मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम एक हकीकत नहीं बन पाया है। देश में वर्ष 2014 में मानसिक स्वास्थ्य नीति बनी और इसके साथ ही मानसिक स्वास्थ्य देखभाल विधेयक, 2013 संसद में आया। यह विधेयक भी मानसिक रोगियों के साथ होने वाले दुरयव्यवहार और हिंसा को लेकर बहुत स्पष्ट व्यवस्था नहीं देता। उनका पुनर्वास भी एक चुनौती है। चूंकि भारत में स्वास्थ्य शिक्षा पर सरकारें बहुत ध्यान नहीं देती हैं, इसलिए मानसिक स्वास्थ्य शिक्षा पर काम नहीं हुआ। इसी कारण यह माना जाने लगा है कि मानसिक रोग से प्रभावित हर व्यक्ति को अस्पताल में भर्ती कराने की आवश्यकता होती है, जबकि यह सही नहीं है। अध्ययन बताते हैं कि 2000 रोगियों में से एक को ही अस्पताल सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है।

वास्तव में मानसिक रोगों और अस्वस्थता के प्रति समाज और सरकार का दृष्टिकोण क्या है, इसका अंदाजा हमें कुछ तथ्यों से पता चल जाता है। मानसिक रोगी को

निःशक्तजन की श्रेणी में रखा जाता है। और कहा जाता है कि निःशक्तजन परिवार–समाज पर बोझ होते हैं। बात मानसिक बीमारी की हो तो संकट और बढ़ जाता है। जनगणना में परिवार से पूछा जाता है कि क्या उनके यहां कोई मानसिक रूप से विक्षिप्त व्यक्ति या मानसिक रोगी है। स्वाभाविक है कि कोई यह स्वीकार नहीं करना चाहता है इसलिए सच सामने नहीं आ पाता।

लैंसेट के अध्ययन से कि भारत में वर्ष 1990 में विभिन्न मानसिक रोगों से प्रभावित और गंभीर नशे से प्रभावित लोगों की संख्या 10.88 करोड़ थी जो वर्ष 2013 में बढ़ कर 16. 92 करोड़ हो गई। इस अवधि में भारत में डिमेंशिया प्रभावित लोगों की संख्या में 92 प्रतिशत और डिसथीमिया से प्रभावित लोगों की संख्या में 67 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। गंभीर अवसाद से प्रभावित 59 प्रतिशत बढ़े हैं। यह आंकड़े दर्शाते हैं कि माहौल और व्यवहार का हमारे व्यक्तित्व पर कितना गहरा असर पड़ रहा है और हम परामर्श और संवाद सम्बन्धी बुनियादी व्यवस्थाएं नहीं बना पा रहे हैं।

हर वर्ष बजट में निःशक्तजनों के लिए भारी सहायता राशि की घोषणा की जाती है. कागज पर योजनाएं एवं सुविधाएं उकेरी जाती हैं, लेकिन अभी तक कोई भी तंत्र उन्हें मौलिक अधिकार एवं सुविधाएं नहीं दे सका है।

हमारे समाज में निःशक्तता खोखली संवेदनाओं का केंद्र बन कर रह गई है। निःशक्तजनों से तो सभी सहानुभूति रखते हैं लेकिन उन्हें दोयम दर्जे का व्यक्तित्व मानते हैं। बेचारे, पंगु, निर्बल, जाने कितने संवेदनासूचक शब्दों से हम उन्हें पुकारते हैं। कितनी सरकारी योजनाएं बन गयी लेकिन क्या दिव्यांगों को हम सबल बना पाए हैं? क्या उन को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ कर राष्ट्र निर्माण में उन का योगदान ले पाए हैं, शायद नहीं। इसके जिम्मेदार हम सभी हैं। दिव्यांगों के अधिकारों को आवाज देता 'संयुक्त राष्ट्र दिव्यांगता समझौता' विश्वव्यापी मानवाधिकार समझौता है। यह समझौता स्पष्ट रूप से दिव्यांगों के अधिकारों एवं विभिन्न देशों की सरकारों द्वारा निर्बाध रूप से दिव्यांगों के पुनर्वास एवं उन्हें बेहतर सुविधाएं प्रदान करने की पैरवी करता है।

देश की संसद ने दिव्यांगों के पुनर्वास एवं उन्हें देश की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए निःशक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण, पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 अधिनियम पारित किया। स्वाभाविक तौर पर निःशक्त व्यक्तियों के अधिकारों को प्रतिपादित करते हुए भारत ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के 'राइट्स औफ पर्सन्स विद डिस्एबिलिटीज' कन्वैंशन में कही गई बातों को 2007 में स्वीकार किया और निःशक्तजनों के लिए बने अधिनियम 1995

को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा पारित कन्वैंशन जिस पर 2008 में अमल शुरू हुआ, के आधार पर बदलने की बात कही।

वर्तमान में लगभग 40 कंपनियां निःशक्तजनों को नौकरियां दे रही हैं। गैर सरकारी संस्थानों की यह पहल निश्चित रूप से निःशक्तजनों के जीवन में नए रंग भर सकती है। आज आवश्यकता है निःशक्तजनों को समान अधिकार देने की व सम्मानपूर्वक जीवन की मुख्यधारा से जोड़ने की ताकि वे देश निर्माण में अपना योगदान दे सकें।

समाज और सरकारी तंत्र निःशक्तजनों के प्रति असंवेदनशील है. शिक्षा एवं रोजगार ही दिव्यांगता से लड़ने के मुख्य अस्त्र हैं किंतु इन दोनों की स्थिति इतनी दयनीय है कि निःशक्त व्यक्ति का आत्मबल दम तोड़ देता है। निःशक्तजनों को अब दिव्यांग कहा जाने लगा है, लेकिन इस सम्मानजनक संबोधन से उनकी समस्याओं में कोई कमी नहीं आयी है। अधिकतर सार्वजनिक स्थानों पर उनके लिए जरूरी सुविधाओं का अभाव है।

भारत में ढाई करोड़ से कुछ अधिक लोग निःशक्तता से जूझ रहे हैं। इतनी बड़ी संख्या होने के बावजूद इनकी परेशानियों को समझने और उन्हें जरूरी सहयोग देने में सरकार और समाज दोनों नाकाम दिखाई देते हैं। देश में हुए एक सर्वे से सामने आया है कि अधिकांश सार्वजनिक स्थलों पर सुविधाओं के लिहाज से निःशक्तजनों को जीवन किसी चुनौती से कम नहीं है।

निःशक्तजन को न्यूनतम आवश्यक सुविधाएं सार्वजानिक स्थलों पर होनी चाहिए, उसका अभाव लगभग सभी शहरों में है। अस्पताल, शिक्षा संस्थान, पुलिस स्टेशन जैसे स्थलों पर भी उनके लिए टॉयलेट या व्हील चेयर नहीं हैं। गैर सरकारी संस्था ''स्वयं फाउंडेशन'' ने देश के आठ शहरों में किये अपने सर्वे में पाया कि सार्वजानिक स्थलों पर जो सुविधाएं निःशक्तजनों के लिए होनी चाहिये वह नहीं हैं।

1968 में जन्मीं रुसीदाह बदावी कोई सामान्य फोटोग्राफर नहीं हैं। उनके पास ना उंगलियां हैं ना हथेलियां। लेकिन वह फोटोग्राफी करती हैं।

एक्सेसिबल इंडिया कैंपेन यानी 'सुगम्य भारत अभियान' के तहत किए गये एक सर्वे में मुंबई के 51 सार्वजनिक स्थानों की पड़ताल की गयी. लगभग अस्सी प्रतिशत स्थानों पर रैम्प नहीं पाया गया। इस सर्वे में शामिल किसी भी बिल्डिंग में निःशक्तजनों के लिए अलग से पार्किंग की व्यवस्था नहीं थी। जबकि अधिकतर बिल्डिंग में निर्धारित मानकों के अनुसार निःशक्तजनों के लिए शौचालय तक नहीं पाया गया। मुंबई के अलावा चंडीगढ़, दिल्ली, फरीदाबाद, देहरादून, गुरुग्राम, जयपुर और वाराणसी में भी इस तरह के सर्वे किये गये।

स्वयं फाउंडेशन के सानू नायर के अनुसार इन सभी शहरों में स्थिति लगभग एक जैसी ही है।

एक्सेसिबल इंडिया कैंपेन के जरिये सरकार निःशक्तजनों के लिए सक्षम और बाधारहित वातावरण तैयार करने पर जोर दे रही है। इस अभियान के तहत जुलाई 2019 तक राष्ट्रीय राजधानी और राज्य की राजधानियों की कम से कम 50 सरकारी इमारतों को निःशक्तजनों के लिए 'पूरी तरह उपयोग' लायक बनाया जाएगा। परिवहन प्रणाली में सुगम्यता और ज्ञान तथा सूचना संचार तकनीकी पारिस्थितिकी तंत्र में निःशक्तजनों की पहुंच को लक्ष्य बनाया गया है।

दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग के अनुसार भवनों को पूरी तरह सुगम्य बनाने के लिए 31 शहरों के 1098 भवनों में से 1092 भवनों की जांच का कार्य पहले ही पूरा हो चुका है। निःशक्तजनों के लिए विशेष व सुगम शौचालय का डिजाइन बना कर राज्यों को भेजा जा रहा है। इसके तहत पानी की उपलब्धता, दरवाजे, कमोड की उंचाई, पकड़ने के लिए दोनों तरफ रॉड, स्वच्छ टोंटी तथा नल वाश बेसिन व हवादार तथा प्रकाश जैसे मानक बनाये गये हैं. इसी के आधार पर पूरे देश भर में शौचालय बनाये जायेंगे।

आधुनिक होने का दावा करने वाला समाज अब तक निःशक्तजनों के प्रति अपनी बुनियादी सोच में कोई खास परिवर्तन नहीं ला पाया है। अधिकतर लोगों के मन में निःशक्तजनों के प्रति तिरस्कार या दया भाव ही रहता है, यह दोनों भाव निःशक्तजनों के स्वाभिमान पर चोट करते हैं। शारीरिक रूप से असक्षम के लिए काम करने वाले किशोर गोहिल कहलाते हैं। दिव्यांग कह देने से इनके जीवन में कोई बदलाव नहीं आया यह केवल छलावा है। उनका कहना है, 'हमें इंसान ही समझ लो वही काफी है।

हाल के वर्षों में निःशक्तजनों के प्रति सरकार की कोशिशों में तेजी आयी है। निःशक्तजनों को कुछ न्यूनतम सुविधाएं देने के लिए प्रयास हो रहे हैं या कम से कम प्रयास होते हुए दिख रहे हैं। वैसे योजनाओं के क्रियान्वयन को लेकर सरकार पर सवाल उठते रहे हैं। पिछले दिनों क्रियान्वयन की धीमी गति को लेकर सुप्रीम कोर्ट ने सरकार को फटकार लगायी है।

निःशक्तजनों को शिक्षा से जोड़ना बहुत जरूरी है। इस वर्ग के लिए खासतौर पर मूक–बधिरों के लिए विशेष स्कूलों का अभाव है जिसकी वजह से अधिकांश निःशक्तजन ठीक से पढ़–लिखकर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं बन पाते। किशोर गोहिल का मानना है कि निःशक्तजनों को अवसर प्रदान करना या उन पर निवेश करना घाटे का सौदा नहीं है

बल्कि इससे देश की अर्थव्यवस्था भी मजबूत होगी। समावेशन शब्द का अपने आप में कुछ खास अर्थ नहीं होता है। समावेशन के चारों ओर जो वैचारिक, दार्शनिक, सामाजिक और शैक्षिक ढ़ाँचा होता है वही समावेशन को परिभाषित करता है। समावेशन की प्रक्रिया में बच्चे को न केवल लोकतंत्र की भागीदारी के लिए सक्षम बनाया जाता है, बल्कि यह सीखने एवं विश्वास करने के लिए भी सक्षम बनाया जाता है कि लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए दूसरों के साथ रिश्ते बनाना, अंतःक्रिया करना भी समान रूप से महत्वपूर्ण है।[2]

स्वतंत्रता के बाद शिक्षा प्रणाली की क्या उपलब्धि रही है, यदि हम इस ओर ध्यान दें तो संभवतः हमें कुछ संतोषजनक आंकड़े मिलेंगे। आज भारत की विद्यालय शिक्षा व्यवस्था चीन के पश्चात् विश्व की दूसरी सबसे बड़ी शिक्षा व्यवस्था है । जहाँ लगभग 10 लाख स्कूलों में 2025 लाख बच्चों को पढ़ाने का काम लगभग 55 लाख शिक्षक कर रहे हैं। 82 प्रतिशत रिहाइशी क्षेत्रों में एक किलोमीटर की परिधि के अन्दर प्राथमिक और 75 प्रतिशत रिहाइशी क्षेत्रों में तीन किलोमीटर के अंदर उच्च प्राथमिक विद्यालय हैं। माध्यमिक स्तर की परीक्षा में भाग लेने वाले बच्चों में कम से कम 50 प्रतिशत बच्चे परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं। इन सबके पश्चात् भी वर्तमान में लाखों बालक शिक्षा की मुख्यधारा से वंचित है। बावजूद इसके आज भी हमारें विद्यालय ऐसे बालकों के लिए साधनहीन नजर आते है जिनकी विभिन्न ज्ञानेन्द्रिय, शारीरिक , बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक कारणों के कारण कुछ विशिष्ट शैक्षणिक आवश्यकतायें है।

वर्तमान में विशिष्ट शैक्षणिक आवश्यकताओं वाले बालकों के लिए शिक्षा की दो प्रकार की व्यवस्थाएं है। एक वह जिन्हे हम विशेष विद्यालय कहते है, जो ज्यादातर शहरों मे स्थित आवासीय है। जिनका उदेद्श्य केवल एक प्रकार के विशिष्ट बालकों की विशिष्ट शैक्षणिक आवश्यकताओं को पूरा करना होता है। और दूसरा तरीका है कि उन्हे अन्य सभी बालकों के साथ आस–पड़ोस के सामान्य विद्यालय में भेजा जाये और वही उनकी विशिष्ट शैक्षणिक आवश्यकताओं को पूरा करने की व्यवस्था की जायें। यदि बालक इस प्रकार के विद्यालय में जाता है तो वह अपने अन्य भाई बहनों के समान अपने माँ बाप के साथ रह सकता है। दूसरा इस प्रकार के विद्यालयों में सभी बालक एक दूसरे से मिलजुल कर एक दूसरे से सीख सकते है। इसके अलावा बालक को बाद में अपने आपको समाज में समायोजित करने में सहायता मिलती है क्योंकि आखिरकार उसको रहना तो उसको उसी समाज में है जिसका कि वह हिस्सा है इसलिए क्यों न बालक को प्रारम्भ से ही उस माहौल में रखा जाये जहाँ उसे विद्यालय की शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् रहना है? इसलिए अच्छा है कि आरम्भ से बालक को मुख्यधारा वाले ऐसे विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजा जाये

जहाँ अन्य सामान्य बालक भी जाते है। इस अवधारणा के साथ समावेशी शिक्षा व्यवस्था प्रणाली का आरम्भ हुआ।

समावेशी शिक्षा से तात्पर्य ऐसी शिक्षा प्रणाली से है जिसमें प्रत्येक बालक को चाहे वो विशिष्ट हो या सामान्य बिना किसी भेदभाव के एक साथ एक ही विद्यालय में सभी आवश्यक तकनीकों व सामग्रियों के साथ उनकी सीखने सीखाने के आवश्यकताओं को पूरा किया जायें। समावेशित शिक्षा कक्षा में विविधताओं को स्वीकार करने की एक मनोवृत्ति है जिसके अन्तर्गत विविध क्षमताओं वाले बालक सामान्य शिक्षा प्रणाली में एक साथ अध्ययन करते है। समावेशित शिक्षा के दर्शन के अन्तर्गत प्रत्येक बालक अद्वितीय है और उसे अपने सहपाठियों की भाँति विकसित करने के लिए कक्षा में विविध प्रकार के शिक्षण की आवश्यकता हो सकती है। बालक के पीछे रह जाने के लिए उसे दोषी नही ठहराया जा सकता है, बल्कि उन्हें कक्षा में भली प्रकार समाहित न कर पाने का जिम्मेदार अध्यापक को स्वंय समझना चाहिए।[3]

जिस प्रकार हमारा संविधान किसी भी आधार पर किये जाने वाले भेदभाव को निषेध करता है, उसी प्रकार समावेशित शिक्षा विभिन्न ज्ञानेन्द्रिय, शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक आदि कारणों से उत्पन्न किसी बालक की, विशिष्ट शैक्षणिक आवश्यकताओं के बावजूद उन बालकों को भिन्न देखे जाने के बजाए स्वंत्रत अधिगम कर्ताओं के रूप में देखती है। समावेशित शिक्षा प्रत्येक बालक के लिए उच्च और उचित उम्मीदों के साथ, उनकी व्यक्तिगत शक्तियों का विकास करती है। प्रत्येक बालक स्वाभाविक रूप से सीखने के लिए अभिप्रेरित होता है। समावेशित शिक्षा अन्य बालकों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं और क्षमताओं में सामंजस्य स्थापित करने में सहयोग करती है।

समावेशी शिक्षा सम्मान और अपनेपन का विद्यालय की संस्कृति के साथ–साथ व्यक्तिगत मतभेदों को भुलाकर अवसर प्रदान करती है। समावेशी शिक्षा बालक को अन्य बालकों के समान कक्षा गतिविधियों में भाग लेने और व्यक्तिगत लक्ष्यों पर कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करती है । समावेशित शिक्षा बालकों की शिक्षा गतिविधियों में उनके माता–पिता को भी सम्मिलित करने की भी पक्षधर है।[4]

समावेशित शिक्षा सही मायनों में शिक्षा का अधिकार जैसे शब्दों का रूपान्तरित रूप है जिसके कई उद्देश्यों में से एक उद्देश्य है, विशिष्ट शैक्षणिक आवश्यकताओं वाले बालकों को एक समतामूलक शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षा प्राप्त करने के अवसर प्रदान करना। समावेशित शिक्षा समाज के सभी बालकों को शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ने का समर्थन

करती है। प्रत्येक बालक स्वाभाविक रूप से सीखने के लिए अभिप्रेरित होता है। बालकों के सीखने के तौर तरीकों में विविधता होती है। अनुभवों के द्वारा, अनुकरण के माध्यम से, चर्चा, प्रश्न पूछना, सुनना, चिंतन मनन, खेल क्रियाकलापों, छोटे व बड़े समूहों में गतिविधियां करना आदि तरीकों के माध्यम से बालक अपने आसपास के परिवेश के बारे में जानकारी प्राप्त करता है। इसलिए प्रत्येक बालक को सीखने–सिखाने के क्रम में समुचित अवसर प्रदान करना आवश्यक है। बालकों को सीखने से पूर्व सीखने–सिखाने के लिए तैयार करना आवश्यक होता है इसके लिए सकारात्मक वातावरण निर्मित करने की आवश्यकता होती है। बालक उन्हीं सीखी हुई बातों के साथ अपना संबंध स्थापित कर पाता है जिनके बारे में उसके अपने परिवेश के कारण भली–भाँति समझ विकसित हो चुकी हो। सीखने की प्रक्रिया विद्यालय के साथ साथ विद्यालय के बाहर भी निरन्तर चलती रहती है। अतः सिखने–सीखाने की प्रक्रिया को इस प्रकार व्यवस्थित किये जाने की आवश्यकता है जिससे बालक पूर्ण रूप से उसमें सम्मिलित हो जाये और उसके बारे में अपने आधार पर अपनी समझ विकसित करें। सीखने–सिखाने की प्रक्रिया आरम्भ करने से पूर्व बालक के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, भौगौलिक व राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को जानना एवं प्रत्येक बालक की विविधता के प्रति आदर रखना आवश्यक है।

बालकों की शिक्षा चाहे वह किसी भी स्तर की हो, उसमें विद्यालय के वातावरण का बहुत योगदान होता है। विद्यालय का वातावरण ही कुछ बातों की शिक्षा बालकों को स्वंय भी दे देता है। समावेशित शिक्षा के लिए यह आवश्यक है कि विद्यालय का वातावरण सुखद और स्वीकार्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त विद्यालय में विशिष्ट बालकों की विशिष्ट शैक्षणिक आवश्यकता की पूर्ति हेतु आवश्यक साज सामान शैक्षणिक सहायताओं, उपकरणों, संसाधनों, भवन आदि का समुचित प्रबंधन आवश्यक है। बिना इनके विद्यालय में समावेशित माहौल बनाने में कठिनाई हो सकती है।[5]

समावेशित शिक्षा की मूल भावना है एक ऐसा विद्यालय जहाँ सभी बालक एक साथ शिक्षा प्राप्त करते है, समावेशित शिक्षा के उद्देश्यों को सभी बालकों तक पहुचाने के लिए यह आवश्यक है कि विद्यालय में प्रवेश की नीति में परिवर्तन किया जाना चाहिए । हालाँकि शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 इस सन्दर्भ में एक प्रभावी कदम कहा जा सकता है परन्तु धरातल पर इसकी वास्तविकता में अभी भी संदेह होता है ।

बालकों को शिक्षित करने का सबसे प्रभावी तरीका है कि उन्हे खेलने के तरीकों तथा गतिविधियों के माध्यम से सिखाने का प्रयास किया जाना चाहिए। समावेशित शिक्षा

व्यवस्था के लिए आवश्यक है कि विद्यालय पाठ्यक्रम, बालकों की अभिवृत्तियों, मनोवृत्तियों, आकांक्षाओं तथा क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए निर्घारित किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम में विविधता तथा पर्याप्त लचीलापन होना चाहिए ताकि उसे प्रत्येक बालक की क्षमताओं, आवश्यकताओं, तथा रूचि के अनुसार अनुकूल बनाया जा सकें, बालकों मे विभिन्न योग्यताओं व क्षमताओं का विकास हो सकें, उसे विद्यालय से बाहर, सामाजिक जीवन से जोडा जाकर सामाजिक रूप से एक उत्पादित नागरिक बनाया जा सकें। एवं बालक के समय का सदुपयोग करने की शिक्षा प्राप्त हो सकें।

विशेष आवश्यकताओं वाले बालकों की शिक्षा एक जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में नियमित शिक्षक, विशेष शिक्षक, अभिभावक और परिवार, समुदायिक अभिकरणों के साथ विद्यालय कर्मचारियों के बीच सहयोग और सहकारिता शामिल है।[6]

समावेशित शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत घर से विद्यालय जाते समय बालक को आरम्भ में नये परिवेश में अपने आपको समायोजित करने में कुछ असुविधा हो सकती है। जैसे आरम्भ में कक्षा के कार्यों में सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई होना, दोस्तों का अभाव, नामकरण आदि के कारण बालक के आत्मविश्वास में कमी होना। इसके अतिरिक्त किशोरावस्था के दौरान होने वाले शारीरिक, मानसिक, सामाजिक परिवर्तनों की कठिनाई के दौर में मार्गदर्शन एवं निर्देशन से बालक को इस संक्रमण काल में काफी सहायता मिलती है। उचित मार्गदर्शन व निर्देशन से बालक और उसके माता–पिता दोनों ही इन परिवर्तनों के लिए मानसिक, शारीरिक और सामाजिक रूप से तैयार किये जा सकते है।[7]

आज के युग में तकनीकी उपायों से मानव जीवन काफी हद तक सुगम हो गया है। मानव जीवन के प्रत्येक पहलू पर आज तकनीक का प्रभाव देखा जा सकता है। समावेशी शिक्षा की सफलता के लिए और उसके प्रचार प्रसार के लिए शिक्षा व्यवस्था में तकनीक का उपयोग किये जाने की आवश्यकता है। टेलीविजन, कार्यक्रमों, कम्प्यूटर, मोबाइल फोन आदि तकनीकी उपकरणों का उपयोग करके बालकों की शिक्षा, सामाजिक अन्तःक्रिया, मनोरंजन, आदि मे प्रभावशाली भूमिका निभाई जा सकती है। इसलिए आज आवश्यकता इस बात की है कि समावेशित शिक्षा के उपयुक्त वातावरण हेतु बालकों, अभिभावकों, शिक्षकों को इसकी नवीन तकनीकी विधियों से परिचित करवाया जाये तथा उनके प्रयोग पर बल दिया जाए।[8]

विशेष शैक्षणिक आवश्यकताओं वाले बालकों की शिक्षा की पूरी बुनियाद प्रतिभागिता निर्मित करने पर टिकी हुई है। एक अकेले व्यक्ति के प्रयासों से उन्हे शिक्षा की मुख्यधारा में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है। समावेशित शिक्षा हेतु यह आवश्यक है कि विद्यालयों

को सामुदायिक जीवन का केन्द्र बनाया जाना चाहिए जिससे की बालक की सामुदायिक जीवन की भावना को बल मिलें क्योंकि उसे एक निश्चित समय के पश्चात उसी समुदाय का एक सक्रिय सदस्य के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समय–समय पर विद्यालय में सांस्कृतिक कार्यक्रम,वाद–विवाद, खेलकूद, देशाटन, जैसे मनोरंजक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए। एवं उनमें बालकों के अभिभावकों और समाज के अन्य सम्मानित व्यक्तियों को आमंत्रित किया जाना चाहिए।[9]

शिक्षक को ही शिक्षा पद्धति की वास्तविक गत्यात्मक शक्ति तथा शैक्षिक संस्थानों की आधारशिला माना गया है। यद्यपि यह बात सत्य भी है कि विद्यालय भवन, पाठ्यक्रम, पाठ्य सहभागी क्रियायें, सहायक शिक्षण सामग्री, आदि सभी वस्तुयें व क्रियाकलापों का भी शैक्षिक प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान होता है, परन्तु शिक्षक ही वह शक्ति है जो प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सबसे अधिक प्रभावित करता है।

समावेशी शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षकों की जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है क्योंकि समावेशी शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक केवल अपने आपको केवल शिक्षण कार्य तक ही सीमित नहीं रखता है, अपितु विशिष्ट शैक्षणिक आवश्यकताओं वाले बालकों का कक्षा में उचित ढंग से समायोजन करना, उनके लिए विशिष्ट प्रकार की शैक्षिक सामग्री का निर्माण करना, विद्यालय के अन्य कर्मचारियों, अध्यापकों तथा विशिष्ट अध्यापक से बालक की विशिष्ट शैक्षणिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सहयोग व सहकारपूर्ण व्यवहार करना, बालक को मिलने वाली आर्थिक सुविधाओं का वितरण करना आदि कार्य भी करने पड़ते है। इसलिए अध्यापक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह पूर्णतः निपुण हो, उसे विशिष्ट सामग्री की जानकारी हो, बालकों के प्रति स्वस्थ व सकारात्मक अभिवृत्तियाँ रखता हो, उनके मनोविज्ञान को समझता हो।[10]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि समावेशन की नीति को हर विद्यालय और सारी शिक्षा व्यवस्था में व्यापक रूप से लागू किए जाने की आवश्यकता है। बच्चे के जीवन के हर क्षेत्र में वह चाहे स्कूल में हो या बाहर, सभी बच्चों की भागीदारी सुनिश्चित किए जाने की आवश्यकता है। विद्यालयों को ऐसे केंद्र बनाए जाने की आवश्यकता है जहाँ बच्चों को जीवन की तैयारी कराई जाए और यह सुनिश्चित किया जाए कि सभी बच्चों, विशेषकर शारीरिक या मानसिक रूप से असमर्थ बच्चों, समाज के हाशिए पर जीने वाले बच्चों और कठिन परिस्थितियों में जीने वाले बच्चों को शिक्षा के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र ने सबसे ज्यादा लाभ मिलें।

संचार माध्यम निःशक्तजनों को उनकी आवश्यकताओं को समायोजित करने के लिए और समझने के लिए विशेष शिक्षा के शिक्षकों के लिए एक महत्वपूर्ण यंत्र है। श्रवण निःशक्तजन का बच्चे और उसके परिवार पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। जीवन के हरेक पहलू पर उसका प्रभाव पडता है। जिसमें बौद्धिक, संप्रेषण, मनोवैज्ञानिक, शैक्षणिक एवं व्यक्तित्व विकास और उसी तरह पारिवारिक आर्थिक स्थिति भी शामिल है।

हाल ही में आन्ध्रप्रदेश के काकीनाड़ा में एक स्कूल में तीन नेत्रहीन छात्रों की पिटाई का वीडियो सामने आया है। पिटाई करने वाला व्यक्ति स्कूल का शिक्षक है। पुलिस ने शिक्षक और उसके सहयोगी को गिरफ्तार कर लिया है। पुलिस के अनुसार, जिले के रायुडुपालम क्षेत्र के ग्रीनफील्ड स्कूल में कक्षा में शोर मचाने पर छात्रों की पिटाई की गई। एक कर्मचारी ने अपने मोबाइल पर चुपके से घटना का वीडियो बना लिया और इसे आन्तरिक विवाद के बाद मीडिया में उजागर कर दिया। ऐसी घटनाओं से पता चलता है कि निःशक्तता बच्चों के लिए कितना बड़ा अभिशाप है। शिक्षकों की क्रूरता और समाज की संवेदनहीनता ऐसे बच्चों को शिक्षा से विमुख कर देती है। वैसे तो बच्चों का पालन–पोषण और भविष्य–निर्माण एक कठिन कार्य है। लेकिन यह कार्य तब एक चुनौती बन जाता है, जब बच्चे सामान्य न होकर निःशक्तजन या असामान्य हों। यह एक गम्भीर विषय है, जिस पर अभिभावकों, शिक्षा–संस्थानों और समाज को भी अधिक संवेदनशील और सजग होकर विचार करना चाहिए क्योंकि असामान्य बच्चे सबसे अधिक उन्हीं की अवहेलना का शिकार होते हैं। आत्मीयता का अभाव, अपनों की उपेक्षा और दिशाहीनता ऐसे बच्चों का मनोबल तोड़ देती है। वह निराशा और हीन भावना के शिकार हो जाते हैं।

गौरतलब है कि भारत में वर्ष 2009–10 में निःशक्तजन, आदिवासी एवं दलित बच्चों को समावेशी शिक्षा देने की योजना लागू की गई है तथा इसमें कक्षा 9 से 12वीं तक के 93 प्रतिशत बच्चों को शामिल किया गया है। सर्व शिक्षा अभियान के लागू होने से दलित एवं आदिवासी बच्चों का प्रवेश बढ़ा है। सरकार ने वर्ष 2013–14 में दलितों के लिए 12600 करोड़ और आदिवासियों के लिए 6533 करोड़ रुपयों का शिक्षा पर व्यय करने का प्रावधान किया है। एवं असामान्य बच्चों के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं। उच्च शिक्षा में भी ऐसे बच्चों के लिए विभिन्न कार्यक्रम आरम्भ किए गए हैं, जैसे पॉलीटेक्निक की पढ़ाई, नेत्रहीन विद्यार्थियों के लिए वित्तीय सहायता, विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा नेट परीक्षा में छूट, औपचारिक शिक्षा के अलावा रोजगारमूलक प्रशिक्षण, छात्रवृत्ति, निःशुल्क पुस्तकें, गणवेश आदि का प्रबंधन इत्यादि।

भारत में समावेशी शिक्षा विभिन्न निःशक्तता से ग्रस्त बच्चों की शिक्षा के लिए एक नवीन उभरती अवधारणा है। यह अवधारणा अनेक परिवर्तनों जैसे समेकित शिक्षा, निःशक्तजनों की शिक्षा एवं विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा के बाद एक नए स्तर पर पहुँच चुकी है। समावेशी शिक्षा विभिन्न प्रकार की निःशक्तता युक्त बच्चों के लिए शिक्षा की एक नई खोजपूर्ण प्रणाली है जिसमें अनेक परीक्षणों और परिवर्तनों के बाद पुरानी प्रणाली में परिवर्तन किये गए हैं। बीते कुछ वर्षों में समावेशी शिक्षा में तेजी से वृद्धि हुयी है।

भारत में निःशक्तजन लोगों के लिए शिक्षा का इतिहास एक बदलते स्वरूप में उभरता दिखाई देता है और शिक्षा के विशिष्ट आयाम में से एक है समावेशी शिक्षा। भारत में समावेशित शिक्षा 21वीं शताब्दी से उभर कर सामने आ रही है। इस शिक्षा को आरंभ से ही अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है। इसके साथ ही समावेशी शिक्षा के पूर्व अनेक कानूनी और नीतिगत दौर भी आये जिनमें समय के साथ परिवर्तन होता रहा और जिसके फलस्वरूप निःशक्तजनों के प्रति लोगों के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन होता रहा है।

भारत में समावेशी शिक्षा के लिए 'सलमान खान का सम्मलेन' 1994, मील का पत्थर साबित हुआ जो जून 1994 में स्पेन के सलमान के शहर में आयोजित हुआ जिसमें 92 देशों के प्रतिनिधि् व 25 अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं ने भाग लिया। इस सम्मलेन का प्रमुख उद्देश्य था, 'सभी के लिए शिक्षा, जिसमें बच्चे, युवा और विशेष आवश्यकता वाले लोगों को सामान्य शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा प्रदान करना।'

समावेशी शिक्षा के प्रमुख लक्ष्य निःशक्त एवं निःशक्तजन बच्चों को बिना किसी भेदभाव के विद्यालय में उचित स्थान प्रदान करना, निःशक्त एवं निःशक्तजन बच्चों को विद्यालय में शिक्षण का समुचित माहौल प्रदान करना। निःशक्त एवं निःशक्त बच्चों में आवश्यक क्षमताएं विकसित करना ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें, निःशक्त एवं निःशक्तजन बच्चों के प्रति समाज में सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास करना, समावेशी शिक्षा का प्रचार–प्रसार कर लोगों में समावेशी शिक्षा के प्रति जागृति लाना आदि है।

'समावेशी शिक्षा प्राथमिक तौर पर स्कूली संस्कृति, नीतियों और व्यवहारों का नाम है, जो स्थान विशेष के विविधतापूर्ण छात्रों से सीधे जुड़ी है। समावेशी शिक्षा छात्रों की भागीदारी की निरंतरता को सशक्त बनाने का अभियान है, जिसमें निःशक्त बच्चे भी शामिल हैं।' समावेशन की प्रक्रिया में बच्चे को न केवल लोकतंत्र की भागीदारी के लिए सक्षम बनाया जा सकता है, बल्कि यह सीखने एवं विश्वास करने के लिए भी सक्षम बनाया जा सकता है कि

लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए दूसरों के साथ रिश्ते बनाना, अन्तःक्रिया करना भी आवश्यक है।

निःशक्त संतान सामाजिक समायोजन की प्रक्रिया में कठिनाई का अनुभव करते है। कि निःशक्तता एक स्वाभाविक कारण के रूप में कुण्ठा केन्द्रित मनोवैज्ञानिक स्वरूप की रचना करती है। निःशक्त बच्चें कम बोलते हैं अपनी समस्याओं को अभिव्यक्त करने के लिये अनेक अवसरों पर भावनात्मक आक्रामकता का शिकार हो जाते हैं। अनेक अवसरों पर रोना, परिवारी जनों से एवं मित्रों से अन्तःक्रिया में दूरी बना लेना और अनेक अवसरों पर स्वतंत्र रूप से भूमिका निर्वाह की कोशिश में असफल होने पर हीनता तथा अवसाद का शिकार हो जाना वे पक्ष है जो इन उत्तरदाताओं के मनावैज्ञानिक विश्व को निर्मित करते हैं।

निःशक्तता जन्मजात नहीं होती, अपितु यह एक समाज में मनोवैज्ञानिक रचना है, जिसे व्यक्ति एवं समाज के अन्तःसम्बन्धों की पृष्ठभूमि के साथ समझने की आवश्यकता है।निःशक्त जनों के लिये अनुकूलनशीलता के मनोसांस्कृतिक परिवेश को निर्मित करना अत्यंत कठिन है। यह एक स्थिति में अमूर्त एवं आदर्शात्मक हो जाता है। यह एक तथ्य है कि सृजनशील होने के बावजूद निःशक्तता अनेक व्यवहार प्रणालियों में अवरोध उत्पन्न करती है और ऐसी स्थिति में सहयोग एवं आश्रितता की आवश्यकता अथवा अनिवार्यता सम्बद्ध सामाजिक इकाई को अस्थायी हताशा का भाग बनाती है और यह हताशा धीरे–धीरे अनेक अवसरों पर अकेलापन की मनोव्याधि को निर्मित कर देती है। इस दृष्टि से निःशक्त बच्चों को समाज मनोवैज्ञानिक विश्व अनेक विसंगतियों एवं अन्तःविरोधों के समग्र से निर्मित होता है और यह समग्रता निःशक्त व्यक्ति एवं समाज के सम्बन्धों को सामान्य व्यक्ति एवं समाज के सम्बन्धों से पृथक कर देती है। शोधार्थी अनुभव करती है कि व्यक्ति एवं समाज के सम्बन्धों के इन पक्षों की जो निःशक्त एवं सामान्य इकाईयों से निर्मित होते हैं, का तुलनात्मक अध्ययन एक स्वतन्त्र शोध के रूप में किये जाने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. कोहली, टी. पोर्टज. (1989) ''बेसिक ट्रेनिंग कोर्स फॉर अर्ली स्टीम्यूलेशन ऑफ प्री–स्कूल चिल्ड्रन इन इण्डिया'' न्यू दिल्ली, यूनीसेफ पृ.सं. 110।

2. बाइंस, एच. (2007)''टैक्लिंग इस्यूज ऑफ डिस्एबिलिटिज एण्ड इन्क्लूसिवनेस इन एज्यूकेशन'' जोन्सबर्ग : वर्ल्ड विजन, पृ.सं. 178।

3. बेयोर, ए.एम. एण्ड सपोना, आर.एच. (1991) ''मैनेजिंग क्लासरूम्स टू फेसीलिटेड लर्निंग'' न्यू जर्सी : प्रिटिंस हॉल, पृ.सं. 141।

4. हर्स्ट, बी. एण्ड हर्स्ट, ए. एण्ड हर्स्ट आर. (2005)''डिस्एबिलिटी एण्ड ह्यूमन राइट एप्रोच टू डवलपमेंट'', पृ.सं. 101।

5. कृष्णास्वामी, जे. एण्ड जयाचन्द्रन, पी. उपनयन (1989) ''ए. प्रोग्राम ऑफ डवलपमेंट ट्रेनिंग फॉर चिल्ड्रन विथ मेन्टल रिटार्डेशन'' चेन्नई : मदुरम नारायणन सेन्टर।

6. लुफटिंग, आर.एल. (1987)''टीचिंग द मेन्टली रिटार्डेड स्टूडेन्ट्स'' बोस्टन : एलिन एण्ड बेकान, इन्क, पृ. सं. 81।

7. मित्रा, एस. (2005) ''डिस्एबिलिटी एण्ड सोशल सैफ्टी नैट्स इन डवलपिंग कन्ट्री, सोशल प्रोटेक्शन'' डिस्कशन पेपर सर्विज, न्यू जर्सी रूटर्स यूनिवर्सिटी, पृ.सं. 101।

8. मनी, एम.एन.जी. (1992),''टेक्नीक्स ऑफ टीचिंग ब्लाइंड चिल्ड्रन्स'' नई दिल्लीः स्टलिंग पब्लिशर्स, पृ. सं. 173।

9. रोसो, एच. (2003) ''एज्यूकेशन फॉर आरः ए जेंडर इन डिस्एबिलिटी पर्सपेक्टिव अन पब्लिशड रिपोर्ट'' वाशिंगटन डी.सी.ः वर्ल्ड बैंक।

10. अल्बर्ट, बी (2005) ''लैसन्स फ्रॉम दा डिस्एबिलिटिज नॉलेज एण्ड रिसर्च प्रोग्राम'' के. आर. पब्लिकेशन, पृ.सं. 107।

षष्ठम् अध्याय

निःशक्तजन बच्चे एवं विकास नीतियाँ : अनुभाविक विवेचन

निःशक्तता एक ऐसा सामाजिक यथार्थ है, जो समावेशी विकास की प्रक्रिया को एक सीमा तक मंद करता है क्योंकि निःशक्त विकास की प्रक्रिया में सामान्य सामाजिक इकाई की तुलना में कम योगदान कर पाते है। निःशक्त बच्चे विशेषतः विकास प्रक्रिया में भविष्य में कितना योगदान कर पायेंगे, एक ऐसा प्रश्न है जो समाजशास्त्रीय चिंतन हेतु महत्वपूर्ण बन जाता है।

समाजशास्त्र में संतुलित विकास की चर्चा करते समय निश्चय ही निःशक्त बच्चों से संबंधित जनसंख्या की सामाजिक संरचना, उनके अपनी भूमिकाओं में निहित अधीनस्थता एवं उन्हें एक स्वायत्तशासी इकाई के रूप में विकसित करने के प्रयास की चर्चा शोधकर्ता महसूस करती है। इस पक्ष को ध्यान में रखते हुये उन राष्ट्रीय एवं राज्य सरकार द्वारा संचालित उन विकास नीतियों का अनुभाविक विवेचन किया गया है जो निःशक्त बच्चों को विकास की प्रक्रिया में सम्मिलित होने का किसी एक सीमा तक आधार बन जाते हैं।

निःशक्तजनों की संख्या के बारे में 2011 की जनगणना के नये आंकड़े हाल ही में जारी किए गए हैं, इसके अनुसार निःशक्त जनो की कुल संख्या भारत में लगभग 2.68 करोड है, जो भारत की कुल जनसंख्या का 2.21 प्रतिशत है। भारत ने निःशक्त पुरूषों की कुल संख्या 1.49 करोड है तथा महिलाओं की संख्या 1.18 करोड है। भारत में निःशक्तों की कुल संख्या (2.68 करोड) का 69.5 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है तथा 29.5 प्रतिशत नगरीय क्षेत्रों में निवास करता है।

देश में सन् 2001 में जनगणना के नये आंकडों के अनुसार पता चला है की 2001 में निःशक्तों की संख्या देश की कुल संख्या की 2.13 प्रतिशत थी जो वर्ष 2011 में बढ कर 2.21 प्रतिशत हो गई। 2001 में ग्रामीण क्षेत्रों में निःशक्ततों की संख्या, देश के कुल निःशक्त संख्या का 2.21 प्रतिशत थी जो 2011 में बढकर 2.24 प्रतिशत हो गई। नगरीय क्षेत्रों में निःशक्त की संख्या, देश की कुल निःशक्त संख्या का 1.93 प्रतिशत थी जों 2011 में बढकर 2.17 प्रतिशत हो गई।

सारणी क्रमांक 6.1

भारत में निःशक्तों की श्रेणीवार जनसंख्या एवं प्रतिशत (भारत जनगणना–2011)

क्र सं	निःशक्तता की श्रेणी	कुल निःशक्त जनसंख्या	पुरूष निःशक्त जनसंख्या	महिला निशक्त जनसंख्या	कुल निःशक्त प्रतिशत	पुरूष निःशक्त प्रतिशत	महिला निःशक्त प्रतिशत
1	दृष्टि निःशक्त	50,32,463	26,38,516	23,93,947	19	18	20
2	श्रवण निःशक्त	50,71,007	26,77,544	23,93,463	19	18	20
3	वाचन निःशक्त	19,98,535	11,22,896	8,75,639	8	8	7
4	चलन निःशक्त	54,36,604	33,70,374	20,66,230	20	23	18
5	मानसिक मंदता	15,05,624	8,70,708	6,34,916	6	6	5
6	मानसिक बीमारी	7,22,826	4,15,732	3,07,094	3	3	3
7	अन्य निःशक्त	49,27,011	27,27,828	21,99,183	18	18	19
8	बहु निःशक्तता	21,16,487	11,62,604	9,53,833	8	8	8
	कुल	2,68,10,557	1,49,86,202	1,18,24,355	100	100	100

(www.censusindia.gov.in>disability-data)[1]

राजस्थान की कुल जनसंख्या 5.65 करोड है, जिसमें से 2.94 करोड पुरूष है तथा 2.71 करोड महिला है। राजस्थान में निःशक्त जनसंख्या लगभग 15.63 लाख है, जो राजस्थान की कुल जनसंख्या का लगभग 2.76 प्रतिशत है। भरतपुर की निःशक्त जनसंख्या लगभग 21 लाख है, जिसमें पुरूष 11.30 लाख है तथा महिला 96.71 लाख है। भरतपुर में निःशक्तों की कुल जनसंख्या 55,789 है जो भरतपुर की कुल जनसंख्या का 2.65 प्रतिशत हैं।

निःसंदेह सरकार निःशक्त बच्चों की शिक्षा और बेहतर जीवन पद्धति हेतु सचेष्ट है। वैसे भी शारीरिक या मानसिक दृष्टि से निःशक्त बच्चे का जन्म माता–पिता के लिए बहुत पीड़ादायक होता है। ऐसे बच्चों को विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है। प्रायः देखा जाता है कि असामान्य या निःशक्त बच्चों में विलक्षण प्रतिभा होती है जिसे निखारने–संवारने का हर सम्भव प्रयास किया जाना चाहिए। ताकि बच्चे अपने को कम न मानें और जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण आशावादी बना रहे। सरकार ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए ऐसे उपाय किए हैं कि निःशक्तता बच्चे के लिए अभिशाप न बने। परन्तु इसकी जानकारी अभिभावकों को भी होनी चाहिए। कानून में निःशक्तजन को श्रेणीबद्ध किया गया है। 40 प्रतिशत या उससे अधिक निःशक्तजन की स्थिति के जांच के उपरान्त अधिकृत चिकित्सक द्वारा निःशक्तता का प्रमाणपत्र जारी किया जाता है। जिसके आधार पर निःशक्तो को सरकार द्वारा प्रदत्त सभी सुविधाएं मिल सकती हैं।

निःशक्त बच्चों के लिए 18 वर्ष की उम्र तक निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई है। निःशक्त बच्चों के लिए स्कूल तक आवागमन की सुलभ व्यवस्था और परीक्षा प्रणाली में आवश्यक संशोधन के भी निर्देश दिए गए हैं। सभी शासकीय शिक्षण संस्थाओं और सरकारी अनुदान प्राप्त शिक्षा संस्थाओं में तीन प्रतिशत स्थान निःशक्त विद्यार्थियों के लिए आरक्षित रखना अनिवार्य है। सरकार ने शारीरिक रूप से निःशक्त बच्चों को आर्थिक स्वावलंबन का भी ध्यान रखा है। अतएव शासकीय सेवाओं में उनके लिए तीन प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान है।

विशेष रोजगार कार्यालय में पंजीयन के बाद भी एक वर्ष तक नौकरी न मिल पाने की स्थिति में निःशक्तजनों को बेरोजगारी भत्ता देने का प्रावधान है। असामान्य बच्चों को बेहतर जीवन प्रदान करने के लिए सरकार द्वारा समुचित प्रयास किये जा रहे हैं लेकिन अधिकतर लोग अज्ञानवश पूरा लाभ नहीं उठा पाते हैं। बस और ट्रेन में निःशक्तजनों के अलावा उनके सहयोगी के लिए भी किराये में रियायत का प्रावधान है। रेलवे स्टेशन, बस

स्टैण्ड, हवाई अड्डे, सार्वजनिक स्थानों, प्रतीक्षालयों और शौचालयों आदि में इन लोगों के लिए विशेष व्यवस्था के निर्देश हैं। दृष्टिबाधित एवं श्रवण बाधित निःशक्तों को ब्रेल लिपि और ध्वनि संकेतों से सूचनाएं देने का प्रबंध भी सरकार करती है।

यह ज्ञातव्य है कि अक्षम व्यक्तियों के लिए वर्ष 1995 में बने कानून के अनुसार, अपाहिज और सामान्य नागरिकों में कोई अन्तर नहीं है। उन्हें भी एक सामान्य नागरिक के सारे अधिकार प्राप्त हैं।

सरकार की राज्य विशेष योग्यजन नीति, 2012 के अन्तर्गत निःशक्तजनों को समान अवसर उपलब्ध कराना, उन्हें स्वाधीनता एवं सह–प्रतिष्ठा प्रदान करना, अनेक सामुदायिक उत्तरदायित्व एवं सहभागिता को सुनिश्चित करना तथा उनके सामाजिक एवं आर्थिक पुनर्वास में नवाचार करना जैसे पक्ष सम्मिलित हैं। केन्द्रीय सरकार ने भी समय–समय पर निःशक्त जनसंख्या के सामाजिक कल्याण हेतु अनेक योजनाओं एवं क्रियाकलापों को समय–समय पर निर्मित एवं संचालित किया है।[2]

केन्द्र एवं राज्य सरकार ने इस नीति के अनुरूप अनेक कल्याणकारी कार्यक्रम क्रियान्वित किये हैं। विशेष योग्यजन निदेशालय की स्थापना 2012, प्रत्येक जिले में निदेशालय के द्वारा समय–समय पर संचालित किये गये क्रियाकलापों के निर्वहन हेतु जिला कार्यालयों की स्थापना की गई है। इन कार्यालय के माध्यम से विभिन्न योजनाओं को संचालित किया जा रहा है, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित है :–

- **संयुक्त सहायता अनुदान येजना**

इस योजना के अन्तर्गत विशेष योग्यजनों जिनका परिवार आयकर दाता नहीं है, को स्वरोजगार हेतु आर्थिक सहायता एवं शारीरिक कमी को पूर्ण करने हेतु कृत्रिम अंग/उपकरण के लिए रूपये 10,000/– तक की आर्थिक सहायता उपलब्ध करवाई जाती है।[3]

- **विशेष योग्यजन छात्रवृति योजना**

इस योजनान्तर्गत राजकीय एवं मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं में नियमित अध्ययनरत विशेष योग्यजन छात्र/छात्राएं जिनके परिवार की वार्षिक आय 1.00 लाख रूपये से अधिक न हो। ऐसे परिवारों के विशेष योग्यजन विद्यार्थियों को छात्रवृति दिये जाने का प्रावधान है।

- **मुख्यमंत्री विशेष योग्यजन स्वरोजगार योजना**

इस योजना के अन्तर्गत राज्य के ऐसे विशेष योग्यजनों को जिनकी स्वयं की एवं परिवार की वार्षिक आय 2.00 लाख रूपये तक है, स्वयं का स्वरोजगार प्रारम्भ करने के लिये 5.00 लाख रूपये की राशि ऋण के रूप में उपलब्ध करवाई जाती है। जिस पर ऋण राशि का प्रतिशत या अधिकतम 50 हजार जो भी दोनो ंमें कम हो, रूपये अनुदान के रूप में दिये जाते है।

- **विशेष योग्यजन सुखद दाम्पय जीवन योजना**

इस योजनान्तर्गत विशेष योग्यजन युवक/युवतियों को विवाहोपरान्त सुखद दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने हेतु रूपये 50,000/– प्रति दम्पत्ति आर्थिक सहायता उपलब्ध करवाई जाती है। साथ ही विशेष योग्यजनों के परिचय सम्मेलन आयोजित करने वाली संस्था को आयोजन व्यय के रूप में रूपये 20,000/– स्वीकृत किये जाते है।

- **विशेष योग्यजन चिन्हिकरण योजना**

निःशक्त व्यक्ति अधिनियम, 1995 के तहत 40 प्रतिशत या उससे अधिक निःशक्तताधारी विशेष योग्यजनों का घर घर जाकर सर्वे कार्य किया जाता है एवं सर्वे के दौरान 40 प्रतिशत या उससें अधिक निःशक्तताधारी विशेष योग्यजनों को चिकित्सा प्रमाण पत्र एवं परिचय पत्र जारी किये जाते है।

- **विशेष योग्यजन अनुप्रति योजना**

राजस्थान राज्य के विशेष योग्यजनों को संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित अखिल भारतीय सिविल सेवा परीक्षा एवं राजस्थान लोक सेवा आयोग द्धारा आयोजित राजस्थान राज्य एवं अधीनस्थ सेवा (सीधी भर्ती) संयुक्त प्रतियोगी की प्रारभिक, मुख्य एवं साक्षात्कार में उत्तीर्ण (अतिम रूप से चयन) होने वाले अभ्यर्थियों को प्रोत्साहन राशि दिये जाने प्रोफेशनल तकनीकी पाठ्यक्रमों में राष्ट्रीय स्तर के शिक्षण संस्थाओं की परीक्षा में सफल होने एवं संस्थान में प्रवेश लेने एवं राज्य के राजकीय इंजीनियरिंग एवं राजकीय मेडिकल कॉलेजों में प्रवेश होने पर प्रोत्साहन राशि रूप में अनुदान स्वीकृत किया जाता है।

- **आस्था योजना**

आस्था' ऐसे परिवार जिनमें दो या दो से अधिक व्यक्तियों के 40 प्रतिशत से अधिक विशेष योग्यजन होने पर उन परिवारों को आस्था कार्ड जारी किये जाते है। जिससे विशेष योग्यजन परिवार को बी.पी.एल के समकक्ष सुविधाएं उपलब्ध करवाई जाती है।

- **विशेष योग्यजन राज्य स्तरीय पुरस्कार योजना**

प्रतिवर्ष विभाग द्वारा वर्ल्ड डिसएबिलिटी डे 3 दिसम्बर को उत्कृष्ट विशेष योग्यजनों एवं विशेष योग्यजनों के क्षेत्र में कार्यरत उत्कृष्ट व्यक्तियों एवं संस्थाओं किया जाता है।

- **पोलियों करैक्शन कैम्प**

पोलियोग्रस्त विशेष योग्यजनो के निःशुल्क पोलियों करैक्शन ऑपरेशन कर शारीरिक रूप से सक्षम बनाने हेतु स्वयंसेवी संस्थाओं को 5000/– रूपये प्रति ऑपरेशन हेतु अनुदान स्वीकृत किया जाता है।

- **मुख्यमंत्री विशेष योग्यजन सम्मान पेंशन योजना**

किसी भी आयु का विशेष योग्यजन व्यक्ति जों अन्धता, अल्प दृष्टि, चलन निःशक्तता, कुष्ठ रोग युक्त, श्रवण शक्ति का हास, मानसिक मंदता, मानसिक रोगी में से किसी एक अथवा अधिक विकलांगता (40 प्रतिशत एवं अधिक विकलांगता) से ग्रसित हो, प्राकृतिक रूप से बोनेपन (व्यस्क व्यक्ति के मामलो में उॅचाई 3 फीट 6 इंच से कम हो एवं प्राधिकृत चिकित्सा अधिकारी के द्वारा प्रदत्त प्रमाण पत्र धारक हो) से ग्रसित हो तथा प्राकृतिक रूप से हिंजडेपन से ग्रसित हो, जो राजस्थान का मूल निवासी हो तथा राजस्थान में रह रहा हो एवं जिसकी स्वंय की वार्षिक आय समस्त स्त्रोतो से 60000/– तक हो तो उनको प्रतिमाह 750 रूपये पेंशन दिये जाने का प्रावधान है।[4]

- **पालनहार योजना**

विशेष योग्यजन माता पिता की सन्तान को सरकार द्वारा पालनहार योजना का लाभ दिया जाता है। इसमें 0–5 वर्ष तक के बच्चों को 500रूपयें प्रतिमाह तथा 6 से 18 वर्ष तक के बच्चों को 1000 रूपये प्रतिमाह दियें जाते है। परिवार की आय वार्षिक आय 1.20 लाख से अधिक नही होनी चाहिए तथा 0 से 5 वर्ष तक की आयु के बच्चो को आंगनबाडी एवं 6 से 18 वर्ष तक के बच्चों का विद्यालय जाना अनिवार्य है।

पिछले दिनों असामान्य बच्चों तथा आदिवासी एवं दलित बच्चों को शिक्षा का अधिकार कानून के तहत समावेशी शिक्षा देने के कार्यक्रम की राष्ट्रीय निगरानी समिति की बैठक में शिक्षा से वंचित चार लाख असामान्य बच्चों का मामला सामने आया। यह इतना गम्भीर विषय है जिस पर अभिभावकों, शिक्षकों, शिक्षा–संस्थानों और पूरे समाज को चिंतन एवं विमर्श करना चाहिए। हमारे आसपास यदि काकीनाड़ा जैसी घटनाएं घट रही हैं, तो हमें

अपनी जागरूकता का परिचय देकर उस पर विराम लगाने का प्रयास करना चाहिए। सरकार अब निःशक्तजन के सम्मान की रक्षा हेतु भी चिंतित है इसलिए संसदीय समिति ने आमजन से सुझाव मांगे हैं। वह निःशक्तजन अधिकार विधेयक का प्रस्ताव लाने की तैयारी में है। तदनुसार, निःशक्तजनों को सार्वजनिक रूप से अपमानित करने पर पांच साल तक की जेल की सजा का प्रावधान होगा। नौकरी व शिक्षण संस्थानों में प्रवेश हेतु आरक्षण तीन से बढ़ाकर पांच प्रतिशत करने और कानून का पालन नहीं होने पर दण्ड के लिए विशेष न्यायालय की स्थापना का भी प्रावधान है। इसके अलावा अधिकारों की रक्षा हेतु केन्द्र व राज्य स्तर पर आयोग के गठन का प्रावधान भी है। कानून बन जाने पर सार्वजनिक भवनों में रैम्प निर्माण प्रावधानों का भी पालन करना अनिवार्य होगा।

आरक्षण प्रावधानों का पालन न होने पर कार्रवाई और विशेष न्यायालयों का प्रावधान है। कानून तोड़ने पर छह माह से दो वर्ष तक दण्ड और दस हजार से पांच लाख तक जुर्माना हो सकता है। निःशक्तता के नाम पर गलत फायदा उठाने पर दो साल की सजा या एक लाख रुपए तक जुर्माना या दोनों सजाएं हो सकती हैं। निःशक्तजन को अपमानित, प्रताड़ित करने, भेदभाव, यौन उत्पीड़न या निःशक्त महिला का जबरन गर्भपात कराने पर छह माह से पांच साल तक कारावास की सजा हो सकती है। प्रस्तावित विधेयक यदि कानून का रूप ले सका तो यह समाज के हित में होगा।

निःसंदेह सरकार निःशक्त बच्चों की शिक्षा और बेहतर जीवन पद्धति हेतु सचेष्ट है। वैसे भी शारीरिक या मानसिक दृष्टि से निःशक्त बच्चे का जन्म माता–पिता के लिए बहुत पीड़ादायक होता है। ऐसे बच्चों को विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है। प्रायः देखा जाता है कि असामान्य या निःशक्तजन बच्चों में विलक्षण प्रतिभा होती है जिसे निखारने–संवारने का हर सम्भव प्रयास किया जाना चाहिए। ताकि बच्चे अपने को कम न मानें और जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण आशावादी बना रहे। सरकार ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए ऐसे उपाय किए हैं जो निःशक्त बच्चे के लिए अभिशाप न बने। परन्तु इसकी जानकारी अभिभावकों को भी होनी चाहिए। कानून में निःशक्तजन को श्रेणीबद्ध किया गया है। इनमें अंधत्व, श्रवण बाधिता, पैरो से अपंगता आदि के आधार पर शासकीय चिकित्सक प्रमाणपत्र जारी करते हैं। 40 प्रतिशत से अधिक निःशक्तता की स्थिति में जांच के उपरान्त अधिकृत चिकित्सक इस संबंध में प्रमाणपत्र दे देते हैं जिसके आधार पर निःशक्तजन बच्चों को सरकार द्वारा प्रदत्त सभी सुविधाएं मिल सकती हैं।

निःशक्त बच्चों के लिए 18 वर्ष की उम्र तक निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई है। निःशक्त बच्चों के लिए स्कूल तक आवागमन की सुलभ व्यवस्था और परीक्षा प्रणाली में आवश्यक संशोधन के भी निर्देश दिए गए हैं। सभी शासकीय शिक्षण संस्थाओं और सरकारी अनुदान प्राप्त शिक्षा संस्थाओं में तीन प्रतिशत स्थान निःशक्त विद्यार्थियों के लिए आरक्षित रखना अनिवार्य है। सरकार ने शारीरिक रूप से निःशक्त बच्चों के आर्थिक स्वावलंबन का भी ध्यान रखा है।

अतएव शासकीय सेवाओं में उनके लिए तीन प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान है। शिक्षा के उपरान्त दृष्टिबाधित, श्रवणबाधित, पैरों से अपंग या सेरेब्रल पाल्सी से पीड़ित व्यक्ति के लिए सरकारी नौकरी में एक प्रतिशत स्थान आरक्षित है। उनके लिए अधिकतम आयु में छूट का भी प्रावधान है। यदि आरक्षित पदों पर योग्य उम्मीदवारों की भर्ती नहीं हो पाती, तो ये पद अगली बार की भर्ती में जुड़ जाते हैं। इन पदों पर सामान्य व्यक्तियों की भर्ती नहीं हो सकती। निःशक्तजन कर्मचारियों को निःशुल्क बीमा सुविधा भी प्रदान की जाती है। विशेष रोजगार कार्यालय में पंजीयन के बाद भी एक वर्ष तक नौकरी न मिल पाने की स्थिति में निःशक्तजनों को बेरोजगार भत्ता दिया जाने का प्रावधान है।

असामान्य बच्चों को बेहतर जीवन प्रदान करने के लिए सरकार द्वारा समुचित प्रयास किये जा रहे हैं लेकिन अधिकतर लोग अज्ञानवश पूरा लाभ नहीं उठा पाते हैं। बस और ट्रेन में निःशक्तजनों के अलावा उनके सहयोगी के लिए भी किराये में रियायत का प्रावधान है। रेलवे स्टेशन, बस स्टैण्ड, हवाई अड्डे, सार्वजनिक स्थानों, प्रतीक्षालयों और शौचालयों आदि में इन लोगों के लिए विशेष व्यवस्था के निर्देश हैं। इन स्थानों पर व्हील चेयर की उपलब्धता होनी चाहिए। साथ ही ब्रेल लिपि और ध्वनि संकेतों में सूचनाएं देने का प्रबंध भी होना चाहिए।

यह ज्ञातव्य है कि अक्षम व्यक्तियों के लिए वर्ष 1995 में बने कानून के अनुसार, अपाहिज और सामान्य नागरिकों में कोई अन्तर नहीं है। उन्हें भी एक सामान्य नागरिक के सारे अधिकार प्राप्त हैं। इसके अलावा कानूनन कुछ विशेष रियायतें व सुविधाएं दी गई हैं। इनमें शिक्षा व रोजगार सहित अन्य कई प्रावधान हैं।

भारत में निःशक्तजनों से सम्बंधित कानूनी प्रावधानों के इतिहास का प्रारम्भ वर्ष 1944 में सार्जेंट रिपोर्ट से माना जाता है जिसमें यह कहा गया था कि निःशक्तजन यदि विशेष विद्यालय के अनुकूल है तभी निःशक्त व्यक्तियों को विशेष विद्यालय में भेजा जाना

चाहिए। इसी बात पर कोठारी आयोग (1966–68) ने भी जोर दिया और निःशक्तजन की शिक्षा को शिक्षा नीति का एक अभिन्न अंग माना।

भारत में समावेशी शिक्षा की शुरुआत के लिए 'निःशक्तजनों के लिए 'समेकित शिक्षा' योजना' 1970 के दशक में प्रारम्भ की गयी, जिसका उद्देश्य निःशक्तजन बच्चों को सामान्य विद्यालय में शामिल करना व शैक्षिक अवसर प्रदान करने के साथ ही साथ सभी स्तर पर उन्हें समुदाय से जोड़ना था।इसके बाद अनेक योजनाएं प्रारम्भ की गयीं परन्तु समावेशी शिक्षा के क्षेत्र में वर्ष 2000 महत्वपूर्ण है। जब एन.सी.ई.आर.टी. ने 'विद्यालयी राष्ट्रीय शिक्षा की रूपरेखा 2000 'प्रकाशित की, जिसमें समावेशी विद्यालयों को मंजूरी दी गयी।

समावेशी शिक्षा प्राथमिक तौर पर स्कूली संस्कृति, नीतियों और व्यवहारों का नाम है, जो स्थान विशेष के विविधतापूर्ण छात्रों से सीधे जुड़ी है। समावेशी शिक्षा छात्रों की भागीदारी की निरंतरता को सशक्त बनाने का अभियान है, जिसमें निःशक्त बच्चे भी शामिल हैं।

भारत सरकार ने निःशक्त व्यक्तियों के समान अधिकार तथा शिक्षा और समावेशीकरण एवं पुनर्वास हेतु मानव संसाधन विकास मंत्रालय, सामाजिक न्याय तथा अधिकारिता मंत्रालय, परिवार कल्याण एवं श्रम मंत्रालय के अधीन अनेक योजनाओं एवं नीतियों का क्रियान्वयन किया है, जैसे– 1974 में समेकित बाल विकास योजना, 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1994 में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम इत्यादि।

इसी क्रम में 1995 में निःशक्तजन (समान अवसर, अधिकारों की रक्षा और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम के तहत निःशक्तों की सात श्रेणियां है :– दृष्टि बाधित, अल्प दृष्टि, कुष्ठ रोग से युक्त, श्रवण बाधित, चलन निःशक्तता, मानसिक मन्दता एवं मानसिक रोगी।[5]

राष्ट्रीय न्यास एक्ट 1999 में निःशक्तजनो की शिक्षा हेतु प्रयास किया गया तथा निःशक्तता की चार श्रेणियां (आटिज्म, सेरेब्रल पाल्सी,मानसिक मंदता तथा बहु–निःशक्तता) और बढा दी गई।[6]

सरकार ने प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण एवं सभी के लिए शिक्षा के उद्देश्य को लेकर वर्ष 2000 में सर्व शिक्षा अभियान प्रारम्भ किया और इसी कड़ी में भारत सरकार ने 30 मार्च 2007 को यू एन कन्वेंसन ऑन द् राइट्स ऑफ पर्सन्स विद डिसएबिलिटी पर हस्ताक्षर किये और निःशक्त बच्चों सहित सभी को समान अवसर देने के संकल्प को दोहराया।

वर्ष 2009 में प्राथमिक शिक्षा हेतु निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिकार अधिनियम एवं माध्यमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान प्रारम्भ किया।

इसके साथ ही अन्य योजनाएं जैसे निःशक्तजनों के लिये समेकित शिक्षा, ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड, महिला समाख्या योजना, कस्तूरबा गाँधी शिक्षा योजना, मध्याह्न भोजन योजना, लोक जुम्बिश परियोजना आदि को लागू किया गया।

भारत में समावेशी शिक्षा के लिए सरकार द्वारा अनेक योजनाओं और क्रियाओं को लागू किया गया परन्तु आज भी निःशक्तजन से ग्रस्त जनसंख्या के एक बड़े भाग को समाज की मुख्यधारा से जोड़ा नहीं जा सका हैं। लाखों निःशक्त बच्चे अभी भी विशेष विद्यालयों में अध्ययन करते हैं। जिन्हें इन विद्यालयों में प्रवेश नहीं मिलता है, ऐसे बच्चे या तो पढ़ते नहीं हैं या विभिन्न कारणों से बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं।

अभी हाल ही में निःशक्तजन को समाज की मुख्य धारा से जोडने तथा उनके अधिकार सम्मानजनक तरीके से दिलाने के लिये ''दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम'' 2016 लागू किया गया जिसमें निःशक्तता की श्रेणी बढाकर 21 कर दी गई। इसके तहत सरकार द्वारा सम्पूर्ण राज्य में निःशक्तों के संशक्तिकरण एवं कल्याण हेतु उन्हे विशेष अभियान चलाकर चिन्हित करने का प्रयास किया गया।[7]

हाल ही में देश के आजादी के लगभग 70 वर्ष वाद पहली बार निःशक्तजनों के लिये राजस्थान आम विधानसभा चुनाव 2018 में 'सुगम मतदान' की व्यवस्था की गई जिसमें निःशक्त मतदाताओं को अपने निवास स्थान से मतदान स्थल तक ले जाना तथा मत डालने के पश्चात उसके निवास तक पहुंचाने के लिये वाहन की व्यवस्था की गई। मतदान केन्द्रों पर रैम्प की व्यवस्था की गई। इसके साथ प्रत्येक मतदान केन्द्र पर 2 स्वयं सेवक भी लगाये गये ताकि निःशक्तजन मतदाता आसानी से अपने मताधिकार का प्रयोग कर सकें।

निःशक्त बच्चें एवं उनकी विकास नीतियों का अनुभाविक विवेचन निम्नलिखित सारणीयों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है :–

सारणी क्रमांक 6.2 : उत्तरदाताओं के जन्म स्थान से सम्बद्ध सूचना

शोधकर्ता यह उल्लेख कर चुकी है कि ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में निःशक्तता से संबंधित जनसंख्या के प्रतिशत में महत्वपूर्ण भेद है। इस पक्ष को ध्यान में रखकर उत्तरदाताओं से उनके जन्म स्थान से संबंधित सूचनाओं को संकलित किया गया है, जो निम्नलिखित सारणी का भाग है :–

क्र. सं.	जन्म स्थान	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बलक	बालिका		
1	ग्रामीण	105	24	23	9	161	80.50
2	नगरीय	21	8	7	3	39	19.50
	योग	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**	**100.00**

विवेचन –

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 161 उत्तरदाताओं (80. 50 प्रतिशत) का जन्म स्थान ग्रामीण क्षेत्र से संबंधित है जबकि शेष 39 उत्तरदाताओं (19.50 प्रतिशत) का जन्म स्थान नगरीय है।

यह सारणी यह भी स्पष्ट करती है कि ग्रामीण क्षेत्रों में चलन बाधित निःशक्तता बच्चों में सर्वाधिक है। 161 उत्तरदाताओं में से 126 उत्तरदाता (105 बालक एवं 24 बालिकाऐं) चलन बाधित निःशक्तता का शिकार हैं जबकि 32 उत्तरदाता (23 बालक एवं 09 बालिकाऐं) दृष्टि बाधित निःशक्तता से संबंधित है।

यह सारणी निरूपित करती है कि बालकों में निःशक्तता की उपस्थिति बालिकाओं की तुलना में बहुत अधिक है। नगरीय क्षेत्र में 39 उत्तरदाताओं में से 29 उत्तरदाता (21 बालक एवं 08 बालिकाऐं) चलन बाधित निःशक्तता एवं 10 उत्तरदाता (7 बालक एवं 3 बालिकाऐं) दृष्टिबाधित निःशक्तता का शिकार है। यह सारणी यह भी स्पष्ट करती है कि –

- नगरों की तुलना में गांव में निःशक्तता अधिक है।
- बालकों में निःशक्तता बालिकाओं की तुलना में बहुत अधिक है।

- चलन बाधित निःशक्तता की संख्या दृष्टि बाधित निःशक्तता की तुलना में बहुत अधिक है।

विश्लेषण :–

अनुसंधानकर्ता का तर्क है कि ग्रामीण क्षेत्रों में निःशक्तता की उपस्थिति का मुख्य कारण स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव एवं चेतना का निम्न स्तर है। अध्ययन के दौरान अनौपचारिक वार्तालाप जो कि उत्तरदाता और उनके परिवारजनों के साथ हुआ, से ज्ञात होता है कि अनेक बीमारियों के विषय में उपर्युक्त चेतना ग्रामीण क्षेत्रों में नहीं है और इसलिये पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध होने में विलम्ब हो जाता हैं। नीम, हकीम, झाड फूंक, धार्मिक क्रियाकलाप जैसी क्रियाओं के द्वारा बीमारी को दूर करने का प्रयास क्योंकि असफल रहता है पर वह निःशक्तता को उत्पन्न कर देता है। बालक चूंकि ग्रामीण परिवेश के सार्वजनिक क्षेत्र में ज्यादा उपस्थित रहते हैं अतः वे अधिक संख्या में बीमारी का शिकार बनते हैं। बालिकाओं की सार्वजनिक क्षेत्रों में उपस्थिति कम है। अतः निःशक्तता भी कम है परन्तु उत्तरदाता के परिवारीजन से बातचीत के दौरान यह संकेत मिला कि बालिकाओं के भोजन इत्यादि के पक्षों पर अधिक बल नहीं दिया जाता है। अतः इससे उत्पन्न कुपोषण एवं अन्य किस्म की व्याधियों की उत्पत्ति बालिकाओं में निःशक्तता का कारण बन जाती है।

सारणी क्रमांक 6.3: उत्तरदाताओं की धार्मिक प्रस्थिति से संबद्ध सूचना

धार्मिक प्रस्थिति एक अत्यंत महत्वपूर्ण सामाजिक यथार्थ है क्योंकि धर्म से संबंधित आस्था, व्यवस्था, सांस्कृतिक क्रियाकलाप उपासना पद्धति इत्यादि पक्ष सामाजिक इकाईयों की जीवन पद्धति पर व्यापक प्रभाव डालते हैं। इस दृष्टि को ध्यान में रखकर अनुसंधानकर्ता ने उत्तरदाता की धार्मिक प्रस्थिति से संबद्ध जिन सूचनाओं को एकत्रित किया है जिनकी प्रस्तुति निम्नलिखित सारणी से की गई है :–

क्र. सं.	धार्मिक प्रस्थिति	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बालिका		
1	हिन्दू	82	20	23	9	134	67.00
2	इस्लाम	26	7	5	2	40	20.00
3	सिक्ख	16	4	2	1	23	11.50
4	जैन	2	1	0	0	3	1.50
	कुल	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**	**100.00**

विवेचन :–

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 134 उत्तरदाता (67 प्रतिशत) हिन्दू धर्म, 40 उत्तरदाता (20 प्रतिशत) इस्लाम धर्म, 23 उत्तरदाता (11.50 प्रतिशत) सिक्ख धर्म तथा 3 उत्तरदाता (1.5 प्रतिशत) जैन धर्म से संबंधित हैं। शेष धर्म (इसाई, बौद्ध इत्यादि) से संबद्ध उत्तरदाता अध्ययन क्षेत्र में उपस्थित नहीं हैं।

कुल 200 उत्तरदाताओं में 156 उत्तरदाता बालक हैं और 44 उत्तरदाता बालिकाऐं हैं। चलन बाधित उत्तरदाताओं की संख्या 158 है। दृष्टि बाधित उत्तरदाताओं की संख्या 42 है। 158 उत्तरदाता जो कि चलनबाधित हैं में 126 बालक एवं 32 बालिकाऐं है जबकि दृष्टिबाधित 42 उत्तरदाताओं में से 30 उत्तरदाता बालक एवं 12 उत्तरदाता बालिकाऐं हैं।

विश्लेषण :–

उत्तरदाता एवं उनके परिवारीजनों से अनौपचारिक वार्तालाप एवं सारणी में उपस्थित तथ्यों से निम्नलिखित विश्लेषण अवयव निर्मित किये जा सकते हैं।

- निःशक्तजनों की संख्या एवं उनका प्रतिशत हिन्दू धर्म में अधिक है, जो इस तथ्य से संबद्ध है कि अध्ययन क्षेत्र भरतपुर हिन्दू धर्म की बाहुल्यता को व्यक्त करता है। तत्पश्चात इस्लाम, सिक्ख और जैन धर्म से सम्बद्ध उत्तरदाताओं का स्थान है। यह, यह भी संकेत देता है कि हिन्दू एवं इस्लाम धर्म में चूंकि अंध आस्था झाड फूंक एवं अन्य धार्मिक सांस्कृतिक क्रियाओं के द्वारा बीमारियों को ठीक करने का अनुकरणात्मक प्रचलन है। अतः इन धर्मो में निःशक्तजनों की संख्या अधिक है।

- सिक्ख और जैन धर्म में चूँकि अंध आस्थाओं इत्यादि का प्रचलन आंशिक है। अतः यहाँ निःशक्तजनों की संख्या कम है।

- यह सारणी पूर्व सारणी के इस तथ्यो ंको पुनः स्थापित करती है कि चलन बाधित निःशक्तता प्रत्येक धर्म में दृष्टिबाधित निःशक्तता से अधिक है। यह भी इस तथ्य का भी संकेतक है कि यातायात संबंधी दुर्घटनाऐं, पोलियो, सामाजिक परिवर्तनों के बावजूद प्रत्येक धर्म में अपनी उपस्थिति बनाये हुये हैं। शोधार्थी का तर्क है कि धार्मिक जीवन पद्धति में यदि अंध आस्थाओं को न्यूनतम किया जाये तथा यातायात के नियमों को जीवन पद्धति का भाग नागरिकीय मूल्य के रूप में सम्मिलित करने के अनौपचारिक एवं औपचारिक प्रयासों हो तो निःशक्तता पर प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है। इसके साथ ही ग्रामीण एवं नगरीय परिवेश दोनों में समय–समय पर अभियान चलाकर बच्चों की आँखों का परीक्षण किया जाना भी आवश्यक है। अतः यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त प्रबंधन एवं नीतियों के क्रियान्वयन से निःशक्तता को एक सीमा तक नियंत्रित कर सकते हैं।

सारणी क्रमांक 6.4: उत्तरदाताओं के परिवार की प्रकृति से सम्बद्ध सूचना

किसी भी वालक के जीवन में परिवार की अहम भूमिका होती है। बालक का अधिकांश समय अपने परिवार में ही गुजरता है। अत परिवार उसके लिये प्रथम पाठशाला हैं हमारें समाज में दो तरह के परिवार संयुक्त एवं एकांकी विद्यामान है। संयुक्त एवं एकांकी परिवार में सदस्यों का निःशक्त बालक के प्रति व्यवहार एवं सहयोग के आधार पर निःशक्तजनों के जीवन संघर्ष का अध्ययन किया जाता है। इसी पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने संयुक्त एवं एकाकी परिवारों में निःशक्त उत्तरदाताओं को उनके परिवारी जनो द्वारा किये जाने वाले व्यवहार के सम्बन्ध में जानकारी हेतु प्रश्न किये। इस प्रश्न से संकलित की गई सूचनाओं को शोधार्थी ने निम्नलिखित सारणी के माध्यम से प्रस्तुत किया है :–

क्र. सं.	परिवार की प्रकृति	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बालिका		
1.	एकांकी परिवार	42	8	6	3	59	29.50
2.	संयुक्त परिवार	84	24	24	9	141	70.50
	योग	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**	**100.00**

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओ में से 59 उत्तरदाताओ (29.50 प्रतिशत) के परिवारों की प्रकृति एकांकी है। जबकि शेष 141 उत्तरदाताओं (70.50 प्रतिशत) के परिवारों की प्रकृति संयुक्त है।

यह सारणी यह भी निरूपित करती है कि 59 उत्तरदाताओं में से 48 बालक एवं 11 बालिकाओं के परिवारों की प्रकृति एकांकी है। जबकि शेष 141 उत्तरदाताओं में 108 बालक एवं 33 बालिकाओ के परिवारों की प्रकृति संयुक्त है।

यह सारणी यह भी संकेत देती है कि 59 उत्तरदाताओं मे 50 चलन बाधित एवं 9 दृष्टि बाधित निःशक्तों के परिवारों की प्रकृति एकांकी है। जबकि शेष 141 उत्तरदाताओं मे 108 चलन बाधित एवं 33 दृष्टि बाधित निःशक्तों के परिवारों की प्रकृति संयुक्त है।

विश्लेषण :–

परिवार की प्रकृति एवं परिवार का स्वरूप विभिन्न सामाजिक इकाईयों के जीवन की प्रणाली को निर्धारित व प्रभावित करता है। अध्ययन के दौरान पाया गया कि एक बहुत बड़ी संख्या में उत्तरदाता (लगभग 71 प्रतिशत) संयुक्त परिवार का भाग है, जबकि शेष एकांकी परिवार का हिस्सा है।

शोधार्थी का मानना है कि निःशक्तता से सम्बन्धित चेतना को परिवारों में प्रशिक्षण के माध्यम से राज्य को स्थापित करने की जरूरत है। साथ ही पाठ्यपुस्तकों में निःशक्तता से सम्बन्धित जानकारियों को स्थान दिया जाना चाहिये।

सारणी क्रमांक 6.5 : उत्तरदाताओं की जातीय/जनजातीय प्रस्थिति से संबद्ध सूचना

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में सामाजिक इकाईयों की जातीय प्रस्थिति एक महत्वपूर्ण पक्ष है, जो नातेदारी, धर्म, लैंगिकता से संबंधित प्रस्थितियों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। जातीय व्यवस्था, भारतीय समाज का वह जटिल सच है जो जीवन से मृत्यु तक सभी कार्य प्रणालियों को प्रभावित करता है। एम.एन.श्रीनिवासन का मत है कि जाति इस समाज की सतत सांस्कृतिक विरासत है, जिसमें उच्च संस्तरण पर स्थित लोगों को सदैव लाभ होता है और निम्न संस्तरण को नुकसान। उमा चक्रवर्ती जाति को आर्थिक ढाँचे का आधार बताती है।

जातियों को चूँकि विशिष्ट जीवन शैली है और अनेक परिवर्तनों के बावजूद व्यवसायों की विशिष्टता जाति की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। अतः जाति से संबंधित सूचनाओं को एकत्रित करना एक महत्वपूर्ण पक्ष है। वस्तुतः एक सीमा तक भारतीय समाज को जातीय समाज की संरचना के अंतर्गत विवेचित किया जा सकता है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने उत्तरदाताओं की जातीय प्रस्थिति से संबंधित सूचनाओं को संकलित किया जो कि निम्नलिखित सारणियों में प्रस्तुत किये गये हैं। साथ ही यह सारणी उत्तरदाताओं की जनजातीय प्रस्थिति को व्यक्त करती है, चूँकि यह संख्या कम है अतः इसके लिये स्वतंत्र सारणी की रचना नहीं की गई है।

क्र. सं.	जाति/जनजातीय प्रस्थिति	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बालिका		
1	सामान्य	56	14	14	5	89	44.50
2	अन्य पिछडी जाति	39	10	10	4	63	31.50
3	अनुसूचित जाति	26	6	4	2	38	19.00
4	अनुसूचित जनजाति	5	2	2	1	10	5.00
	कुल	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**	**100.00**

विवचेन :–

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 89 उत्तरदाता (44.50 प्रतिशत) सामान्य जातीय समूहों (उच्च एवं मध्य जाति) से संबद्ध है जबकि 63 उत्तरदाता (31.50) अन्य पिछडी जाति से, 38 उत्तरदाता (19 प्रतिशत) अनुसूचित जाति से संबद्ध है। शेष 10 उत्तरदाता (5प्रतिशत) जनजातीय समूहों का भाग है। इस सारणी में विभिन्न जातीय एवं जनजातीय समूहों में लैंगिक प्रस्थिति एवं चलन बाधित तथा दृष्टि बाधित निःशक्तता को चरों के रूप में वर्गीकरण हेतु प्रस्तुत किया गया है।

विश्लेषण :–

उपर्युक्त सारणी में नीहित तथ्यों तथा अनौपचारिक वार्तालाप की प्रणाली द्वारा एकत्रित सूचनाओं तथा प्रश्न पूछते समय अवलोकन पद्धति के एक सीमा तक सजग प्रयोग ने विश्लेषण को निम्नलिखित पक्षों के अंतर्गत निर्मित करने में सहायता की है।

- निःशक्तता उच्च एवं मध्य जातियों अर्थात सामान्य जातियों में व्यापक रूप में विद्यमान है। विशेषतः बालकों में यह बडी संख्या में देखने को मिलती है।
- आरक्षित जातियों एवं अन्य पिछडी जातियों को सम्मिलित कर लिया जाये तो लगभग आधे उत्तरदाताओं में यह निःशक्तता विशेषतः चलन बाधित निःशक्तता बडी संख्या में विद्यमान है।
- आरक्षित जनजातियों में जातियों की भांति चलन बाधित निःशक्तता अधिक संख्या में है।

यह विश्लेषण स्पष्ट करता है कि जातिगत चेतना सांस्कृतिक एवं औद्योगिक परिवर्तनों के बावजूद अभी संकीर्णता की परिधि को न्यूनतम नही ंकर सकी हैं। यह भी स्पष्ट है कि विभिन्न जातियों में यहां तक की जनजातियों में उपर्युक्त जीवन संचालन के लिये जिस अनुशासन एवं नियमन की आवश्यकता है, का चलन पर्याप्त नहीं है, और इसलिये चलन बाधित निःशक्तता का प्रतिशत एवं उसकी संख्या बहुत अधिक है। यह स्पष्ट होता है कि व्यापक रूप में उपस्थिति का सहसंबंध उस सामाजिक व्यवस्था से है जो गांव, धर्म एवं जाति की अन्तःक्रिया से निर्मित होती है और कहीं न कही पारम्परिकता को जीवन संचालन में पर्याप्तता से अधिक महत्व प्रदान कर देती है।

सारणी क्रमांक 6.6: उत्तरदाताओं के परिवारों की वार्षिक आय से संबद्ध सूचना

आय सरंचना किसी भी सामाजिक व्यवस्था में न केवल जीवन स्तर एवं जीवन की गुणवत्ता की संभावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम है अपितु बेबर की शब्दावली में वर्ग रचना का भी एक महत्वपूर्ण आधार है। आय चूँकि संसाधनों को उपलब्ध कराती है अतः प्रत्येक प्रकृति की व्याधि कम या अधिक होना आवश्यक रूप से आय संरचना के साथ जुड जाता है इस दृष्टि को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने उत्तरदाताओ के परिवार की वार्षिक आय से संबद्ध जिन सूचनाओं को संकलित किया है, की प्रस्तुति निम्नलिखित सारणी में की गई है :–

क्र. सं.	परिवारिक आय (वार्षिक)	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बालिका		
1	एक लाख से कम	98	26	27	11	162	81.00
2	एक से पांच लाख	24	6	7	1	38	19.00
	कुल	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**	**100.00**

विवेचन :–

सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 162 उत्तरदाताओं (81 प्रतिशत) के परिवारों की वार्षिक आय 1 लाख रुपये तक है जबकि शेष 38 उत्तरदाताओं (19 प्रतिशत) के परिवारों की वार्षिक आय 1 लाख रुपये से 5 लाख रुपये तक है। 5 लाख रुपये से अधिक की वार्षिक आय वाला एक भी परिवार इस सारणी का भाग नहीं है।

विश्लेषण :–

यह सारणी निःशक्तता एवं आर्थिक प्रस्थिति के मध्य निम्नलिखित आधार पर घनिष्ठ संबंध व्यक्त करती है।

- अधिकांश उत्तरदाताओं के परिवार एक लाख रुपये से कम की आय समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं। अर्थात् अधिकांश उत्तरदाता निर्धन परिवारों का भाग है। स्वाभाविक है कि यह आर्थिक प्रस्थिति स्वास्थ्य, शिक्षा एवं गुणवत्ता मूलक भोजन की

आवश्यकताओं को संतुष्ट करने में किसी भी रूप में सक्षम नहीं हैं, इन सुविधाओं का अभाव कहीं न कहीं निःशक्तता की संभावनाओं को बढाता है।

- ऐसे परिवारों में निःशक्तजन उत्तरदाताओं की संख्या सर्वाधिक है जिनकी आय एक लाख रुपये वार्षिक से कम है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि आर्थिक प्रस्थिति जितनी निम्न होगी, निःशक्तता की उपस्थिति की संभावना ऐसे परिवारों में सर्वाधिक होगी।

- समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों में यह तर्क उपलब्ध है कि निर्धनता की उपस्थिति अलगाव, वंचन, कुंठा इत्यादि को जन्म देती है और जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के पर्याप्त साधनों को उपलब्ध नहीं करा पाती। अर्थात् अनेक मनोभावनात्मक एवं सामाजिक सांस्कृतिक तनाव तथा पिछडापन कम आय के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं और यह स्थिति उन भूमिका तनावों तथा संघर्षो को जन्म देती है जो कहीं न कहीं निःशक्तता को उत्पन्न करते हैं। तनाव शारीरिक अस्वस्थता को जन्म देता है, जो निःशक्तता को एक परिणाम के रूप में उपस्थित कर देती है। परिवार निर्धनता के फलस्वरूप बच्चों पर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाता और बच्चे बीमारियों का शिकार हो जाते हैं जिससे निःशक्तता एक परिणाम के रूप में उपस्थित हो सकती है।

सारणी क्रमांक 6.7: उत्तरदाताओं के परिवारों के पारिवारिक व्यय से संबद्ध सूचना

किसी भी व्यक्ति के जीवन का स्तर, उसकी आय तथा व्यय पर निर्भर करता है। निःशक्तजनो पर मासिक व्यय राशि के अध्ययन से हमें यह ज्ञात हो सकता है कि वास्तव में उनका जीवन स्तर एवं रहन सहन क्या है। उनकी जीवन की आवश्यक जरूरतें पूर्ण हो पाती है या नहीं ।इस पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने उत्तरदाताओं के परिवारों से उनकी मासिक व्यय सम्बन्धी सूचना संकलित करने के लिए अनौपचारिक वार्तालाप के माध्यम से प्रश्न किये। इस प्रश्न से प्राप्त तथ्यों को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है :–

क्र. सं.	परिवारिक व्यय (मासिक)	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बालिका		
1	भोजन						
	2000 रूपये तक	102	26	23	11	162	81.00
	2000 रूपये से अधिक	24	6	7	1	38	19.00
2	वस्त्र						
	1000 रूपये तक	102	26	23	11	162	81.00
	1000 रूपये से अधिक	24	6	7	1	38	19.00
3	शिक्षा						
	500 रूपये तक	102	26	23	11	162	81.00
	500 रूपये से अधिक	24	6	7	1	38	19.00
4	स्वास्थ्य						
	1000 रूपये तक	102	26	23	11	162	81.00
	1000 रूपये से अधिक	24	6	7	1	38	19.00
5	अन्य पर व्यय						
	1000 रूपये तक	102	26	23	11	162	81.00
	1000 रूपये से अधिक	24	6	7	1	38	19.00

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 162 उत्तरदाताओं (81 प्रतिशत) के परिवारों का भोजन, वस्त्र, शिक्षा एवं अन्य पर 2000 रु. तक मासिक व्यय है जबकि 38 उत्तरदाताओं (19 प्रतिशत) के परिवारों का भोजन, वस्त्र, शिक्षा एवं स्वास्थ्य पर मासिक व्यय 2000 रु. से अधिक है।

यह सारणी यह भी संकेत देती है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 162 उत्तरदाता (125 बालक एवं 37 बालिकाऐ) के भोजन, वस्त्र, शिक्षा एवं अन्य पर 2000 रु. तक मासिक व्यय है जबकि 38 उत्तरदाताओं (31 बालक एवं 7 बालिकाऐ) का मासिक व्यय भोजन, वस्त्र, शिक्षा एवं स्वास्थ्य पर 2000 रु. से अधिक है।

यह सारणी यह भी निरूपित करती है कि 162 उत्तरदाताओं में से 128 चलनबाधित (102 बालक एवं 26 बालिकाऐं) एवं 34 दृष्टिबाधित (23 बालक एवं 11 बालिकाऐं) का भोजन, वस्त्र, शिक्षा एवं अन्य पर 2000 रु. तक मासिक व्यय है जबकि शेष 38 उत्तरदाताओं में से 31 चलनबाधित (24 बालक एवं 7 बालिकाऐं) एवं 8 दृष्टिबाधित (7 बालक एवं 1 बालिका) का भोजन, वस्त्र, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं अन्य पर 2000 रु. से अधिक मासिक व्यय है।

विश्लेषण :–

पारिवारिक व्यय से संबद्ध यह सारणी स्पष्ट करती है कि निम्नवर्गीय परिवारों में मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विशेषतः भोजन एवं वस्त्र पर अधिक व्यय किया जाता है। निःशक्त बच्चों की उपस्थिति के कारण आवश्यकता संरचना के संस्तरण में तीसरा स्थान स्वास्थ्य सेवाओं पर होने वाला व्यय है। जबकि संस्तरण में चौथी आवश्यकता शिक्षा की है, जिस पर परिवार 500 रु. या उससे अधिक का व्यय करते है, जबकि स्वास्थ्य पर यह व्यय लगभग दुगुना अथवा उससे अधिक है, यातायात अधिनियमों का आना विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उपकरणों का खराब हो जाना तथा आकस्मिक प्रघटनाओं की उपस्थिति में व्यय करने की बाध्यता प्रत्येक परिवार में अनिवार्य रूप से उपस्थित है।

अधिकांश परिवारों का यह मत था कि इस प्रकार के व्यय बचत की संभावनाओं को न्यूनतम कर देते हैं और इसीलिये अनेक अवसरों पर कर्ज एक बाध्यता बन जाती है। अनौपचारिक वार्तालाप के दौरान परिवार की महिला सदस्यों ने यह पक्ष प्रस्तुत किया की आय एवं व्यय के मध्य असंगतता जीवन की अनिवार्यता बन गयी है और इसलिये जीवन की

गुणवत्ता के तर्क एवं जीवन स्तर में उन्नयन की संभावनाऐं केवल एक मिथक हैं। इस दृष्टि से निःशक्त संतान की उपस्थिति एवं आय की गतिशीलता परिवारों को निर्धनता की संरचना में निरंतरता प्रदान करती है। परिवार में बचत का न होना, समूचे परिवार के लिये न केवल एक चिंता का विषय है अपितु राष्ट्रीय स्तर पर यह पारिवारिक अर्थशास्त्र में नीहित समस्याओं की तरफ संकेत करता है।

सारणी क्रमांक 6.8: उत्तरदाताओं के परिवार की परिसम्पतियों से सम्बद्ध सूचना

किसी भी परिवार में परिसम्पत्ति एक ऐसी अनिवार्य प्रघटना है, जो परिवार के जीवन स्तर एवं संबंधित समुदाय में परिवार की प्रतिष्ठा को निर्मित करने का माध्यम बनती है। परिसम्पत्ति सामान्यतः दो प्रकृति की होती है। प्रथम जो कि वंशानुगत है अर्थात् पीढी दर पीढी जिसकी निरंतरता है जैसे भूमि और दूसरी वह परिसम्पत्ति जो कि व्यक्तिगत आय से निर्मित की जाती है। यह संभव हो सकता है कि आगे चलकर यह परिसम्पत्ति पीढी–दर–पीढी निरंतरता पाने के कारण वंशानुगत हो जाये। यदि परिसम्पत्ति प्रचुर मात्रा में है तो वह अनेक बार पारिवारिक समस्याओं के समाधान में सहायक हो जाती है। इस पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने उत्तरदाताओं के परिवारों की परिसम्पत्ति को जानने का प्रयास किया जिसकी विवेचना निम्नलिखित सारणी में की गई है :–

क्र. सं.	परिवार की परिसम्पत्तियां	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बालिका		
1.	स्वयं का मकान	108	26	25	10	169	84.50
2.	स्वयं की भूमि	26	8	7	4	45	22.50
3.	स्वयं की मोटर साइकिल	14	2	8	4	28	14.00
4.	साइकिल	121	28	29	10	188	94.00
5.	टी.वी.	101	25	24	11	161	80.50
6.	फ्रिज	45	14	12	4	75	37.50
7.	मोबाईल फोन	115	27	24	11	177	88.50
	अन्य	**18**	**8**	**4**	**3**	**33**	**16.50**

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 169 उत्तरदाताओं (84.50 प्रतिशत) के परिवारों के पास स्वयं का मकान है। जबकि शेष 31 उत्तरदाताओं (15.50 प्रतिशत) के परिवारो के पास स्वयं का मकान नहीं है। 45 उत्तरदाताओं (22.50 प्रतिशत) के परिवारों के पास स्वयं की भूमि है तथा शेष 155 उत्तरदाताओं (77.50 प्रतिशत) के परिवारों के पास स्वयं की भूमि नहीं है।

28 उत्तरदाताओं (14 प्रतिशत) के परिवारों के पास मोटरसाइकिल है जबकि शेष 172 उत्तरदाताओं (86 प्रतिशत) के परिवारों के पास मोटरसाइकिल की उपलब्धता नहीं है। 188 उत्तरदाताओं (94.00 प्रतिशत) के परिवारों के पास साइकिल है जबकि शेष 12 उत्तरदाताओं (6 प्रतिशत) के परिवारों के पास साइकिल की उपलब्धता नहीं है। किसी भी परिवार के पास कार की उपलब्धता नहीं है।

161 उत्तरदाताओं (80.50 प्रतिशत) के परिवारों के पास टेलीवजिन है जबकि 39 उत्तरदाताओं (19.50 प्रतिशत) के परिवारों के पास टीवी नहीं है। 75 उत्तरदाताओं (37.50 प्रतिशत) के परिवारों के पास फ्रीज की उपलब्धता है। जबकि 125 उत्तरदाताओं के परिवारों के पास (62.50 प्रतिशत) फ्रीज नहीं है।

177 उत्तरदाताओं (88.5 प्रतिशत) के परिवार के पास मोबाइल फोन है जबकि 23 परिवारों (11.5 प्रतिशत) के पास मोबाइल फोन उपलब्ध नही है। 33 उत्तरदाताओं (16.50 प्रतिशत) के परिवार के पास कूलर, सोफा, कुर्सी इत्यादि परिलब्धियों की उपस्थिति पायी गई जिन्हें शोद्यार्थी ने अन्य परिलब्धियों में सम्मिलित किया है।

विश्लेषण :–

परिलब्धि किसी भी परिवार की स्थायी एवं अस्थायी सम्पत्ति होती है। वह यह निर्धारित करती है कि परिवार का जीवन स्तर एवं जीवन गुणवत्ता कैसी है, साथ ही यह भी संकेत देती है कि सामाजिक, आर्थिक विकास की प्रक्रिया में परिवारों की आर्थिक स्थिति को कैसे निर्धारित व प्रभावित किया हैं।

यह सारणी संकेत देती है कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया का तार्किक वितरण निर्धन वर्ग के विशेषतः ऐसे परिवार जहां निःशक्त संतान है, नहीं पहुंच सका है। यह सच है कि अधिकांशतः परिवारों के पास स्वयं के मकान हैं पर वे अधिकांश अर्ध पक्के व कच्चे हैं और यदि पक्के मकान है तो उनका आकार बहुत छोटा है। अनौपचारिक वार्तालाप एवं

अवलोकन के आधार पर यह पाया गया कि मकानों में शौचालय तो है परन्तु स्नानाघर नही है। साथ ही अलग से ऐसा कोई भाग नहीं है जिसे रसोई के रूप में प्रयुक्त किया जा सके। यातायात साधनों के रूप में लगभग सभी परिवारों के पास साईकिल है जबकि सुविधाओं के अन्य साधन जेसे फ्रीज, टीवी, मोटरसाइकिल कम परिवारों में उपलब्ध है। मोबाइल फोन लगभग सभी परिवारों की आवश्यकताओं का भाग बन गया है।

यह परिलब्धियां संकेत करती हैं कि वंशानुगत सम्पत्ति के रूप में या तो स्वयं का मकान अथवा कुछ परिवारों के पास भूमि के छोटे टुकडे पाये जाते हैं जबकि स्वयं के द्वारा किये गये प्रयासों से अर्जित परिलब्धि टीवी के रूप में या मोबाइल के रूप में है। वस्तुतः आय इतनी कम है कि अर्जित परिलब्धि के प्रयास सीमित है अर्थात् यह परिवार अभी उस बाजार व्यवस्था का भाग नहीं है, जहां आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ सुगमता से प्राप्त किया जा सके।

सारणी क्रमांक 6.9: उत्तरदाताओं की निःशक्तता के कारण से सम्बद्ध सूचना

निःशक्तता एक समाजिक समस्या है। किसी भी समस्या को कम करने या उसके परिणामों को सुविधा जनक बनाने हेतु यह आवश्यक है कि हमें उसके मूल कारणों की जानकारी हो। निःशक्तता के कारणों के अध्ययन से यह ज्ञात किया जा सकता है कि इसको रोकने के लिए किस स्तर पर प्रयास किये जाये। उदाहरण के लिए यदि निःशक्तता जन्म जात है तों उसके प्रमुख कारण वंशानुगत अथवा अन्य कारण हो सकतें हैं। इसके लिए जागरूकता उत्पन्न कर निःशक्तता में कमी लाने के प्रयास किये जा सकते है। जिस प्रकार चिकित्सक इलाज से पूर्व बीमारी की जड़ को खोजने का प्रयास करता हैं उसी प्रकार सामाजिक समस्या के भी मूल का अध्ययन हमें उसके समाधान से अवगत करा सकता है। इसी पक्ष कों ध्यान में रखकर शोधार्थी ने उत्तरदाताओं से उनकी निःशक्तता के कारण से सम्बद्ध सूचनाओं को संकलित करने हेतु प्रश्न किये। इस प्रश्न से प्राप्त तथ्यों को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है :–

क्र. सं.	निःशक्तता के कारण	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बालिका		
1.	जन्मजात	94	17	18	6	135	67.50
2.	दुर्घटनावश	20	11	8	4	43	21.50
3.	अन्य कारण	12	4	4	2	22	11.00
	योग	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**	**100**

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 135 उत्तरदाता (67.50 प्रतिशत) में निःशक्तता का कारण जन्मजात है। 43 उत्तराताओं (21.50 प्रतिशत) मे निःशक्तता कारण दुर्घटना वश है। जबकि शेष 22 उत्तरदाताओं (11 प्रतिशत) में निःशक्तता के अन्य कारण है।

यह सारणी निरूपित करती है कि 200 उत्तरदाताओं में से 135 उत्तरदाताओं (112 बालक एवं 23 बालिकाऐं) में निःशक्तता का कारण जन्म जात है। 43 उत्तरदाताओं (28 बालक एवं 15 बालिकाऐं) में निःशक्तता का कारण दुर्घटनावश है। शेष 22 उत्तरदाताओं (16 बालक एवं 6 बालिकाऐं) में निःशक्तता के अन्य कारण है।

यह सारणी यह भी विवेचित करती है कि 200 उत्तरदाताओं में से 135 उत्तरदाताओं (111 चलन बाधित एवं 24 दृष्टि बाधित) में निःशक्तता का कारण अनुवांशिक है और 43 उत्तरदाताओं (31 चलन बाधित एवं 12 दृष्टि बाधित) में निःशक्तता का कारण दुर्घटनावश है जबकि शेष 22 उत्तरदाताओं (16 चलन बाधित 6 दृष्टिबाधित) में निःशक्तता के अन्य कारण है।

विश्लेषण :–

निःशक्तता एक ऐसा सामाजिक यथार्थ है, जिसकी प्रकृति दैहिक एवं सामाजिक दोनों ही प्रकार की होती है। दैहिक यथार्थ के रूप में यह सामान्यतः वंशानुगत/जन्मजात होता है। यद्यपि ऐसे भी अनेक तर्क हैं जिनके अनुसार चिकित्सक वैज्ञानिकों की दृष्टि से जन्म से पूर्व माता–पिता में किसी प्रकार की कोई उत्पन्न कमी, मां के संदर्भ में कुपोषण, किसी दवा की प्रतिक्रिया इत्यादि के कारण भी निःशक्तता का दैहिक यथार्थ उत्पन्न होता

है। दैहिक यथार्थ से सम्बद्ध कारण से उत्पन्न निःशक्तता एक बड़ी संख्या में उत्तरदाताओं को निर्मित करती है। यद्यपि सामाजिक यथार्थ के रूप में बीमारी, दुर्घटनाओं के कारण है जो निःशक्तता को उत्पन्न कर देते हैं। यह संख्या भी अर्थपूर्ण (लगभग 33 प्रतिशत) है।

शोधार्थी का मत है कि निःशक्तता के ये दोनों प्रकार समाज में भिन्न–भिन्न व्यवहार प्रणालियों को जन्म देते हैं। जन्मजात निःशक्तता जीवन पर्यन्त एक व्याधि के रूप में सामाजिक इकाई एवं सम्बन्धित समूहों को प्रभावित करती है। इसका कारण व्यवहार की प्रकृति का स्वरूप उस निःशक्तता से भिन्न होता है, जो दुर्घटना अथवा बीमारी के कारण उत्पन्न होती है। इससे सामाजिक इकाई चूंकि जीवन के एक भाग को सामान्य सामाजिक जीवन के रूप में जी चुकी है, अतः उसका स्वयं का जीवन तुलनात्मक हो जाता है। अर्थात् निःशक्तता से पूर्व का सामान्य जीवन एवं निःशक्त होने के उपरान्त अनेक अवरोधों एवं सामाजिक प्रतिक्रियाओं से स्वरचित विशिष्ट सामाजिक जीवन।शोधार्थी का मत है कि इस प्रकार के व्यवहार के तुलनात्मक विश्लेषण के लिये एक स्वतंत्र शोध की आवश्यकता होती है।

सारणी क्रमांक 6.10: उत्तरदाताओं के परिवारीजन को राजनीतिक दलों की जानकारी से सम्बद्ध सूचना

राजनीतिक चेतना किसी भी सामाजिक इकाई के तार्किक दृष्टिकोण का एक महत्वपूर्ण भाग है। राजनीतिक चेतना, सत्ता एवं शक्ति सम्बंधों के यथार्थ से सामाजिक इकाईयों को परिचित कराती है और नीतियों की प्रकृति क्या है, के बारे में समझने के प्रयास का भाग बनती है। राजनीतिक लोकतंत्र की निरन्तरता का आधार राजनीतिक दल एवं उसकी विचारधारा है जो नागरिक को स्वतंत्र नागरिक एवं सजग मतदाता बनाती है। इस पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने उत्तरदाता के परिवारीजनों से राजनीतिक दलों की समझ के विषय में प्रश्न किया और साथ ही इस प्रश्न को उन उत्तदाताओं से भी किया जो 15 से 18 वर्ष आयु समूह के है। हालांकि उत्तरदाता/निदर्श इकाई से प्राप्त किये गये उत्तर इस सारणी का भाग नहीं है। क्योंकि यह उत्तरदाता भी मतदाताओं की श्रेणी में नहीं आते हैं। इस प्रश्न से सम्बन्धित तथ्य निम्नलिखित सारणी का भाग है :–

क्र.सं.	राजनीतिक दलों की जानकारी	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	हां	89	19	18	9	135	67.50
2.	नहीं	37	13	12	3	65	32.50
	योग	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**	**100.00**

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तदाताओं में से 135 उत्तदाताओं (67.50) के परिवारीजन को राजनीतिक दलों के बारे में जानकारी है जबकि शेष 65 उत्तरदाताओ (32.50 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के राजनीतिक दलो के बारे मे जानकारी नही है।

यह साारणी निरूपित करती है कि 135 उत्तरदाताओं (107 बालक एवं 28 बालिकाऐं) के परिवारीजन राजनीतिक दलों के बारे मे जानकारी है जबकि शेष 65 उत्तरदाताओं (49 बालक एवं 16 बालिकाऐं) के परिवारीजन को राजनीतिक दलों के बारे मे जानकारी नही है।

यह सारणी यह भी स्पष्ट करती है कि 135 उत्तरदाताओ (108 चलन बाधित एवं 27 दृष्टिबाधित) के परिवारीजन को राजनीतिक दलों के बारे मे जानकारी है तथा शेष 65 उत्तरदाताओ (50 चलन बाधित एवं 15 दृष्टिबाधित) के परिवारीजन को राजनीतिक दलो के बारे मे कोई जानकारी नही है।

विश्लेषण :–

अधिकांश उत्तरदाताओ के परिवारीजन राजनीतिक दलो के विषय मे परिचित है यद्यपि बडी संख्या मे परिवारों का (32.50 प्रतिशत) राजनीतिक दलो के विषय मे सजग न होना शोधार्थी को चौकाता है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि राजनीतिक लोकतन्त्र की चेतना अभी समस्त भारतीय नागरिको की चेतना का भाग नही है। अनौपचारिक वार्तालाप के दौरान इस प्रश्न पर विस्तार से चर्चा करते समय यह तथ्य प्रकाश मे आये कि भारतीय राष्टीय कांग्रेस एवं भारतीय जनता पार्टी के सभी परिवार (67.50 प्रतिशत) चेतन शील है इनमे से कुछ परिवार समाजवादी पार्टी एवं बहुजन समाज पार्टी के विषय मे परिचित है। अपनी जाति

के प्रतिनिधियों को राजनीतिक दलो के साथ जोडने की कोशिश यह तथ्य स्पष्ट करती है कि राजनीतिक दलो के जातीय चरित्र की चेतना परिवारो मे किसी न किसी रूप मे पाई जाती है।

सारणी क्रमांक 6.11: उत्तरदाताओं एवं परिवारीजनों में सूचना माध्यम एवं पारम्परिक चेतना के मध्य सम्बन्ध से सम्बद्ध सूचना

धर्म, परम्परा एवं रूढ़िवादिता भारतीय सामाजिक व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। अनेक परिवर्तनों के बावजूद परिवार में उत्पन्न होने वाली अनेक समस्याओं जैसे निःशक्तता, निर्धनता, असमय मृत्यु इत्यादि को धार्मिक परम्परागत एवं रूढिवादिता से केन्द्रित कारण परिणाम सम्बन्धों के परिपेक्ष्य में ना केवल विवेचित किया जाता है अपितु इन समस्याओं के समाधान के प्रयास किये जाते है। इस स्थिति का परिणाम कहीं न कहीं वैज्ञानिक दृष्टिकोण के निषेध के रूप में उभरता है। अनेक समाजशात्रीयो ने इन पक्षों की विस्तार से चर्चा की है। इस पृष्ठ भूमि को ध्यान में रखते हुये शोधार्थी ने उत्तरदाता एवं उनके परिवारीजनों से यह जानने का प्रयास किया किया कि वे ज्योतिष, हस्तरेखा, अंकविज्ञान एवं अन्य धार्मिक सांस्कारिक क्रियाकलापों से कितने प्रभावित है और उनके प्रभाव को जानने के लिये वर्तमान संचार साधन कितने उत्तरदायी है। इस प्रश्न से प्राप्त तथ्यों को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है :–

क्र. सं.	टी.वी., रेडियो, समाचार पत्र आदि में पारम्परिक चेतना के बारे में देखा/सुना/पढ़ा है	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	हां	74	17	19	8	118	59.00
2.	नहीं	52	15	11	4	82	41.00
	योग	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**	**100.00**

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 118 उत्तरदाताओं (59 प्रतिशत) ने टी.वी., रेडियो, समाचार पत्र आदि में पारम्परिक चेतना के बारे में देखा/सुना/पढा है जबकि शेष 82 उत्तरदाताओं (41 प्रतिशत) ने टी.वी., रेडियो, समाचार पत्र आदि में पारम्परिक चेतना के बारे में देखा/सुना/पढा नहीं है।

यह सारणी यह भी निरूपित करती है कि 118 उत्तरदाताओं (93 बालक एवं 25 बालिकाऐं) ने टी.वी., रेडियो, समाचार पत्र आदि में पारम्परिक चेतना के बारे में देखा/सुना /पढा है। जबकि शेष 82 उत्तरदाताओं (63 बालक एवं 19 बालिकाऐं) ने टी.वी., रेडियो, समाचार पत्र आदि में पारम्परिक चेतना के बारे में देखा/सुना/पढा नहीं हैं।

उक्त सारणी यह भी स्पष्ट करती है कि 118 उत्तरदाताओं (91 चलन बाधित तथा 27 दृष्टि बाधित) ने टी.वी., रेडियो, समाचार पत्र आदि में पारम्परिक चेतना के बारे में देखा/सुना/ पढा है। जबकि शेष 82 उत्तरदाताओं (67 चलन बाधित बालक एवं 15 दृष्टि बाधित) ने टी.वी., रेडियो, समाचार–पत्र आदि में पारम्परिक चेतना के बारे में देखा/सुना/पढा नहीं है।

विशलेषण :–

सारणी के प्रदत्त तथ्यों से यह विचार निर्मित किया जा सकता है कि बडी संख्या में परिवार उस पारम्परिक एवं संकीर्णतावादी चेतना से सम्बन्धित विभिन्न कार्यक्रमों को या तो टीवी पर देखते है अथवा रेडियो एवं समाचार पत्रों के माध्यम से इनके विषय में चेतना ग्रहण करते है। ऐसे परिवार वर्तमान अध्ययन में आधे से अधिक है। हालांकि उन परिवारों की संख्या (41 प्रतिशत) भी ठीक है, जो इस संकीर्णतावादी/परम्परागत चेतना के सम्पर्क में रेडियो, समाचार पत्र, टीवी इत्यादि के माध्यम से नहीं आते है। सम्पर्क में आने वाले अधिकांश परिवार वे है, जहां चलन बाधित निःशक्त उत्तरदाता है।

यह तथ्य स्पष्ट करते है कि संकीर्णतावादी चेतना से अभी परिवार अपने आपको पृथक नहीं कर पाये है। अनौपचारिक वार्तालाप के दौरान उत्तरदाताओं के अभिभावको ने माना कि वे ज्योतषियों एवं अन्य धार्मिक/जादू टोना/झाडफूँक इत्यादि से सम्बन्धित कथित विशेषज्ञों के पास जाकर संतान के निःशक्तता को समाप्त करने का उपाय करते है। उनका मत था कि निःशक्तता उनके पूर्व जन्मो के कर्मों का परिणाम है। अतः यह कहा जा सकता है कि संचार प्रौद्योगिकी के प्रसार ने पारम्परिक दृष्टिकोण एवं संकीर्णताओं पर अपेक्षित प्रहार

नहीं किये है और पारम्परिकता/आधुनिकता का द्वंद आज भी भारतीय समाज की सांस्कृतिक प्रणाली का एक ऐसा महत्वपूर्ण भाग है, जो वैज्ञानिक/तार्किक दृष्टिकोण से सम्बन्धित चेतना के प्रचार प्रसार में अवरोध का काम करता है।

सारणी क्रमांक 6.12: उत्तरदाताओं से पूजा पाठ करने से सम्बद्ध सूचना

सामाजिक व्यवस्था में अधिकाश व्यक्ति किसी न किसी धर्म के अनुयायी होते है, जिसके तहत वे किसी न किसी धार्मिक आस्था में विश्वास करते है। कई वार विभिन्न कारणों से विभिन्न व्यक्तियों कि धार्मिक आस्था कम या अधिक पायी जाती है। उनमें उत्पन्न हीन भावना भी कारण हो सकती हैं। कई बार देखा जाता है कि समाज में उपेक्षित/प्रताडित व्यक्ति की धर्म के प्रति रूचि उत्पन्न हो जाती है। निःशक्त अपनी शारीरिक कमी के चलतें प्रारम्भ से ही परिवार, समाज एवं शिक्षा व्यवस्था के द्वारा उपेक्षित किये जातें है। इस अध्ययन से हमें यह जानकारी सम्भव हो सकती है कि वास्तव में निःशक्तों के प्रति परिवार, समाज एवं शिक्षा संस्थाओं द्वारा किया गया व्यवहार उचित है या अनुचित है। इसी पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने उत्तरदाताओं से धार्मिक भावना से सम्बद्ध प्रश्न किये। इस प्रश्न से प्राप्त तथ्यों को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया है :–

क्र. सं.	क्या आप पूजा पाठ करतें है।	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	हां (नियमित रूप से)	75	19	17	7	118	59.00
2.	हां (कभी कभी विशेष अवसरों पर)	33	9	7	3	52	26.00
	नहीं (बिल्कुल नहीं)	18	4	6	2	30	15.00
	योग	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**	**100.00**

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 118 उत्तरदाता (59 प्रतिशत) नियमित रूप से पूजा पाठ करते हैं। 52 उत्तरदाता (26 प्रतिशत) कभी कभी

विशेष अवसरों पर पूजा पाठ करते हैं और जबकि शेष 30 उत्तरदाता (15 प्रतिशत) कभी भी पूजा पाठ नहीं करते है।

यह सारणी यह निरूपित करती है कि 118 उत्तरादाता (94 चलन बाधित एवं 24 दृष्टि बाधित) पूजा पाठ नियमित रूप से करतें है। 52 उत्तरादता (42 चलन बाधित व 10 दृष्टि बाधित) कभी कभी विशेष अवसरो पर पूजा पाठ करतें। जबकि शेष 30 उत्तरदाता (22 चलन बाधित एवं 8 दृष्टि बाधित) कभी भी पूजा पाठ नहीं करतें है।

विश्लेषण :–

निःशक्तता चूँकि अधीनस्थता एवं निर्भरता की संस्कृति को जन्म देती है और धार्मिक विचार के संदर्भ में यह जीवन के पूर्व कर्मों का परिणाम है कि चेतना के कारण निःशक्तता एवं धार्मिक क्रियाकलाप के मध्य सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। अधिकांश उत्तरदाता (85 प्रतिशत) नियमित रूप से अथवा विशेष अवसरों पर विभिन्न प्रकार की पूजा–पद्धतियों के माध्यम से ईश्वरीय आस्था को व्यक्त करते हैं।हालांकि उत्तरदाताओं का एक छोटा भाग (15 प्रतिशत) धार्मिक क्रियाकलापों में सहभागिता नहीं करता है।सहभागिता करने वाले उत्तरदाताओं से अनौपचारिक बातचीत में अनेक महत्वपूर्ण उत्तर प्राप्त हुए, जैसे –

- वर्तमान जन्म में की गई धार्मिक क्रियायें एवं पूजा–पद्धतियों के फलस्वरूप भावी जीवन में निःशक्तता का सामना नहीं करना पड़ेगा।
- पूजा इसलिए सम्पन्न की जा रही है ताकि कुछ समय के लिए अपने दुःख–दर्द को अपनी स्मृति से पृथक किया जा सके।
- धार्मिक क्रियाकलापों के माध्यम से ईश्वरीय सत्ता से क्षमा प्रदान करने की प्रार्थना की जाती है और जल्द स्वस्थ होने की आशा को निर्मित किया जाता है।
- ईश्वरीय सत्ता से अपेक्षा की जाती है कि वह उत्तरदाता को और उसके पारिवारीजन को वह शक्ति मिले, जिसके माध्यम से निःशक्तता की समस्या का सामना करने का साहस उत्पन्न हो सके।
- वे सामाजिक इकाईयां, जो धार्मिक क्रियाकलापों में सहभागिता नहीं करती है, का तर्क है कि ईश्वर ने उन्हें आवश्यक रूप से दण्डित किया है, जबकि उनका कोई दोष नहीं था। ईश्वर को सबके साथ समानता का व्यवहार करना चाहिये और दण्ड की स्थिति में क्षमा भी करना चाहिये। जब ऐसा हुआ ही नहीं तो इसका अर्थ है कि

या तो ईश्वर नहीं है अथवा वह चूँकि दण्ड दे चुका है। अतः अब धार्मिक क्रियाकलाप करने का कोई अर्थ नहीं रहता है।

सारणी क्रमांक 6.13: उत्तरदाताओं के साथ परिवारीजन/नातेदारों के व्यवहार से सम्बद्ध सूचना

परिवार के सदस्यों एवं नातेदारों के मध्य की अन्तः किया और उनकी निरन्तरता ऐसे सामाजिक सम्बन्धों को निर्मित करती है, जिनमे भावनाओ से सम्बन्धित समस्त पक्ष सम्मिलित होते है। ये अन्तः सम्बन्ध अस्वस्थ सामाजिक इकाईयो और इस शोध मे निःशक्त सामाजिक इकाईयो को एक ऐसा पारिवारिक परिवेश देते है जो अस्वस्थ होने की चेतना और अस्वस्थ भूमिकाओ के साथ समायोजन के लिए प्रेरित करता है। ऐसे परिवेश की अनुपस्थिति तनाव असन्तुलन नैराशय एवं आक्रामकता को जन्म देती है। इस पक्ष को ध्यान मे रखकर शोधार्थी ने परिवारीजन एवं नातें दारों के, उनके प्रति व्यवहार की प्रकृति से सम्बद्ध प्रश्न को उत्तरदाताओं के सम्मुख प्रस्तुत किया। इस प्रश्न से प्राप्त उत्तरो को निम्न लिखित सारणी मे प्रस्तुत किया गया है :–

क्र. सं.	परिवारजन/ नातेदारों के व्यवहार	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	आत्मिक व्यवहार	26	3	8	1	38	19.00
2.	सामान्य व्यवहार	32	12	8	3	55	27.50
3.	दोगला एवं रूखा व्यवहार	68	17	14	8	107	53.50
	योग	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**	**100.00**

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में 38 उत्तरदाता (19 प्रतिशत) के साथ उनके परिवारीजन/नातेदार आत्मिक व्यवहार करते है। 55 उत्तरदाताओं (27.50 प्रतिशत) के साथ उनके परिवारीजन/नातेदार सामान्य व्यवहार करते हैं। एवं शेष

107 उत्तरदाताओं (53.50 प्रतिशत)के साथ उनके परिवारी जन/नातेदार दोगला एवं रूखा व्यवहार करते है।

उपर्युक्त सारणी निरूपित करती है कि 38 उत्तरदाताओं (34 बालक एवं 04 बालिकाओ) के परिवारीजन/नातेदार उनके साथ आत्मिक व्यवहार करते है। 55 उत्तरदाताओं (40 बालक एवं 15 बालिकाऐं) के परिवारीजन उनके साथ सामान्य व्यवहार करते है। तथा शेष 107 उत्तरदाताओं (82 बालक एवं 25 बालिकाऐं) के परिवारीजन/ नातेदार उनके साथ दोगला व रूखा व्यवहार करते है।

यह सारणी यह भी स्पष्ट करती है कि 38 उत्तरदाताओ (29 चलन बाधित एवं 9 दृष्टिबाधित) के साथ उनके परिवारीजन/नातेदार आत्मिक व्यवहार करते है। 55 उत्तरदाताओं (44 उत्तरदाता चलन बाधित तथा 11 दृष्टि बाधित) के साथ उनके परिवारीजन/नातेदार सामान्य व्यवहार करते है। एवं शेष 107 उत्तरदाताओं (85 उत्तरदाता चलन बाधित एवं 22 उत्तरदाता दृष्टि बाधित) के साथ उनके परिवारीजन/नातेदार दोगला एवं रूखा व्यवहार करते है।

विश्लेषण :–

सारणी में नीहित तथ्य व्यक्त करते है कि अधिकांश परिवार निःशक्त उत्तरदाताओं के साथ ऐसा व्यवहार करते है जो नैराशय, भावनात्मक निर्बलता, वंचन इत्यादि को इन उत्तरदाताओं के व्यक्तित्व का भाग बनाता है। यह व्यवहार अत्यंत रूखा एवं द्विस्तरीय/अंतर्विरोध तथा उपेक्षाओं से निर्मित होता है। इन उत्तरदाताओं का यह मत है कि सामान्य व्यवहार भी लगभग इस रूखे व्यवहार के निकट है। कुछ परिवार ऐसे है जो भावनात्मक, सहयोगी एवं उत्साह के अव्यवों से निर्मित होते है। और निःशक्तजन इकाईयों को अपनत्व का तथा सामूहिक लगाव का भाव प्रदर्शित करते है। यह सारणी इस दृष्टि को संकेत देती है कि निःशक्तता को एक स्वाभाविक व्याधि के रूप में नहीं स्वीकाराता जाता है और निःशक्तता की शिकार ईकाइयां प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से परिवारीजनों एवं नातेदारों के लिये एक बोझ के रूप में उभर आती है। यह पक्ष अस्वस्थ्य होने की स्थिति में भारतीय परिवार में उत्पन्न हुये उस द्वंद का परिचायक है जिसमें मनोभावनात्मक हिंसा के अवयव अस्वस्थ्य इकाई के संदर्भ में उपस्थित हो जाते है।

सारणी क्रमांक 6.14 क्रियाओं को सम्पन्न करने हेतु परिवारीजनों के द्वारा उत्तरदाताओं के व्यवहार मे सहायता से सम्बद्ध सूचना

निःशक्तजन सामाजिक इकाई अपनी सावयवी अनुप्रयुक्तता के कारण दैनिक जीवन की अनेक क्रियाओं को किसी अन्य सदस्य विशेषतः परिवारीजन की सहायता के विना करने में सक्षम नहीं होते है। निर्भरता का यह भाव मनोभावनात्मक एवं सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टि से अनेक वास्तविकताओं को उत्पन्न करता है और उस अन्तः सम्बद्धता को दर्शाता है जो निःशक्तजन परिवार के सदस्यों के मध्य एक स्वरूप ग्रहण करती है। इस पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने उत्तरदाताओं को उन दैनिक क्रियाओं की जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की जिन्हें सम्पन्न करने के लिये परिवारजनों की सहायता आवश्यक हो जाती है। इस प्रश्न से प्राप्त तथ्य निम्नलिखित सारणी में व्यक्त किये गये है :–

क्र. सं.	वे व्यवहार जिनमें परिवारीजन सहायता करते	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	पढ़ाने में	62	14	30	12	118	59.00
2.	टॉयलेट लाने ले जाने	84	16	6	3	109	54.50
3.	नहलाने में	21	6	2	1	30	15.00
4.	खाना खिलाने में	12	5	3	1	21	10.50
5.	किसी बात को बताने में	8	5	8	6	27	18.50
6.	स्कूल लाने ले जाने में	44	16	30	12	102	56.98

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 118 उत्तरदाताओं (59 प्रतिशत) को पढाने में उनके परिवारीजन से सहायता की आवश्यकता पडती है जवकि शेष उत्तरदाता 72 उत्तरदाताओं (41 प्रतिशत) को पढाने में उनके परिवारी जन की

आवश्यकता नही पढती है। 200 उत्तरदाताओं में से 109 उत्तरदाता (54.50 प्रतिशात) को टॉयलेट लाने ले जाने में उनके परिवारी जन की सहायता की आवश्यकता पडती है।

जबकि शेष 91 उत्तरदाताओं (45.50 प्रतिशत) को टॉयलेट लाने ले जाने में उनके परिवारी जन की सहायता की आवश्यकता नहीं पडती है। 200 उत्तरदाताओं में से 30 उत्तरदाताओं को (15 प्रतिशत) को नहलाने में उनके परिवारीजन की सहायता की आवश्यकता पडती है। जवकि शेष 170 उत्तरदाताओं (85 प्रतिशत) को नहलाने में उनके परिवारीजन की सहायता आवश्यकता नही पडती है। 200 उत्तरदाताओं में से 21 उत्तरदाताओ (10.50 प्रतिशत) को खाना खिलाने में उनके परिवारी जन की सहयता की आवश्यकता पडती है जबकि शेष 179 उत्तरदाताओं (89.50 प्रतिशत) को खाना खिलाने में उनके परिवारीजन की सहायता की आवश्यकता नहीं पडती है।

200 उत्तरदाताओं में से 27 उत्तरदाताओं (18.50 प्रतिशत) को किसी बात को बताने में उनके परिवारीजन की सहायता की अवश्यकता पडती है। तथा जबकि शेष 173 उत्तरदाता (81.50 प्रतिशत) को किसी बात को बताने में उनके परिवारीजन की सहायता की आवश्यकता नहीं पडती है। कुल 200 उत्तरदाताओं में से 179 उत्तरदाता विद्यालय जाते है। विद्यालय जाने वाले 179 उत्तरदाताओं में से 102 उत्तरदाताओं (56.99 प्रतिशत) को विद्याालय लाने ले जाने में उनके परिवार जनों की सहायता की आवश्यकता पडती है। जबकि शेष 77 उत्तरदाताओं (43.01 प्रतिशत) को विद्यालय लाने ले जाने में उनके परिवारीजनों की सहायता की आवश्यकता पडती है।

विश्लेषण :–

सारणी से स्पष्ट होता है कि दैनिक जीवन की विभिन्न क्रियाओं जैसे अध्ययन, टॉयलेट लाने ले जाने, नहलाने, भोजन की क्रिया, विद्यालय लाने ले जाने एवं किसी बात को समझाने में परिवारीजनों की सहायता की आवश्यकता पडती है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि एक सुचारू जीवन यापन के लिये निःशक्त इकाईयों को निर्भरता की प्रक्रिया से गुजरना पडता है। यह आवश्यकता व्यक्तित्व के विकास में किसी न किसी सीमा पर बाधक बन जाती है, क्योंकि परिवारीजनों के व्यवहार एवं विभिन्न अवसरों पर उनका क्रोधित हो जाना निःशक्त इकाईयों को असहायता का भाव उत्पन्न करवाता है। यह स्थिति, यह स्पष्ट करती है कि निःशक्त इकाईयों के साथ यदि परिवारीजन एवं नातेदार उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के संदर्भ में संतुलित सजग एवं भावनात्मकता के सकारात्मक पक्षों के साथ व्यवहार करें तो निःशक्त इकाईयों को न केवल सामाजिक आर्थिक विकास का भाग बनाया जा

सकता है, अपितु उनमें नीहित सृजनात्मकता को विकासात्मक संबन्ध के साथ जोडा जा सकता है।

सारणी क्रमांक 6.15: उत्तरदाताओं का विद्यालय जाने से सम्बद्ध सूचना

एक बालक के जीवन का निर्माण निश्चित स्प से शिक्षा के द्वारा ही पूर्ण हो सकता है निःशक्तजन सामाजिक उपेक्षा के चलते वडी संख्या में विद्याालय नहीं जा पातें है। अशिक्षा के कारण उन्हे न तो सरकारी योजनाओ की जानकारी मिल पाती हैं। न ही देश के विकास मे अपना योगदान दे पाते है। अत निःशक्त जनो के विद्यालय जाने अथवा न जाने के अध्ययन से हमें उनकी सामाजिक, आर्थिक स्थिति के बारे मे जानकारी प्राप्त हो सकती है। तथा उन कारणों को खोजा जा सकता है जिनके कारण ये समाज कि मुख्य धारा से पृथक है। इसी पक्ष को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी ने उत्तरदाताओ से उनके विद्याालय जाने से सम्बद्ध में सूचना संकलित करने के लिए प्रश्न किये। इस प्रश्न से प्राप्त तथ्यो को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है :–

क्र. सं.	क्या आप विद्यालय जाते हैं	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बलिका	बालक	बालिका		
1.	हां	115	28	25	11	179	89.50
2.	नहीं	11	4	5	1	21	10.50
	योग	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**	**100.00**

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है, कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 179 उत्तरदाता (89.50 प्रतिशत) विद्यालय जाते हैं। तथा शेष 21 उत्तरदाता (10.50 प्रतिशत) विद्यालय नहीं जाते हैं।

यह सारणी यह भी निरूपित करती है, कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 179 उत्तरदाता में 140 बालक एवं 39 बालिकाऐं विद्यालय जाते हैं। शेष 21 उत्तरदाताओं में 16 बालक एवं 5 बालिकाऐं विद्यालय नहीं जाते हैं।

इस सारणी से यह भी स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 179 उत्तरदाता (143 चलन बाधित एवं 36 दृष्टि बाधित) विद्यालय जाते है। तथा शेष 21 उत्तरदाता (15 चलन बाधित एवं 6 दृष्टि बाधित) विद्यालय नहीं जाते है।

विश्लेषण :–

निःशक्तता के साथ जीवन संघर्ष में शिक्षा की उपलब्धता एक महत्वपूर्ण साधन है। शिक्षा सम्बन्धी चेतना का ना केवल व्यक्तित्व को स्वायत्तशासी बनाने में सहायता करती है, अपितु सामाजिक व्यवहार की प्रकृति में सुधार, प्रतिष्ठा, उन्नयन की प्रक्रिया के एक उपकरण के रूप में योगदान भी करती है।

सारणी का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि अधिकांश उत्तरदाता लगभग 79.0 प्रतिशत विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। हालांकि इन उत्तरदाताओं का यह मत है कि शिक्षकों के व्यवहार में हतोत्साहन एवं उपेक्षा के तत्व होते हैं जो शिक्षा के प्रति निःशक्त उत्तरदाताओं के उत्साह को कम करता है। शिक्षा का अधिकार चूँकि मूलभूत अधिकार है। अतः सभी उत्तरदाताओं को विद्यालय में सामान्य विद्यार्थी की भांति ना केवल स्थान मिलना चाहिये, अपितु इनके लिये शिक्षाशास्त्र एवं पाठ्यक्रम में भी उपर्युक्त संशोधन आवश्यक है।

निःशक्त बालिकाएं, परिवार एवं विद्यालय दोनों में पितृसत्तात्मकता की संस्कृति का सामना करती है। अतः उनके लिये लोकतांत्रिकरण की प्रक्रिया का संस्थागत स्वरूप राजकीय प्रयास का भाग हो, का तर्क उत्तरदाताओं के प्रति उत्तर के आधार पर निर्मित किया जा सकता है।

सारणी क्रमांक 6.16 उत्तरदाताओं के विद्यालय की प्रकृति

बालकों को उत्तम शिक्षा दिया जाना आवश्यक है। यह विद्यालय के स्तर पर निर्भर करता है। आम धारणा की तरह हमारे देश में राजकीय विद्याालयों का प्रायः घटिया स्थल माना जाता है। इसी कारण अमीर और एवं बडे परिवारों के बच्चे उनमें अध्ययन नही करते है। विद्यालय जाने वाले निःशक्तजन किस प्रकार के विद्यालय में अध्ययनरत है, इससे उनके शैक्षणिक स्थल की जानकारी प्राप्त हो सकती है। इसी पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने उत्तरदाताओं से उनके विद्यालय के प्रकार के सम्बद्ध सूचना संकलित करने हेतु प्रश्न किये। इस प्रश्न से प्राप्त तथ्यों को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है :–

क्र.सं.	विद्यालय की प्रकृति	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	राजकीय	105	18	12	5	140	78.21
2.	निजी	10	10	13	6	39	21.79
	योग	**115**	**28**	**25**	**11**	**179**	**100**

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 179 उत्तरदाता विद्यालय जाते है। 179 उत्तरदाताओं में से 140 उत्तरदाताओं (78.21 प्रतिशत) के विद्यालय की प्रकृति राजकीय है। तथा शेष 39 उत्तरदाताओं के (21.79 प्रतिशत) के विद्यालय की प्रकृति निजी है। तथा भरतपुर क्षेत्र में एक भी निःशक्तजन विद्यालय इन श्रेणियों में नहीं है।

इस सारणी से विवेचित होता है कि 179 उत्तरदाताओं (127 बालक एवं 23 बालिकाऐं) के विद्यालय की प्रकृति राजकीय है तथा 39 उत्तरदाताओं (23 बालकों एवं 16 बालिकाऐं) के विद्यालय की प्रकृति निजी है।

यह सारणी यह भी निरूपित करती है कि कुल 179 उत्तरदताओं में से 140 उत्तरदाताओं (123 चलन बाधित एवं 17 दृष्टि बाधित) के विद्यालय की प्रकृति राजकीय है। तथा शेष 39 उत्तरदताओं (20 चलन बाधित एवं 19 दृष्टि बाधित) के विद्यालय की प्रकृति निजी है।

विश्लेषण :–

भारतीय समाज में निजी विद्यालय की विभिन्न श्रेणियां एवं राजकीय विद्यालयों की विभिन्न श्रेणियां शैक्षणिक संस्थानों में संस्तरण संरचना को निर्मित करती है। केन्द्रीय सरकार द्वारा संचालित विद्यालय, केन्द्रीय शिक्षा बोर्डों के द्वारा संचालित विद्यालय, सैनिक विद्यालय, नवोदय विद्यालय एवं राज्य सरकार द्वारा संचालित विद्यालय और तत्पश्चात् हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा के राजकीय माध्यम के विद्यालय संस्तरण को निर्मित करते हैं। इनके अतिरिक्त निःशक्तजनों के लिये विधिवत् रूप से विद्यालय अलग से खुले जाने का भी प्रावधान है।

वहीं निजी विद्यालयों की भी अनेक श्रेणियां विद्यमान है। सारणी संकेत देती है कि निःशक्त उत्तरदाता बड़ी संख्या में राजकीय विद्यालयों में अध्ययन करते हैं, जबकि निजी विद्यालयों में भी निःशक्त उत्तरदाता सीमित संख्या में प्रवेश लेते हैं। राजकीय विद्यालयों में जाने वाला उत्तरदाताओं का मत है कि निर्धनता एवं निजी विद्यालयों में तुलात्मक रूप से अधिक उपेक्षा के कारण वे राजकीय विद्यालयों को चुनते हैं। हालांकि निजी विद्यालयों में अध्ययन करने वाला उत्तरदाता उपेक्षामूलक व्यवहार का नकार करते हैं।

शोधार्थी ने शिक्षकों के साथ अनौपचारिक वार्तालाप के दौरान यह पाया कि शिक्षकों का इन निःशक्त उत्तरदाताओं के प्रति व्यवहार दयामूलक है। वे इन उत्तरदाताओं को प्रोत्साहन नहीं देते हैं, अपितु धार्मिक विचार देकर इन उत्तरदाताओं की चेतना में इस भाव को जन्म देते हैं कि निःशक्तता ईश्वरीय दण्ड है। यह मत शिक्षा के माध्यम से इन उत्तरदाताओं को स्वायत्तशासी बनने की प्रक्रिया में सबसे बड़ी बाधा बन सकता है।

सारणी क्रमांक 6.17: उत्तरदाताओं के साथ मित्र/सहपाठी के व्यवहार से सम्बद्ध सूचना

एक बालक का व्यवहार विद्याालय में उसके सहपाठी एवं मित्रों के व्यवहार से प्रभावित होता है निःशक्त जनों को निश्चित रूप से अपने सहपाठी एव ंमित्रों की उपेक्षा का शिकार होना पडता है जिसके कारण उनके अन्दर हीन भावना उत्पन्न होंने की पूर्ण सम्भावना रहती है। इसलिए यह आवश्यक है कि इनके प्रति सहपाठी एवं मित्रो के व्यवहार का अध्ययन किया जाये जिससे यह जानकारी प्राप्त हो सके की इनकों एकांकी एवं हीनता ग्रसित करने में उपेक्षित व्यवहार भी कितना बढा कारण है। इसी पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने उत्तरदाताओं से उनके सहपाठी एवं मित्रों द्धारा उनके प्रति किये जाने वाले व्यवहार से सम्बद्ध सूचना संकलित करने हेतु अनौपाचरिक वार्तालाप के माध्यम से प्रश्न किये। इस प्रश्न से प्राप्त तथ्यों को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है :–

क्र. सं.	मित्र/सहपाठी का व्यवहार	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	आत्मिक व्यवहार	10	2	5	1	18	9.00
2.	सामान्य व्यहवार	38	9	7	2	56	28.00
	रूखा एवं हीन व्यवहार	78	21	18	9	126	63.00
	योग	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**	**100.00**

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट हैं कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 18 उत्तरदाताओं (9 प्रतिशत) के साथ शिक्षक आत्मिक व्यवहार करते हैं। 56 उत्तरदाताओं (28 प्रतिशत) के साथ शिक्षक सामान्य व्यवहार तथा शेष 126 उत्तरदाताओं (63 प्रतिशत) के साथ शिक्षक रूखा एवं हीन व्यवहार करते हैं।

यह सारणी विवेचित करती है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 18 उत्तरदाताओं (15 बालक एवं 3 बालिकाऐं) के साथ शिक्षक आत्मिक व्यवहार करते हैं। 56 उत्तरदाताओं (45 बालक एवं 11 बालिकाऐं) के साथ शिक्षक सामान्य व्यवहार करते हैं तथा शेष 126 उत्तरदाताओं (96 बालक एवं 30 बालिकाऐं) के साथ शिक्षक रूखा एवं हीन व्यवहार करते हैं।

यह सारणी यह भी निरूपित करती है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 18 उत्तरदाताओं (12 चलन बाधित एवं 6 दृष्टिबाधितं) के साथ शिक्षक आत्मिक व्यवहार करते हैं। 56 उत्तरदाताओं (47 चलन बाधित वं 9 दृष्टिबाधितं) के साथ शिक्षक सामान्य व्यवहार तथा शेष 126 उत्तरदाताओं (99 चलन बाधित व 27 दृष्टि बाधित) के साथ शिक्षक रूखा एवं हीन व्यवहार करते हैं।

विश्लेषण :–

निःशक्तजन की अपने मित्रों के साथ अन्तःक्रिया, अनेक अन्तर्विरोधों का प्रतिनिधित्व करती है। वे मित्र जो निःशक्त हैं और जो निःशक्त नहीं हैं, के साथ उत्तरदाताओं की अन्तःक्रिया उन अन्तर्विरोधों को अभिव्यक्त करती है। वे मित्र जो निःशक्त है, के साथ अन्तःक्रिया में आत्मिकता एवं भावनात्मक सम्बन्धता के तत्व विद्यमान हैं। वे मित्र जो निःशक्त नहीं हैं, के साथ अन्तःव्यवहार में उत्तरदाताओं के अनुसार अनेक अवसरों पर रूखा व्यवहार अभिव्यक्त हो जाता है और वे अपने व्यवहार में किसी ना किसी स्तर पर अधीनस्थता की अभिव्यक्ति करते हैं। इसका स्पष्ट संकेत है कि उत्तरदाताओं की मित्रों के साथ भूमिका अथवा अन्तःव्यवहार उत्तरदाताओं के व्यक्तित्व के विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में तीन प्रकार के हैं –

1. वे व्यवहार जो आत्मीयता का परिचायक है और हम की भावना का प्रतिनिधित्व करता है। इस व्यवहार में अनौपचारिक निकटता अभिव्यक्त होती है।

2. सामान्य व्यवहार, जिसमें असामान्यता का भाव तो नहीं है, परन्तु व्यवहार में अनौपचारिक निकटता अर्थात् भावनात्मकता का स्तर निम्न है जो इन व्यवहारों को सामान्य श्रेणी में ले आता है।

3. उपेक्षित/हीन प्रकृति का व्यवहार इस व्यवहार के अन्तर्गत सामान्यतः अधीनस्थता एवं स्टिग्मा के तत्व सम्मिलित होते हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि निःशक्त सामाजिक इकाईयों के साथ निःशक्तता एवं सामान्य व्यक्तित्व के मित्रों द्वारा किये गये व्यवहारों से समानता एवं संस्तरण की अभिव्यक्ति होती है जो कि सामाजिक स्पेस में अन्तःक्रियाओं के लघु स्पेसेज को निर्मित करते हैं।

सारणी क्रमांक 6.18ः उत्तरदाताओं के साथ शिक्षकों के व्यवहार से सम्बद्ध सूचना

परिवार एवं नातेदारों से भिन्न शिक्षक एक ऐसी सामाजिक इकाई है जो औपचारिक परिवेश का हिस्सा है। शिक्षक से विद्यार्थी के साथ माता पिता जैसे व्यवहार की कल्पना तो की जा सकती है अथवा अपेक्षा की जाती है। परन्तु ऐसा संभव नहीं है। क्योंकि परिवार एवं विद्यालय क्रमशः औपचारिक एवं अनौपचारिक परिवेश का प्रतिनिधित्व करते है। निःशक्त उत्तरदाताओ के साथ शिक्षक का व्यवहार उसे जीवन की अनेक वास्तविकताओं से एवं जीवन संघर्ष से परिचित करा सकता है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने

उत्तरदाताओं शिक्षकों के व्यवहार के विषय में प्रश्न किया। जिससे सम्बन्धित तथ्यों को निम्न सारणी में प्रस्तुत किया :–

क्र. सं.	शिक्षक का व्यवहार	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	आत्मिक व्यवहार	16	4	3	2	25	13.97
2.	दोगला एवं रूखा व्यवहार	29	9	5	4	47	26.25
3.	सामान्य व्यवहार	70	15	17	5	107	59.78
	योग	**115**	**28**	**25**	**11**	**179**	**100**

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 179 उत्तरदाताओं में से 25 उत्तरदाताओं (13.97 प्रतिशत) के साथ शिक्षक आत्मिक व्यवहार, करतें है। 47 उत्तरदाताओं (26.25 प्रतिशत) के साथ शिक्षक दोगला एवं रूखा व्यवहार करतें है। और शेष 107 उत्तरदाताओं (59.78 प्रतिशत) के साथ शिक्षक सामान्य व्यवहार करतें है।

यह सारणी यह भी निरूपित करती है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 25 उत्तरदाताओं (20 चलन बाधित एवं 5 दृष्टि बाधित) के साथ शिक्षकों का आत्मिक व्यवहार, है। 47 उत्तरदाताओं (38 चलन बाधित एवं 9 दृष्टि बाधित) के साथ शिक्षकों का दोगला एवं रूखा व्यवहार है। और शेष 107 उत्तरदाताओं (85 चलन बाधित एवं 22 दृष्टि बाधित) के साथ शिक्षकों का सामान्य व्यवहार हैं।

विश्लेषण :–

अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि 21 विधार्थी (10.50 प्रतिशत) विद्यालय नहीं जाते है जबकि शिक्षा के अधिकार के अन्तर्गत 6 वर्ष से लेकर 14 वर्ष तक विद्यार्थियों का विद्यालय में अध्ययन करना उनका मौलिक अधिकार है। विद्यालय जाने वाले विद्यार्थियों मे से अधिकांश का मत है कि निःशक्तता के बावजूद उनके साथ आत्मिक अथवा सामान्य व्यवहार किया जाता है अर्थात इन्हें निर्भरता/अधीनस्थता की चेतना का भाग नहीं बनाया जाता है।

वे शिक्षक जो सामान्य व्यवहार करते है, उत्तरदाताओं के जीवन संघर्ष की प्रेरणा देते है। जबकि कुछ शिक्षक आत्मिक व्यवहार के द्वारा उनके व्यक्तिव में भावनात्मक संतुलन को उत्पन्न करते है। कुछ शिक्षक इन निःशक्त उत्तरदाताओं के साथ उपेक्षामूलक व्यवहार करते है अर्थात शिक्षकों के एक भाग निःशक्तता को संस्तरण एवं असमानता के अवयव के रूप में स्वीकारता है और इन इकाईयों को जीवन संघर्ष एवं मनोबल की दृष्टि से हतोत्साहित करता है। यह कहा जा सकता है कि निःशक्त बच्चों के साथ शिक्षक कैसा व्यवहार करे। उनका शिक्षा शास्त्र कैसा हो और सामान्य विद्यार्थियों के साथ निःशक्त विद्यार्थियों के अन्तःक्रियात्मक स्वरूप कैसे हो, के प्रशिक्षण को संस्थागत स्वरूप अथवा नीतिगत रूप देने की आवश्यकता है।

सारणी क्रमांक 6.19 निःशक्तता एवं अभिभावकीय उपेक्षा के मध्य सम्बंधः उत्तरदाताओं के अनुभव

कई बार अक्षम व्यक्ति को समाज ही नहीं परिवारीजन भी एक बोझ की तरह समझतें है। अधिक निःशक्तता से ग्रसित वालक जिनसे अधिक शारीरिक मानसिक कार्य करने की अपेक्षा नही होती है तो उनके माता पिता व परिवारीजन का व्यवहार उनके प्रति उपेक्षा पूर्ण होने की सम्भावना रहती है। अत विभिन्न प्रकार की निःशक्तता के अध्ययन से परिवारीजनो द्वारा उनके प्रति की जाने वाली उपेक्षा की जानकारी किया जाना आवश्यक है। इसी पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने उत्तरदाताओ से उनके अभिभावकीय व्यवहार के सम्बन्ध में सूचना संकलित करने के लिए प्रश्न किये। इस प्रश्न से प्राप्त तथ्यों को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है :–

क्र. सं.	क्या निःशक्तता के कारण माता पिता व परिवारीजन आपकी उपेक्षा करते है	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	हां	86	22	23	9	140	70.00
2.	नहीं	40	10	7	3	60	30.00
	योग	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**	**100.00**

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से यह स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 140 उत्तरदाताओं (70 प्रतिशत) के निःशक्त होने के कारण उनके माता पिता एवं परिवारीजन उनसे उपेक्षा पूर्ण व्यवहार करते है। जबकि 60 उत्तरदाताओं (30 प्रतिशत) के निःशक्त होने के कारण उनके माता पिता एवं परिवारीजन उनसे उपेक्षा पूर्ण व्यवहार नहीं करते है।

इस सारणी से यह भी स्पष्ट है कि 140 उत्तरदाताओं` (109 बालक एवं 31 बालिकाऐं) के निःशक्त होने के कारण उनके माता पिता एवं परिवारीजन उनसे उपेक्षा पूर्ण व्यवहार करते है। जबकि शेष 60 उत्तरदाताओं (47 बालक व 13 बालिकाऐं) के निःशक्त होने के कारण उनके माता पिता व परिवारीजन उनसे उपेक्षा पूर्ण व्यवहार नहीं करते है।

यह सारणी निरूपित करती है कि 140 उत्तरदाताओं में 108 चलन बाधित एवं 32 दृष्टि बाधित निःशक्त होने के कारण उनके माता पिता व परिजन उनसे उपेक्षा पूर्ण व्यवहार करते है। जबकि शेष 60 उत्तरदाताओं (50 चलन बाधित व 10 दृष्टि बाधित) के निःशक्त होने के कारण उनके माता पिता व परिवारीजन उनसे उपेक्षा पूर्ण व्यवहार नहीं करते है।

विश्लेषण :–

निःशक्तता एक सामाजिक तथ्य के रूप में ना केवल सम्बद्ध सामाजिक इकाईयों को, अपितु समाज के विभिन्न संरचनात्मक तथ्यों, जैसे परिवार को भूमिकाओं के संदर्भ से प्रभावित करती है।

सारणी स्पष्ट करती है कि एक बड़ी संख्या में निःशक्त उत्तरदाता, माता–पिता तथा पारिवारिक जनों के साथ अन्तःक्रिया में उपेक्षा के भाव का अनुभव करते हैं। ऐसा अनुभव न करने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 30 प्रतिशत है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि परिवारीजन निःशक्त सामाजिक इकाईयों के साथ समायोजन की प्रक्रिया में असफल हो जाते हैं, क्योंकि निःशक्तजन इकाईयों के साथ प्रत्येक परिवारीजन को विभिन्न अवसरों पर विशिष्ट व्यवहार करने होते हैं। यह विशिष्ट व्यवहार अनेक प्रयासों के बावजूद सामान्य नहीं हो पाते हैं। हालांकि अनौपचारिक वार्तालाप के दौरान उत्तरदाताओं के पारिवारिक सदस्य यह तर्क देते हैं कि वे अपनी तरफ से समुचित प्रयास करते हैं, परन्तु निःशक्तता के कारण उत्पन्न होने वाली हीनता के व्यवहार में चिड़चिड़ापन के कारण समायोजन की प्रक्रिया का क्रियान्वयन आसान नहीं होता है। परिवारीजन यह भी स्वीकार करते हैं कि अनेक अवसरों पर निःशक्त

इकाईयों की हठधर्मिता उनकी सामान्य व्यवहार में सहनशीलता को अचानक कम कर देती है। परिणामस्वरूप तनाव की स्थितियां उत्पन्न हो जाती है।

सारणी क्रमांक 6.20 : उत्तरदाताओं के निःशक्त होने के कारण अनुभव की गई बाधाओं से सम्बद्ध सूचना

निःशक्तता किसी भी बालक के किसी न किसी अंग की कमजोरी के कारण उत्पन्न होती है जिसके कारण निःशक्तजन को अपने जीवन यापन या अन्य गतिविधियो के सम्पादन करने में निश्चित रूप से कुछ वाधाओ का सामना करना पडता है। इससे हमें यह जानकारी प्राप्त हो सकती है कि इन बाधाओं के सम्वन्ध में उनके क्या अनुभव रहें, जिनके आधार पर उनके समाधान के उपाय खोजे जाना सम्भव हो सकता है। इसी पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने उत्तरदाताओं से उनके निःशक्त होने के कारण अनुभव की गई बाधाओं से सम्बन्धित प्रश्न किये। इस प्रश्न से प्राप्त तथ्यों को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया हैः–

क्र. सं.	निःशक्तता के कारण उत्पन्न बाधाओं के अनुभव	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	हां	120	25	15	10	170	85.00
2.	नहीं	18	7	3	2	30	15.00
	योग	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**	**100.00**

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 170 उत्तरदाताओं (85 प्रतिशत) को निःशक्त होने के कारण उत्पन्न बाधाओं का अनुभव है जबकि शेष 30 उत्तरदाताओं (15 प्रतिशत) को निःशक्त होने के कारण उत्पन्न बाधाओं का अनुभव नहीं है।

इस सारणी से यह भी स्पष्ट होता है कि 170 उत्तरदाताओं (145 चलन बाधित एवं 25 दृष्टि बाधित) ने निःशक्तता के कारण उत्पन्न बाधाओं का अनुभव किया है। जबकि शेष 30 उत्तरदाताओ (25 चलन बाधित एवं 5 दृष्टि बाधित) ने निःशक्तता के कारण उत्पन्न बाधाओं का अनुभव नहीं किया है।

विश्लेषण :–

पूर्व की सारणियां यह संकेत देती है कि जीवन संचालन की प्रक्रिया में निःशक्तता किसी ना किसी प्रकार की बाधा को उत्पन्न करती है। यह बाधा संरचनात्मक एवं प्रक्रियामूलक दोनों ही प्रकृति की है। प्रक्रियामूलक बाधायें सामाजिक अन्तःक्रिया को प्रभावित करती है, जबकि संरचनात्मक बाधायें उत्तरदाताओं के स्वयं के व्यवहार में बाधा उत्पन्न करती है।

अधिकांश निःशक्त उत्तरदाता (85 प्रतिशत) इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि उनकी जीवनचर्या में निःशक्तता बाधक है, जो ना केवल उन्हें प्रतिष्ठा की दृष्टि से हीन बनाती है एवं अधीनस्थता की संस्कृति का उन्हें अनिवार्य भाग बना देती है। दयामूलक शब्दावली उन्हें एक विशिष्ट जीवन दर्शन का भाग बनाती है और अन्य इकाईयों के साथ उनकी अन्तःक्रिया उन्हें संकोच, हीनता एवं कुण्ठा के मनोविज्ञान से सम्बद्ध कर देती है। इस दृष्टि से निःशक्तता सामाजिक संरचना एवं सामाजिक व्यवस्था दोनों ही क्षेत्रों में निराश की भावना को निर्मित कर देती है जो कि समावेशी सामाजिक विकास में अवरोध के रूप में देखा जा सकता है।

सारणी क्रमांक 6.21: उत्तरदाताओं के नशा करने की प्रवृति सम्बद्ध सूचना

नशा एक गम्भीर सामाजिक समस्या है। यह समाज के प्रत्येक वर्ग में कम या अधिक पाया जाता है। निःशक्त सामाजिक इकाई चूँकि किसी न किसी शारीरिक अथवा मानसिक कमी से ग्रसित होते हैं। अतः इससे हमें यह ज्ञात हो सकता है कि निःशक्तता का नशे की आदत पर कितना और किस प्रकार प्रभाव पडता है। इस पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने निःशक्त उत्तरदाताओं से नशा करने से संबद्ध में सूचना संकलित करने के लिए अनौपचारिक वार्तालाप के माध्यम से प्रश्न किये। इस प्रश्न से प्राप्त सूचनाओं को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है :–

क्र. सं.	क्या आपने कभी नशा किया है।	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	हां	12	2	0	0	14	7.00
2.	नहीं	129	14	30	13	186	93.00
	योग	**141**	**16**	**30**	**13**	**200**	**100**

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं मे से 186 उत्तरादाता (93 प्रतिशत) नशा करतें है। तथा शेष 14 उत्तरादाता (7 प्रतिशत) नशा नहीं करते है। 14 उत्तरादाता जो नशा करते है, सभी चलन बाधित बालक एवं बालिकाऐं हैं। यह सारणी यह भी स्पष्ट करती है कि दृष्टिबाधित (निःशक्त बालक एवं बालिकाऐं) नशा नहीं करतें हैं।

विश्लेषण :–

निःशक्त सामाजिक इकाई नैराश्यता, कुण्ठा, हीनता एवं भावानात्मक असंतुलन के विभिन्न पक्षों के कारण उत्पन्न सामाजिक जीवन में तनाव को दूर करने के लिए अनेक वैकल्पिक साधनों को भाग बनाने का प्रयास करती है। नशा एक ऐसा ही वैकल्पिक साधन है । ग्रामीण परिवेश में नशे की प्रवृति सामूहिकता की निकटता के कारण सामान्यतः कम होती है। जबकि नगरीय जटिलता के कारण एकांकीपन सामाजिक इकाईयों को नशे की प्रवृति की तरफ सुगमता पूर्वक आकर्षित कर सकता है।

सम्बंधित अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि अधिकांश उत्तरदाता (93 प्रतिशत) नशा नहीं करते है । उनका मत था कि नशा सामाजिक जीवन की विसंगतियों एवं असफलताओं से लडने का कोई माध्यम नहीं है। यह चेतना संस्कृति एवं परिवार के विभिन्न मूल्यों के प्रभाव का द्योतक है। कुछ उत्तरदाता (7 प्रतिशत) नशे की प्रवृति में संलग्न है। इसमें अधिकांश बालक है। तथा नशा करने वाली इकाईया इस तथ्य को स्वीकार करती है कि नशा स्वयं में एक विपथगामी व्यवहार है। परन्तु उत्पन्न तनावों के तात्कालिक समाधान में सहायता करता है। यह सारणी संकेत देती है कि निःशक्त सामाजिक इकाई अनेक जीवन

कठिनाइयों के बावजूद सामाजिक नियंत्रण के विभिन्न साधनों को अपने जीवन चर्या में सम्मिलित करती है। जिसके कारण नशे की प्रवृति उत्पन्न नहीं होती है।

सारणी क्रमांक 6.22: उत्तरदाताओं के नशीले पदार्थों के सेवन से सम्बद्ध सूचना

नशा हेतु विभिन्न प्रकार के पदार्थो का सेवन किया जाता है। इनमें कुछ कम तथा कुछ अधिक दुष्प्रभाव डालतें है। इस क्रम में नशे के पदार्थ के सेवन से सम्बन्धित सूचनाओं से हमें उत्तरदाताओं के बारे में यह जानकारी ज्ञात हो सकती है कि उनके द्वारा कौनसे नशीले पदार्थों का सेवन किया जाता है । और वे उनके स्वास्थ्य पर कितना प्रतिकूल असर डालते है। इसी पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने उत्तरदाताओं से नशीले पदार्थो के सेवन से संबद्ध प्रश्न सूचनाओं को संकलित करने हेतु किये। इस प्रश्न से प्राप्त सूचनाओं को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है :–

क्र. सं.	नशीले पदार्थ	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	तम्बाकू/बीडी /सिगरेट	10	2	0	0	12	85.72
2.	भांग/गांजा	2	0	0	0	2	14.28
	योग	**12**	**2**	**0**	**0**	**14**	**100.00**

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि 14 उत्तरदाताओ मे से 12 उत्तरदाता (85.72 प्रतिशत) नशीले पद्धार्थो के सेवन में तम्बाकू/ बीडी/सिगरेट का प्रयोग करते है। जबकि शेष 2 उत्तरदाता (14.28 प्रतिशत) भांग/गांजा का प्रयोग करते है। 12 उत्तरादता (10 बालक एवं 2 बालिकाऐं) तम्वाकू/ बीडी/ सिगरेट का प्रयोग करते है। 2 उत्तरदाता जो चलन बाधित बालक हैं, भांग/गांजे का प्रयोग करते है।

विश्लेषण :–

उपरोक्त सारणी से यह स्पष्ट होता है कि जो इकाईया नशा करती है उनमें अधिकांश बीडी/सिगरेट/तम्बाकू का सेवन करती है। कुछ इकाईया भांग एंव गाजा को

स्वयं के द्वारा किये गए नशे की आदत में सम्मिलित करती है। नशे के अन्य पदार्थ जैसे शराब, अफीम, डोडा, जीवन चर्या में सम्मिलित नहीं है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि नशे के साधनों का निःशक्त सामाजिक इकाईयों की आर्थिक पृष्ठ भूमि से सकारात्मक सहसंबंध है। इस अध्ययन में सम्मिलित समस्त इकाईंया निम्नवर्गीय परिवारों का भाग है। तम्बाकू, भांग, गांजा नशे के सस्ते साधन है जबकि शराब, अफीम इत्यादि महँगें साधन है। चूँकि निदर्श इकाईयां 6 वर्ष से 18 वर्ष के आयु समूह की है। अतः छोटी आयु में शराब इत्यादि के सेवन की प्रवृति स्थापित नहीं हो पाती है। अतः इन साधनों का प्रयोग नहीं होता है।

सारणी क्रमांक 6.23: उत्तरदाताओं के नशे में सहयोग करने वाले से सम्बद्ध सूचना

किशोरावस्था में बालकों का मन अस्थिर एवं चंचल होता है। इस काल उन्हें उचित मार्गदर्शन एवं दिशानिर्देश की आवश्कता होती हैं। निःशक्त उत्तरदाताओं से इस बारे में जानकारी से यह ज्ञात किया जा सकता है कि उन्हें नशे की आदत लगाने में किसका ज्यादा सहयोग रहता है। इस पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने उत्तरदाताओं से अनौपचारिक वार्तालाप के माध्यम से सूचनाओं को संकलित करने हेतु प्रश्न किये। इस प्रश्न से प्राप्त सूचनाओ को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है।

क्र. सं.	आपने नशा किसके साथ किया है।	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	अकेले	2	0	0	0	2	14.28
2.	मित्रों के साथ	10	2	0	0	12	85.72
	योग	**12**	**2**	**0**	**0**	**14**	**100**

विवेचन :–

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 14 उत्तरादाताओं में से 12 उत्तरदाता (85.72 प्रतिशत) नशा अपने मित्रों के साथ करतें है जबकि शेष 2 उत्तरादाता (14.28 प्रतिशत) अकेले में नशा करतें है। 12 उत्तरादताओं (10 बालक एवं 2 बालिकाएं) जो चलन बाधित

है मित्रों के साथ नशा करते है। तथा शेष 2 उत्तरदाता (चलन बाधित बालक) अकेले में नशा करते है।

विश्लेषण :–

सारणी यह भी संकेत करती है कि नशा करने की प्रवृति एक सामूहिक प्रघटना है । वे सामाजिक इकाईयां जो नशा करती है, का एक बहुत बडा भाग अपने मित्रों के साथ नशा करता है । अकेले नशा करने की प्रवृति कम है। यह पक्ष इस तथ्य का संकेतक है कि नशा करने की प्रवृति तभी सामाजिक जीवन का हिस्सा बनती है। जब यह सामूहिक आदत का भाग बने। समूह में नशा आदत एवं फैशन दोनों ही प्रकार का हो सकता है। अनौपचारिक वार्तालाप के दौरान नशा करने वाली उप इकाइयों ने बताया कि चूँकि मित्र नशा करते समय उस साधन को लेने के लिए प्रेरित करते है और मना करने पर मित्रों के व्यंग्यात्मक व्यवहार का सामना करना पडता है, इस अपमान से बचने के लिए वे नशा करने की प्रवृति का भाग बन जाते हैं। चूँकि 18 वर्ष से कम आयु के बच्चों द्वारा नशा एक औपचारिक विचलनकारी व्यवहार है। अतः राज्य एवं परिवार का सामूहिक दायित्व है कि वे प्रत्येक इकाई विशेषत निःशक्त इकाई के व्यवहार की निगरानी करे क्योंकि निःशक्तता शारीरिक निर्वलता का परिचायक और नशा इस शारीरिक निर्वलता को और अधिक जटिल बना सकता है। अर्थात नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है।

सारणी क्रमांक 6.24: उत्तरदाताओं में नशा करने के कारण से संबद्ध सूचना

किसी भी किशोर अथवा व्यस्क व्यक्ति द्वारा नशीले पदार्थों के सेवन करने का प्रारम्भ का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। उन कारणों के अध्ययन से हम निःशक्त इकाईयों के बारें में यह जानकारी ज्ञात कर सकतें है कि उनके द्वारा नशा करने के प्रमुख कारण क्या है। इस पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने उत्तरदाताओं से सूचना संकलित करने हेतु नशा करनें के कारण सम्बन्धी प्रश्न किये। इस प्रश्न से प्राप्त तथ्यों को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है :–

क्र. सं.	नशा करने के कारण	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	तनाव	8	2	0	0	10	71.42
2.	मित्रों का दबाव	2	0	0	0	2	14.28
3.	अन्य कोई कारण (फैशन, शोक, घरेलु परंपरा प्रथा)	2	0	0	0	2	14.28
	योग	**12**	**2**	**0**	**0**	**14**	**100**

विवेचन :–

उर्पयुक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 14 उत्तरदाता मे से 10 उत्तरदाताओं (71.42 प्रतिशत) में नशे का कारण तनाव है, 2 उत्तरदाताओं (14.28 प्रतिशत) में नशे का कारण मित्रों का दवाब है। और शेष 2 उत्तरदाताओं (14.28 प्रतिशत) में नशे के अन्य कारण हैं।

विश्लेषण :–

निःशक्त बच्चो ने उत्तरदाताओं के रूप में इस तथ्यों को सामने रखा की वे तनाव के उत्पन्न होने पर और मित्रों के दवाब के फलस्वरूप नशे का सेवन करते है। इनका मत था की अनेक ऐसे अवसर आतें है जब उनकी जीवन किया में परिवारीजन ,पडोस, मित्र इत्यादि तनाव उत्पन्न करने के कारण बन जाते है। उनकी उपेक्षा भी अनेक अवसरों पर तनाव को जन्म देती है और इससे उत्पन्न होने वाले कुसमायोजन की अनूभूति को कम करने के लिए नशे के साधनों का उपयोग करने लगते है नशा करने वाले अधिकाश उत्तरदाता तनाव को नशे का कारण बताते है। तनाव की एक सामाजिक तथ्य क्योकि उसमें समूह की भूमिका स्पष्टतः परिलक्षित होती है कुछ इकाईया उत्तरदाताओं के रूप में मित्रों के दवाब को नशा ग्रहण करने का कारण बताती हैं। अनौपनचारिक वार्तालाप के दौरान उन उत्तरदाताओं ने बताया की जब परिवारीजन नहीं होते हें तव उनके मित्र उनसे अन्तः क्रिया करने हेतु घर आते है और दौरान वे नशे के साधनों का प्रयोग करने के लिए प्रेरित करते है न करने पर वे मित्र उनकी उपेक्षा करने लगते है एवं उन्हे डरपोक व्यक्तिव के रूप में स्थापित करने लगते है जिसके फलस्वरूप उत्तरदाता भी नशे के साधन का प्रयोग करने की

प्रवृति का भाग बन जाते है। अत यह कहा जा सकता है कि नशे के साधनों का प्रयोग करने से सम्वन्धित विचलनकारी व्यवहार में सामूहिक सुझाव निर्देश एवं वाध्यता के तत्व सम्मिलित होते है। नशा करने के साधनों से हानि सम्बन्धी चेतना के बावजूद तनाव का उभार कुछ सामाजिक इकाई को नशा ग्रहण करने की दिशा की तरफ ले जाता है।

सारणी क्रमांक 6.25: उत्तरदाताओं की खेल की प्रति रूचि से सम्वद्ध सूचना

खेल किसी बालक के शारीरिक एवं मानसिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है निःशक्तजन शारीरिक एवं मानसिक कमी के साथ समाजिक उपेक्षा के शिकार रहते है। अतः यह आवश्यक है कि उनमें खेलों के प्रति रूचि की जानकारी प्राप्त कि जाये ताकि यह ज्ञात हो सके की उनकी खेलों के प्रति रूचि है अथवा नहीं। इसी पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी नें उत्तरदाताओं से खेलों के प्रति उनकी रूचि से सम्बन्धित सूचना संकलित करने के लिये अनौपचारिक वर्तालाप के माध्यम से प्रश्न किये। इस प्रश्न से प्राप्त तथ्यों को निम्नलिखित सारणी के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है :–

क्र. सं.	क्या आप कोई खेल खेलतें है।	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	हां	71	14	3	2	90	45.00
2.	नहीं	55	18	27	10	110	55.00
	योग	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**	**100**

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 90 उत्तरदाता (45 प्रतिशत) खेलों के प्रति रूचि रखते हैं जबकि शेष 110 उत्तरदाता (55 प्रतिशत) खेलो के प्रति रूचि नहीं रखते हैं।

यह सारणी यह भी निरूपित करती है कि 90 उत्तरदाता (74 बालक व 16 वालिकाऐं) खेलों के प्रति रूचि रखते हैं। जबकि शेष 110 उत्तरदाता (82 बालक व 28 बालिकाऐं) खेलों के प्रति रूचि नहीं रखते हैं।

यह सारणी यह भी स्पष्ट करती है कि 90 उत्तरदाताओं (85 चलन बाधित एवं 5 दृष्टि बाधित) खेलों के प्रति रूचि रखते हैं। जवकि शेष 110 उत्तरदाताओं (73 चलन बाधित एवं 37 दृष्टि बाधित) खेलों के प्रति रूचि नहीं रखतें है।

विश्लेषण :–

खेल सम्बन्धी गतिविधियाँ आधुनिक समाज में व्यक्तित्व विकास का एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। इतना अवश्य है कि निःशक्त सामाजिक इकाईयों के लिए विशिष्ट एवं सामान्य दोनों ही प्रकृति के खेलों के प्रावधान अनौपचारिक एव औपचारिक दोनों ही परिवेशों में हो ताकि शारीरिक विकास एवं बौद्धिक विकास का मिश्रित रूप निःशक्त सामाजिक इकाईयों के जीवन में प्रवेश कर सके। इस सन्दर्भ में प्राप्त तथ्य समाजशास्त्री दृष्टि से असंतुलन एवं निराशा के परिचायक हैं। एक बडी संख्या में उत्तरदाता (55प्रतिशत) किसी भी खेल को खेल पाने में असमर्थ है अथवा उनके लिये उपर्युक्त प्रावधान नहीं है। शेष उत्तरदाता (लगभग 45 प्रतिशत) खेल की प्रक्रिया का भाग है। यह स्थिति निराश सामाजिक इकाईयों के व्यक्तित्व विकास को मंद एवं असंतुलित करती है। खेलों में सहभागिता, सामाजिक अन्तःक्रिया, कुशलता परिवेश के साथ अनुकूलनशीलता एवं स्वयं के हितों के प्रति सामाजिक चेतना के प्रतियोगी स्वरूप को व्यापकता प्रदान करती है। यदि ऐसा नहीं है तो निःशक्त सामाजिक इकाईयों के लिए प्रत्येक दृष्टि से पिछडापन स्वाभाविक हो जाता है। विश्व में बडे पैमाने पर निःशक्त सामाजिक इकाईयों के लिए खेलों के आयोजन होते हैं। यहाँ तक उनके लिये ओलम्पिक जैसे बडे पैमाने पर खेल–कूद प्रतियोगिताओं के आयोजन किये जाते हैं। इस दृष्टि से निःशक्त सामाजिक इकाईयों को स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर उन्नयन के अवसर प्राप्त होते हैं। शोधार्थी का तर्क है कि इन सब स्थितियों को प्राप्त करने के लिये खेल–कूद प्रतियोगिताओं में निःशक्त सामाजिक इकाईयों को प्रोत्साहन एवं प्रशिक्षण के अवसर राज्य एवं स्वयंसेवी संगठनों के द्वारा किये जावे।

सारणी क्रमांक 6.26 : उत्तरदाताओं के खेल खेलने में बाधा उत्पन्न होने से संबद्ध सूचना

अधिकाश खेलों मे किसी भी बालक का शारीरिक अथवा मानसिक रूप से स्वस्थ होना आवश्यक है। चूँकि निःशक्तजन किसी न किसी शारीरिक अथवा मानसिक कमी से पीडित होते है। अतः निश्चित रूप से इन खेलों में बाधाऐं उत्पन्न होती हैं इस सम्बन्ध में जानकारी कर उत्तरदाताओं से यह ज्ञात हो सकता है की निःशक्त जन इकाई को खेल में किन किन बाधाओं का सामना करना पडता है। इस पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने

उत्तरदताओं से उनको खेल खेलने में बाधा संबंधी प्रश्न किये। इस प्रश्न से प्राप्त तथ्यों को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है :–

क्र. सं.	क्या निःशक्तता आपको खेल मे बाधा उत्पन्न करती हैं	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	हां	71	14	3	2	90	100
	योग	**71**	**14**	**3**	**2**	**90**	**100**

विवेचन :–

पूर्व की सारणी में वर्णित किया जा चुका है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 90 उत्तरदाता ही खेल खेलने में रूचि रखते है। तथा सभी 90 उत्तरदाताओं को खेल खेलने में बाधा उत्पन्न होती है।

विश्लेषण :–

निःशक्तता जैसा कि शोधार्थी तर्क दे चुकी है। निःशक्तता एक व्याधिकिय सामाजिक तथ्य है जो संज्ञानात्मक चेतना को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। जैव – मनों –निर्बलता का यह भाग निःशक्त उत्तरदाताओ की मनोरंजनात्मक गतिविधियो मे भी अवरोध उत्पन्न करता है। खेल कूद में संलग्न उततरदाता का यह स्पष्ट मत है, कि निःशक्तता उनकी खेल की क्रियाओं में अवरोध उत्पन्न करती है। उत्तरदाताओं का यह भी मत था की खेल कूद प्रतियोगिता सामाजिक क्रियाऐं है जिसमें विजय एवं पराजय के पक्ष सम्मिलित होते है। व्यक्तिगत स्तर पर अनेक खेल अवरोध के वावजूद उनमें निराशा की स्थिति को उत्पन्न नहीं करते क्योकि खेल प्रतियोगी नहीं है। परन्तु ऐसे खेलों में भी निर्धारित अवधि से अधिक अवधि का लगना उन्हे सोच के लिए बाध्य करता है की निःशक्तता खेल कूद कि क्रियाओं ं में अवरोध उत्पन्न करती है। यदि खेल कूद प्रतियोगिता का भाग है, तब निःशक्तता बनाम सामान्यता एवं निशक्ता बनाम निःशक्तता की स्थिति सार्वजनिक स्पेस में उत्पन्न होती है। वहाँ निशक्तता अवरोधक कारक के रूप में स्पष्ट रूप से उपस्थित हो जाती है । शोधार्थी यह तर्क देना चाहेगी की इस प्रकार अवरोध मनोभावनात्मक तनाव भी उत्पन्न करते है। अतः ऐसे वैकल्पिक खेलों को प्रोत्साहित किया जाये जिसमें निःशक्तता अवरोध नहो अपितु उसे एक सहयोगी अवयव के रूप में प्रयुक्त किया जा सके ।

उदाहरण के लिए चलन बाधित उत्तरदाताओं के लिए एक टांग की दौड ठीक उसी प्रकार प्रौद्योगिकीय उपकरणों को निःशक्तत सामाजिक इकाईयों को प्रदान किया जाना चाहिए ताकि वे खेल कूद के दौरान सहयोगी उपकरण के रूप में उपयोग कर सके। ऐसा सम्भव होंता हैं तो खेल कूद का यह मनोविज्ञान निःशक्त इकाईयों की सृजनात्मक गतिविधियों में और उन गतिविधियो के विस्तार में उपयोगी भूमिका का निर्वाह कर सकता है।

सारणी 6.27: उत्तरदाताओं के मिलनसार होने से संबद्ध सूचना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, उसका व्यक्तित्व अन्य व्यक्तियों के व्यवहार पर आधारित रहता है। कई बार अपनी सामाजिक मानसिक अथवा आर्थिक कमी के चलतें उत्पन्न हीन भावना हमारे व्यवहार को प्रभावित करती है। इस दृष्टि से चूँकि निशक्त जन किसी न किसी शारीरिक कमी से ग्रस्त होते है। उनके व्यवहार अन्य लोगों से मेल जोल की प्रवृति से प्रभावित होने की पूर्ण सम्भावना रहती है इस पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने निःशक्त उत्तरदाताओं के मेल जोल एवं व्यवहार से सम्बन्धित सूचना संकलित करने के लिए प्रश्न किये। इस प्रश्न से सम्बन्धित तथ्यों को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया हैः–

क्र. सं.	दूसरों से मिलना–जुलना पसन्द है। (मिलनसार)	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	हां	102	24	26	8	160	80.00
2.	नहीं	24	8	4	4	40	20.00
	योग	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**	**100.00**

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से यह स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताअें में से 160 उत्तरदाता (80 प्रतिशत) दूसरों के साथ मिलना जुलना पसन्द करते हैं जबकि शेष 40 उत्तरदाता (20 प्रतिशत) दूसरों के साथ मिलना जुलना पसन्द नहीं करते हैं।

उपर्युक्त सारणी से यह भी विवेचित होता हैं कि 160 उत्तरदाताओं में से (128 बालक एवं 32 बालिकाऐं) दूसरों के साथ मिलना जुलना पसन्द करते है जबकि शेष 40

उत्तरदाताओ मे से (28 बालक एवं 12 बालिकाऐं) दूसरों के साथ मिलना जुलना पसन्द नहीं करते हैं।

उपर्युक्त सारणी से यह भी निरूपित होता है कि 160 उत्तरदाताओं में से (126 चलन बाधित एवं 34 दृष्टि बाधित) दूसरों के साथ मिलना जुलना पसन्द करते हैं जबकि शेष 40 उत्तरदाताओ मे से (32 चलन बाधित व 8 दृष्टिबाधित) दूसरों के साथ मिलना जुलना पसन्द नहीं करते है।

विश्लेषण :–

समाजशास्त्रीय चिंतन में समाज, सामाजिक अन्तःक्रिया एवं सामाजिक अन्तःसम्बन्धों की जटिल व्यवस्था से निर्मित होता है। समाज में अन्तःक्रिया एवं सम्बन्धों के सम्बन्ध में अनौपचारिक एवं औपचारिक स्पेस होते हैं। अनौपचारिक स्पेस में अन्तःक्रिया की नियमितता एवं निरन्तरता को प्राथमिकता दी जाती है, जबकि औपचारिक स्पेस में हित केन्द्रित अन्तःक्रिया होती है।

अध्ययन के दौरान पाया गया कि अधिकांश उत्तरदाता (80 प्रतिशत) यह अपेक्षा करते हैं कि वे अन्य सामाजिक इकाईयों से निरन्तर सम्पर्क में रहें और स्वयं के लिये व्यक्तित्व को एक मिलनसार व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करें।

अनौपचारिक वार्तालाप के दौरान उत्तरदाता एवं उनके पारिवारी जनों का मत था कि नियमित एवं निरन्तर सम्पर्क तथा मिलनसार व्यक्तित्व के रूप में निःशक्त बच्चों की प्रस्तुति उन्हें कुछ समय के लिये उस हीनता एवं उपेक्षा से पृथक कर एक सामान्य व्यक्तित्व के रूप में अल्पकालिक समय के लिये स्थापित कर देती है, अर्थात् मिलनसारिता वह सामाजिक उपचार है जो कि अल्पकालीन समय के लिये ही सही, बच्चों को निःशक्तता की अधीनस्थ चेतना से पृथक कर देता हैं।

सारणी क्रमांक 6.28: निःशक्तता एवं तनाव के मध्य सम्बन्धः उत्तरदाताओं के अनुभव

जीवन में शारीरिक, मानसिंक, सामाजिक, आर्थिक इत्यादि कमीयों के चलतें प्रत्येक इन्सान को तनाव झेलना पडता है। चूँकि निःशक्त जन किसी न किसी स्थाई शारीरिक/ मानसिंक कमी से ग्रसित हेाते है। अतः इनकी तनाव ग्रस्त होने की पूर्ण सम्भावना बनी रहती है। इसी पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने उत्तरदाताओं से निःशक्तता के कारण उत्पन्न

तनाव से सम्बधित उनके अनुभव के विषय में प्रश्न किये। इस प्रश्न से प्राप्त तथ्यों को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है :–

क्र. सं.	क्या आप निःशक्तता के कारण तनावग्रस्त रहते हैं	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	हां	82	23	23	7	135	67.50
2.	नहीं	44	9	7	5	65	32.50
	योग	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**	**100.00**

विवेचनः :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 135 उत्तरदाता (67.5 प्रतिशत) निःशक्तता के कारण तनाव ग्रस्त रहते है। जबकि शेष 65 उत्तरदाता (32. 50) निःशक्तता के तनाव ग्रस्त नहीं रहते है।

यह सारणी निरूपित करती है कि 135 उत्तरदाता (105 बालक एवं 30 बालिकाऐं) निःशक्तता के कारण तनाव ग्रस्त रहते है जबकि शेष 65 उत्तरदाता (51 बालक एवं 14 बालिकाऐं) निःशक्तता के कारण तनाव ग्रस्त नहीं रहते है।

यह सारणी यह भी स्पष्ट करती है कि 135 उत्तरदाताओं में 105 चलन बाधित व 30 दृष्टि बाधित निःशक्त, निःशक्तता के कारण तनाव ग्रस्त रहते हैं। जबकि शेष 65 उत्तरदाताओं में 53 चलन बाधित वं 12 दृष्टि बाधित निःशक्त, निःशक्ता के कारण तनाव ग्रस्त नहीं रहते हैं।

विश्लेषण :–

निःशक्तता का यथार्थ उत्तरदाताओं की चेतना में अनेक प्रकार के तनावों को उत्पन्न करता है। एक बड़ी संख्या में उत्तरदाता (लगभग 68 प्रतिशत) इस तथ्य को स्वीकारते हैं। यह स्वीकृति निःशक्तता को कहीं ना कहीं एक व्याधिकीय सामाजिक तथ्य के रूप में स्थापित कर देती है। वे उत्तरदाता जो तनाव की उपस्थिति का नकार करते हैं, का मत है कि परिवार एवं अन्य निकट की सामाजिक इकाईयों का निरन्तर मिलने वाला सहयोग उन्हें तनाव के निकट नहीं लाता हैं।

यद्यपि उनका मत है कि शारीरिक दृष्टि से उत्पन्न कोई ना कोई कमजोरी अनेक अवसरों पर व्यक्तित्व में तनाव को उत्पन्न करने का स्वाभाविक कारण बन जाती है, परन्तु उससे संघर्ष अनिवार्य है। क्योंकि जीवन का संचालन सामान्य हो, अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा तनाव की अभिव्यक्ति परिवार को तनावग्रस्त इकाई के रूप में परिवर्तित कर देती है।

सारणी क्रमांक 6.29: उत्तरदताओं के विवाह सम्बन्धी दृष्टिकोण

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में विवाह अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है समाज में कई तरह के विवाह जैसे अरेन्ज विवाह, अन्तर्जातीय, प्रेम विवाह, इत्यादि प्रचलित है। निःशक्त जन को उनकी शारीरिक मानसिक कमी के चलते विवाह हेतु अधिक विकल्प उपलब्ध नहीं रहतें हैं। जिसके कारण उनके मन में विवाह के प्रति अधिकांशतः उदासीन होने की सम्भावना रहती है। अत निःशक्त जनों ने विभिन्न प्रकार के विवाह के पद्धतियों की पसंद के अध्ययन सें हमें उनकी इस सामाजिक व्यवस्था के प्रति रूचि/ अरूचि की जानकारी प्राप्त होती है । इसी पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने उत्तरदाताओं से विवाह के सम्बन्ध में उनकी पसन्द/ नापसन्द से सम्वन्धित प्रश्न किये। इस प्रश्न से प्राप्त तथ्यो को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है :–

क्र. सं.	आप कौनसा विवाह करना पसन्द करते हैं	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	अरेन्ज मैरिज	104	28	28	11	171	85.50
2.	प्रेम विवाह	10	4	2	1	17	8.50
3.	अन्य विवाह (अंतर्जातीय, अंतरधार्मिक, सहजीवन आदि)	12	0	0	0	12	6.00
	योग	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**	**100.00**

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 171 उत्तरदाता (85. 50 प्रतिशत) अरेंज विवाह करना पसंद करते है। जबकि शेष 17 उत्तरदाता (8.50 प्रतिशत) प्रेम विवाह करना पसंद करते है। तथा 12 उत्तरदाता अन्य प्रकार के विवाह (अंतर्जातीय, अंतरधार्मिक, सहजीवन आदि) करना पसंद करते है।

यह सारणी यह भी निरूपित करती है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 171 उत्तरदाता (132 चलन बाधित एवं 39 दृष्टि बाधित) अरेंज मैरिज, 17 उत्तरदाता (14 चलन बाधित एवं 3 दृष्टि बाधित) तथा सभी 12 उत्तरदाता जो कि चलन बाधित हैं, अन्य प्रकार के विवाह (अंतर्जातीय, अंतरधार्मिक, सहजीवन आदि) करना पसंद करते हैं।

विश्लेषण :–

उपरोक्त सारणी निःशक्त उत्तरदाताओं की अभिव्यक्ति के निर्माण का संकेतक हैं। उत्तरदाता यद्यपि 6 से 18 वर्ष के आयु समूह के हैं, परन्तु जटिल सामाजिक यथार्थ के अवलोकन उनकी चेतना को निर्मित करता है। विवाह सम्बन्धी दृष्टिकोण यह स्पष्ट करता है कि निःशक्त उत्तरदाता की बड़ी संख्या (लगभग 86 प्रतिशत) भावी जीवन में अरेंन्ज विवाह को प्राथमिकता देगी। अर्थात् यह सामाजिक इकाईयां पारिवारीजनों के साथ मिल–जुलकर जीवन साथी का चुनाव करेगी। यद्यपि कम संख्या में ही सही, पर ऐसे भी उत्तरदाता हैं जो यह तर्क देते हैं कि यदि अवसर मिलेगा तो शिक्षा प्राप्त कर प्रेम विवाह की प्रक्रिया का हिस्सा बनेंगे। अर्थात् स्वयं जीवनसाथी का चुनाव करेंगे।

अनौपचारिक वार्तालाप के दौरान इन उत्तरदाताओं ने बताया कि उनके जीवन में निःशक्तता के कारण कुछ कठिनाईयां स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हुई। अतः वे ऐसे जीवनसाथी को खोजेंगे, जो इन परिस्थितियों को तार्किक ढ़ंग से समझकर उनमें सहयोगी जीवन प्रदान कर सके।

कुछ उत्तरदाता यह भी मानते हैं कि यदि संभव होता है तो उन्हें अन्तर्जातीय एवं अन्तःधार्मिक विवाह करने में कोई भी परेशानी नहीं होगी। जिसका स्पष्ट अर्थ है कि निःशक्त उत्तरदाताओं का एक भाग शिक्षा के फलस्वरूप आधुनिकता के सम्पर्क में आ चुका है। हालांकि बहुत बड़ी संख्या पारम्परिकता के साथ जुड़ी है, जो किसी ना किसी रूप में उनकी अन्य पारिवारीजनों पर अधीनस्थता की परिचायक है।

सारणी क्रमांक 6.30: उत्तरदाताओं की शैक्षणिक स्तर से सम्बद्ध सूचना

शिक्षा के कई स्तर है जैसे प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक, महाविद्याालय, एवं व्यवसायिक इत्यादि।

शिक्षा के स्तर से ही बालको की विकास एवं योग्यता के बारे में टिप्पणी की जा सकती हैं। निःशक्त जनो के परिवारीजन अपने बालको को समाज के भय एवं आलोचना से बचने के लिये अपने वालको को विद्याालय भेजते है किन्तु प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के बाद उनकी शिक्षा प्रायः बन्द कर दी जाती है। निःशक्त जन बालको के अध्ययन के लिये शिक्षा स्तर का अध्ययन भी आवश्यक है। ताकि हमें यह जानकरी मिल सके की अधिकांश निशक्त जनो की शिक्षा किस स्तर पर बन्द कर दी जाती हैं। इसी पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने उत्तरदाताओं से उनके शैक्षणिक स्तर से सम्बन्धित सूचनाओं को संकलित करने के लिए प्रश्न किये। इस प्रश्न से प्राप्त तथ्यों को निम्नलिखित सारणी के माध्यम से प्रस्तुत किया गया हैं :–

क्र. सं.	शैक्षणिक स्तर	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	प्राथमिक	75	15	18	5	113	63.12
2.	उच्च प्राथमिक	25	7	4	3	39	21.78
3.	माध्यमिक	10	4	2	2	18	10.00
4.	उच्च माध्यमिक	5	2	1	1	9	5.00
	योग	**115**	**28**	**25**	**11**	**179**	**100.00**

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि 179 उत्तरदाता जो कि विद्याालय जातें हैं उनमें से 113उत्तरदाताओं (63.12 प्रतिशत) के शैक्षणिक स्तर प्राथमिक है। तथा 39 उत्तरदाताओं (21.78 प्रतिशत) का शैक्षणिक स्तर उच्च प्राथमिक है। 18 उत्तरदाताओं (10 प्रतिशत) का

शैक्षणिक स्तर माध्यमिक है तथा 9 उत्तरदाताओं (5 प्रतिशत) का शैक्षणिक स्तर माध्यमिक स्तर है।

विश्लेषण :–

शैक्षणिक प्रस्थिति, जैसा कि शोधार्थी पूर्व में कह चुकी हैं, आलोचनात्मक चेतना के विकास में सहायक हैं। शिक्षा के अधिकार ने निःशक्तजन उत्तरदाताओं को शैक्षिक उपलब्धियां अर्जित करने के अवसर प्रदान किये हैं। अधिकांश उत्तरदाता (लगभग 90 प्रतिशत) शैक्षणिक उपलब्धियां प्राप्त करने के लिये विद्यालयों का भाग है। इस अध्ययन में बड़ी संख्या में उत्तरदाता प्राथमिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा से सम्बद्ध है। इन उत्तरदाताओं का मत है कि वे अनवरत शिक्षा प्राप्त करेंगे और उच्च शिक्षा से सम्बन्धित उपलब्धियों को अर्जित करने का प्रयास करें।

हालांकि अनौपचारिक वार्तालाप के दौरान उत्तरदाताओं ने यह संकेत दिये कि शिक्षकों की उपेक्षा एवं परिवारीजनों के अनेक अवसरों पर समायोजन के अभाव उन्हें यह सोचने के लिये बाध्य करते हैं कि ये ड्रॉपआउट का हिस्सा बन जाये। तत्काल वे यह भी मत व्यक्त करते हैं कि ड्रॉपआउट उनके भावी जीवन में अनेक अवसरों से उन्हें वंचित कर सकता है।

शोधार्थी की दृष्टि में यह परिवार समाज के अन्य समूहों एवं राज्य का दायित्व है कि एक ऐसे अनुकूल परिवेश को संस्थागत रूप दिया जाये, जिसमें निःशक्त सामाजिक इकाईयां बिना किसी अवरोध के शैक्षणिक उपलब्धियां अर्जित कर सके और अपने व्यक्तित्व में निहित सर्जनशीलता के अवयवों को बिना किसी अवरोध के नवीन आयामों की तरफ ले जा सके। यदि ऐसा होता है तो यह सामाजिक इकाईयां निःशक्तता पर विजय पाकर विकास प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है।

सारणी क्रमांक 6.31 : उत्तरदाताओं की आकांक्षा से सम्बद्ध सूचना

बाल्यकाल के उपरान्त बालक किशोरावस्था में प्रवेश करता हैं। तो समाज के विभिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्त व्यक्तियों से प्रभावित होकर उसके मन में कुछ बनने की आकांक्षा होती हैं जिसके आधार पर वह आगे बढने का प्रयास करता है ।इसमें बालक की शारीरिक मानसिक सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। निःशक्तजन बालक बालिका शारीरिक रूप से कमजोर होते है। किन्तु ये प्रायः आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों से जुडे रहतें है। अत यह अध्ययन आवश्यक है कि निःशक्तजन बालक

बालिकाओं की क्या आकांक्षाऐ हैं जिन्हे वे अपनी उक्त कमियों के चलतें मन में दबाकर रह जातें है। निःशक्तजनों की शैक्षणिक आकांक्षाओं की जानकारी सें हमें यह जानकारी ज्ञात हो सकती है कि किन कारणों से निःशक्त जन अपनी आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर पातें है। इसी पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी द्वारा निःशक्त उत्तरदाताओं से उनकी शैक्षणिक आकांक्षा से सम्बन्धित प्रश्न किये गए। इस प्रश्न से प्राप्त तथ्यों को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है :–

क्र. सं.	**जीवन के किस क्षेत्र में अभिरूचि हैं जिसमें आप उच्च स्थान प्राप्त करना चाहतें है।**	**उत्तरदाताओं की संख्या**				**उत्तरदाताओं की कुल संख्या**	**प्रतिशत**
		चलन बाधित		**दृष्टि बाधित**			
		बालक	**बालिका**	**बालक**	**बलिका**		
1.	प्रशासनिक	46	18	4	0	68	34
2.	कला	28	6	22	10	66	33
3	व्यवसायिक	38	3	0	0	41	20.50
4	सामाजिक	8	4	2	1	15	7.5
5	बौद्धिक	4	1	2	1	8	4
6	अन्य कोई (खेल कूद धार्मिक वैज्ञानिक राजनीतिक आदि)	2	0	0	0	2	1
	योग	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**	**100**

विवेचन :–

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 68 उत्तरदाता (34 प्रतिशत) प्रशासनिक क्षेत्र मे, 66 उत्तरदाता (33 प्रतिशत) कला के क्षेत्र मे, 41 उत्तरदाता (20.50 प्रतिशत) व्यवसायिक क्षेत्र मे, 15 उत्तरदता (7.5 प्रतिशत) सामाजिक क्षेत्र मे, 8 उत्तरदाता (4 प्रतिशत) बौद्धिक क्षेत्र में तथा 2 उत्तरदाता (1 प्रतिशत) अन्य क्षेत्र (खेल कूद धार्मिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक, आदि) में रूचि रखतें हैं।

उपयुक्त सारणी यह भी स्पष्ट करती है कि उत्तरदाताओं की रूचि सर्वाधिक प्रशासनिक क्षेत्र मे है । उसके बाद कला, व्यवसाय, सामाजिक, बौद्धिक एवं अन्य क्षेत्रों में है।

यह सारणी यह भी स्पष्ट करती है कि 68 उत्तरदाता (64 चलन बाधित एवं 4 दृष्टि बाधित) प्रशासनिक क्षेत्र में तथा 66 उत्तरदाता (34 चलन बाधित व 32 दृष्टिबाधित) कला के क्षेत्र में रूचि रखते है । 41 उत्तरदाता जो सभी चलन बाधित है व्यवसायिक क्षेत्र में रूचि रखतें है। 15 उत्तरदाता (12 चलन बाधित एवं 3 दृष्टिबाधित,) सामजिक क्षेत्र में रूचि रखतें है। 8 उत्तरदाता (5 चलन बाधित एवं 3 दृष्टि बाधित) बौद्धिक क्षेत्र में रूचि रखते है। एवं 2 उत्तरदाता जो चलन बाधित है अन्य क्षेत्र खेल कूद धार्मिक एवं राजनीतिक आदि में रूचि रखतें है।

विश्लेषण :–

निःशक्तता एक ऐसी शारीरिक – मनो–सामाजिक स्थिति है जो सम्बद्ध इकाई के व्यक्तित्व में इनके विरोधाभासों को जन्म देती है। इन इकाईयों की चेतना में अवलोकन के आधार पर अनेक आकांक्षाएं उत्पन्न होती हैं, जिन्हें मूर्त रूप देने का प्रयास परिवार एवं सामाजिक संरचना के अन्य अवयवों से करने की आशा की जाती है। यदि ऐसा परिवेश जन्म नहीं लेता है तो आकांक्षाएं दमित इच्छा में परिवर्तित होकर व्यक्तित्व को नैराश्य एवं हिंसा के साथ जोड देती है।

सम्बद्ध सारणी स्पष्ट करती है कि निःशक्त उत्तरदाता की आकांक्षाएं प्रशासनिक संरचना का भाग बनने, कला के क्षेत्र में सक्षमता प्राप्त करने, व्यवसायिक गतिविधियों में अवसर प्राप्त करने एवं सामाजिक क्षेत्र में, बौद्धिक क्षेत्र में एवं खेल विज्ञान, राजनीति के क्षेत्र में कुशलता प्राप्त करने से सम्बद्ध है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि निःशक्त सामाजिक इकाईयों पर समाज में हुए बहुआयामी परिवर्तनों का व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से प्रभाव पडता है। राज्य एवं समाज से यह अपेक्षा की जा सकती है कि वे इन आकांक्षाओं को मूर्त रूप देने के लिये व्यवस्थित प्रयासों को अनुकूलनशीलता के साथ गति दें ताकि सशक्तिकरण का प्रयास व्यापक स्तर पर सफल हो सके।

सारणी क्रमांक 6.32: उत्तरदाताओ को निःशक्तता सम्बन्धी कानूनों की जानकारी से सम्बद्ध सूचना

सरकार द्वारा समाज के विभिन्न वर्गो के उत्थान हेतु लागू की गई योजनाओं का लाभ तभी मिल सकता है। जब सम्बन्धित वर्ग के व्यक्तियों को इसके प्रावधानों का ज्ञान हो। निःशक्त जन के क्षेत्र में सरकार द्वारा स्वतंत्रता के बाद अनेक योजनाऐं लागू की गई ताकि निशक्त जन अपना स्वाभाविक जीवन बिना किसी कठिनाई के व्यतीत कर सके किन्तु

आजादी के इतने वर्षो बाद भी यह देखा जाता है कि निशक्त जनो की समस्याऐं जस की तस है। अतः यह अध्ययन आवश्यक है कि सरकार/संस्थाओं द्वारा लागू की जाने वाली योजनाओं की जानकारी है या नहीं। इसके आधार पर यह ज्ञात हो सकता है कि जानकारी के अभाव में कितने निःशक्त इन योजनाओ का लाभ नहीं ले पाये है। इसी पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने उत्तरदाताओं से निःशक्तता सम्बन्धी कानूनों की जानकारी से सम्बन्धित प्रश्न किये। इस प्रश्न सें प्राप्त तथ्यों को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है:–

क्र. सं.	निःशक्तता सम्बन्धी कानूनों की जानकारी है या नहीं	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	हां	60	14	3	2	79	39.50
2.	नहीं	66	18	27	10	121	60.50
	योग	**126**	**32**	**30**	**12**	**200**	**100**

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि कुल 200 उत्तरदाताओं में से 79 उत्तरदाता (39.5 प्रतिशत) को निःशक्तता सम्बन्धी कानूनों की जानकारी है। जबकि शेष 121 उत्तरदाता (60.50 प्रतिशत) को निःशक्ता सम्बन्धी कानूनों की जानकारी नहीं है।

यह सारणी यह भी स्पष्ट करती है कि 79 उत्तरदाताओं में 74 चलन बाधित व 5 दृष्टि बाधित निःशक्तों को निःशक्ता सम्बन्धी कानूनों की जानकारी है। जबकि शेष 121 उत्तरदाताओं में 84 चलन बाधित एवं 37 दृष्टि बाधित निःशक्ततों को निःशक्तता संबंधी जानकारी नहीं है।

विश्लेषण :–

कल्याणकारी राज्य की अनेक भूमिकाओं में एक भूमिका यह भी है कि वह शिक्षा के विभिन्न उपक्रमों के माध्यम से सीमित जनसंख्या को उन कानूनों, कार्यक्रमों एवं योजनाओं से परिचित कराये जो उनके समग्र विकास की दिशा को निर्धारित करती है। पूर्व की सारणियों में हम उन नीतियों एवं कार्यक्रमों की चर्चा कर चुके हैं,। जिनके लाभ निःशक्त सामाजिक

इकाईयों को मिल रहे हैं। भले ही शिक्षा के माध्यम से इन नीतियों एवं कार्यक्रमों की चेतना निःशक्त उत्तरदाताओं के व्यक्तित्व का भाग न हो। परन्तु कानून सम्बन्धी चेतना के लिये शिक्षा एक महत्वपूर्ण माध्यम हैं। अन्यथा इस चेतना को आन्तरीकृत नहीं किया जा सकता है। सम्बद्ध सारणी संकेत देती है कि एक बडी संख्या में उत्तरदाता कानून सम्बन्धी चेतना को प्राप्त नहीं कर सके। उत्तरदाताओं की यह संख्या (लगभग 61 प्रतिशत) है। शेष उत्तरदाताओं को सम्बन्धित कानूनों का एक सीमा तक ज्ञान है। अनौपचारिक वार्तालाप के दौरान यह तथ्य सामने आया कि उत्तरदाताओं का एक भाग चूँकि कम आयु समूह का है। अतः सभी कानूनों से परिचित नहीं हैं। यद्यपि वे उत्तरदाता जो 18 वर्ष की आयु के आसपास है, को भी सम्बन्धित कानूनों भी की समग्र जानकारी नहीं है।

यह इस तथ्य का संकेत है कि निःशक्त जनसंख्या के लिये जो शिक्षा सम्बन्धी पाठ्यक्रम है, उसमें कानूनों को विस्तार के साथ उल्लेखित नहीं किया गया है। होना तो यह चाहिये कि ये कानून सम्बन्धित नीतियाँ एवं कार्यक्रम विभिन्न स्तर की कक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों का सबके लिये भाग हो ताकि निःशक्त सामाजिक इकाईयाँ एवं सामाजिक इकाईयों के मध्य अर्थपूर्ण उद्देश्यमूलक एवं संवेदनशील अन्तःक्रियाएं जन्म एवं विस्तार ले सकें। समावेशी विकास के लिये ऐसे संगठित प्रयास समाजशास्त्री दृष्टि से अनिवार्य कहे जा सकते हैं।

सारणी क्रमांक 6.33: उत्तरदाताओं को उपलब्ध सरकारी सुविधा से संबद्ध जनकारी

समय समय पर सरकार द्वारा समाज के निःशक्तजन, वृद्धजन, दलित, असहाय, गरीब, विधवा आदि के जीवन यापन को सुगम बनाने हेतु अनेक योजनाओं का निर्माण किया जाता रहा है। इस क्रम में निःशक्जनों से प्राप्त जानकारी के आधार पर यह ज्ञात किया जा सकता है कि राजकीय योजनाओं का लाभ उन्हें मिल रहा है या नहीं। जिससे इन योजनाओं के सम्बन्ध में उनको जानकारी होने संबंधी सूचना प्राप्त होती है। इसी पक्ष को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने निःशक्जनों से उनको सरकारी योजनाओ से मिलने वाले लाभ विषय पर प्रश्न किये। इस प्रश्न से प्राप्त तथ्यों को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है।

क्र. सं.	सरकारी सुविधाऐं जो उपलब्ध है।	उत्तरदाताओं की संख्या				उत्तरदाताओं की कुल संख्या	प्रतिशत
		चलन बाधित		दृष्टि बाधित			
		बालक	बालिका	बालक	बलिका		
1.	पेंशन	116	26	25	10	177	88.50
2.	छात्रवृत्ति	98	26	27	11	162	90.50
3.	मुफ्त शिक्षा	105	18	12	05	140	78.21
4.	अन्य कोई सुविधा (वैशाखी/ट्राइ साइकिल/ब्लाइन्ड छडी आदि)	20	12	2	1	35	17.50

विवेचन :–

उपर्युक्त सारणी से यह स्पष्ट होता है कि कुल 200 उत्तरदाताओ में से 177 उत्तरदाताओं (88.50 प्रतिशत) को सरकार द्वारा पेंशन दी जा रही है जबकि शेष 23 उत्तरदाताओं (11.50प्रतिशत) को पेंशन नहीं दी जा रही है।

इस सारणी से यह भी स्पष्ट होता है कि 179 विद्यालय पढ़ने वाले उत्तरदाताओं मे से 162 उत्तरदाताओं (90.50 प्रतिशत) को सरकार द्वारा छात्रवृत्ति उपलब्ध कराई जा रही है और शेष 17 उत्तरदाताओं (9.50 प्रतिशत) को सरकार द्धारा छात्रवृति उपलब्ध नहीं कराई जा रही है।

यह सारणी यह भी निरूपित करती है कि 179 विद्यालय जाने वाले उत्तरदाताओं में से 140 उत्तरदाताओं (78.21 प्रतिशत) को मुफ्त शिक्षा की सुविधा सरकार द्धारा उपलब्ध कराई जा रही है। तथा शेष 39 उत्तरदाताओं (21.79 प्रतिशत) को सरकार द्धारा मुफ्त शिक्षा उपलब्ध नहीं कराई जा रही है। किसी भी निःशक्त बच्चे को प्रशिक्षण, आवास, पुनर्वास एवं रोजगार अवसर की सुविधा नही दी जा रही है। अन्य सुविधाएं (वैशाखी/ट्राई साईकिल/ब्लाइन्ड छडी आदि) 200 उत्तरदाताओं में से केवल 35 उत्तरदाता (17.50 प्रतिशत) को ही उपलब्ध है।

विश्लेषण :–

केन्द्र एवं राज्य अनेक दशकों से निःशक्त जनसंख्या के लिये विशेषतः बच्चों के लिये अनेक योजनाओं को एवं कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने का प्रयास करता है। यह कहा जा सकता है कि यह प्रयास सभी सामाजिक इकाईयों तक पहुँच पाने में सफल नही ं है। सारणी से स्पष्ट है कि निःशुल्क शिक्षा कार्यक्रम में छात्रवृत्ति से एवं निःशुल्क पेंशन से अधिकांश उत्तरदाता (78 से 90 प्रतिशत) लाभान्वित है। चूँकि उत्तरदाता 6 वर्ष से 18 वर्ष तक की आयु समूह के हैं इसलिये आवास, प्रशिक्षण एवं रोजगार अवसर की सुविधाओं के लिए पात्र नहीं बन पाये हैं।

कुछ उत्तरदाता ऐसे भी हैं जिन्हें दृष्टिबाधा को कम करने के लिये ब्लाइंड स्टिक, चलन बाधित उत्तरदाताओं को बैसाखी, ट्राईसाइकिल इत्यादि भी प्राप्त हुई है। हालांकि ऐसी उत्तरदाताओं की संख्या बहुत कम है।सरकारी योजनाओं एवं कार्यक्रमों का प्रत्येक इकाई तक न पहुंच पाना अनेक प्रश्नों को उत्पन्न करता है। हालांकि बडी संख्या में इन योजनाओं एवं कार्यक्रमों के लाभान्वित उत्तरदाता अनौपचारिक वार्तालाप के दौरान यह तर्क देते हैं कि इन सुविधाओं के फलस्वरूप परिवार पर उनकी आर्थिक निर्भरता एवं गतिशीलता के क्षेत्र की निर्भरता कम होती जाती है और वे एक अवसर मिलने पर स्वयं को विकास की प्रक्रिया में सहभागी इकाई बनने का प्रयास करने पर बल देते हैं।

सीमांत जनसंख्या अर्थात् हाशिये पर खडी जनसंख्या के लिये ऐसे प्रयास इस तथ्य को परिभाषित करते हैं कि एक कल्याणकारी राज्य के रूप में भारत उन समूहों को परिवर्तन की प्रक्रिया का भाग बनाने के लिये प्रयासरत है जो सामाजिक सांस्कृतिक कारणों से अथवा दैहिक कारणों से उस कुशलता को अभिव्यक्त नहीं कर पाते हैं जो सामाजिक इकाईयां सामान्य प्रकृति का होने के कारण करते हैं। यह प्रयास निःशक्त इकाईयों की सक्रियता, सृजनशीलता एवं नवाचारी प्रकृति को प्रोत्साहित कर पाने में सक्षम हैं।

शांधार्थी ने उपर्युक्त प्रस्तुत कि गई सारणीयों के अतिरिक्त भी निदर्श इकाईयों से अनौपचारिक वार्तालाप के माध्यम से निम्नलिखित प्रश्न पूछे। जिनके उत्तर इस प्रकार है।

सरकार द्वारा आपको उपलब्ध कराई जाने वाली सुविधाओं के सम्बन्ध में आपकी राय?

1. अनौपचारिक वार्तालाप के दौरान ऐसे विभिन्न पक्ष उभरकर आये जो निःशक्त सामाजिक इकाईयों के उल्लेख को व्यक्त करते हैं। जिन्हें सुझाव की संज्ञा दी जा सकती है। उत्तरदाताओं का मत था कि विभिन्न नीतियों, योजनाओं एवं कार्यक्रमों के लिये उपर्युक्त प्रशिक्षण प्रदान करने में प्रशासन तंत्र की एक महत्वपूर्ण भूमिका है।

इन भूमिकाओं की प्रकृति में पारदर्शिता का होना अनिवार्य है ताकि गैर संस्थागत व्यवहार एवं लालफीताशाही को न्यूनतम किया जा सके। उत्तरदाताओं का यह भी मत था कि स्थानीय सरकार, राज्य कर्मचारी, जन प्रतिनिधि का सामूहिक दायित्व होना चाहिये कि वे निःशक्त सामाजिक इकाईयों को एवं उनके परिवारों को नीतियों, कार्यक्रमों एवं कानूनों का पर्याप्त प्रशिक्षण प्रदान करे। प्रत्येक निःशक्त इकाई को भोजन, आवास एवं वस्त्र जैसी मूलभूत आवश्कताओं की पूर्ति हेतु पर्याप्त सुविधाएं प्रदान ही जाए और यदि इसमें कोई संस्थागत उपेक्षा होती है तो दण्डात्मक प्रावधानों को भी सम्मिलित किया जाये। उत्तरदाताओं का यह भी मत था कि विभिन्न इमारतों में रैम्प इत्यादि की सुविधा उन्हें दी जाये। अतः दिन में ऐसा समय निर्धारित हो जब अधिकारी, कर्मचारी एवं जनप्रतिनिधि इमारतों से नीचे आकर निःशक्त सामाजिक इकाईयों की समस्याओं एवं सुझावों को सुन सके और निर्धारित अवधि में उनका समाधान किया जा सके।

कुछ उत्तरदाताओं ने निःशक्तों के आरक्षण के कोटे को 3 प्रतिशत से बढाकर 5 प्रतिशत किये जाने का सुझाव दिया है। शोधार्थी ने शोध के दौरान किये गये क्षेत्रीय अवलोकन के आधार पर यह पाया कि निःशक्त सामाजिक इकाईयां समाज की प्रत्येक संरचना के द्वारा कभी न कभी दृश्य एवं अदृश्य उपेक्षाओं का शिकार होती है। यह उपेक्षा अनेक अवसरों पर प्रताडना में भी परिवर्तित हो जाती है। परिणामस्वरूप निःशक्त इकाईयां अपने जीवन को स्वयं एवं समाज पर बोझ मानकर अपने आप को बाध्यकारी जीवन के साथ सम्बद्ध करती है। यह स्थिति न केवल एक महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दा है अपितु विकास के असंतुलित विकास के असंतुलित स्वरूप का प्रतीक भी है। शोधार्थी का मत है कि शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यवसाय/पेशे से सम्बन्धित सुरक्षा सामाजिक अन्तःक्रिया के समतामूलक ढांचे एवं निःशक्त इकाईयों की सृजनशीलता के विभिन्न पक्षों को जानकर उनसे सम्बद्ध कार्यक्रमों को संचालित करने के प्रयास यदि होते हैं तो निःशक्त सामाजिक इकाईयों एवं सामान्य सामाजिक इकाईयों के मध्य के अन्तर को न्यूनतम किया जा सकता है।

शासन में भागीदारी के सम्बन्ध में आपकी राय ?

शोधार्थी ने अध्ययन के दौरान यह भी महसूस किया कि निःशक्त सामाजिक इकाईयों की निर्णय प्रक्रिया में सहभागिता के यदि प्रयास किये जायें तो सामाजिक लोकतन्त्र की व्यवस्था को और अधिक मजबूती मिल सकती है। निःसंदेह भारत दुनिया का सबसे बडा लोकतान्त्रिक समाज है परन्तु निःशक्त सामाजिक इकाईयों की निर्णय सहभागिता में आंशिक उपस्थिति भारत के सामाजिक, राजनीतिक लोकतन्त्र के सम्मुख प्रश्न चिन्ह उत्पन्न करती है। स्वतन्त्र भारत में संसद एवं राज्य की विधानसभाओं में जनप्रतिनिधि के रूप में निःशक्त सामाजिक इकाईयों की उपस्थिति बहुत कम रही है। परिणामस्वरूप उनकी राजनीतिक एवं प्रशासनिक सहभागिता भी आंशिक है। यह भी सम्भव हो सकता है कि भारत के सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टि से संस्तरण मूलक चरित्र के कारण सामान्य प्रकृति के जन प्रतिनिधि एवं प्रशासनिक अधिकारियों के साथ असमानता एवं उपेक्षामूलक व्यवहार करते हैं।

उत्तरदाता एवं उनके परिवारों का यह मत सामने आया कि कल्याणकारी प्रावधानों को सजगता के साथ समावेशी बनाने के लिये स्थानीय सरकार से केन्द्रीय सरकार तक निःशक्त सामाजिक इकाईयों के जन प्रतिनिधित्व को आरक्षण की रूप–रेखा के अन्तर्गत स्थापित किया जाये। चूंकि ऐसा नहीं है अतः जनसंख्या के इस भाग के लिये उपयुक्त प्रावधानों के अभाव में और सामान्य इकाईयां चूंकि निःशक्त इकाईयों के जीवन संघर्ष से परिचित नहीं है। अतः नियम, योजना एवं कार्यक्रम अमूर्त और यांत्रिक हो जाते हैं और सम्बन्धित सफलता संदेहास्पद हो जाती है। अतः राजनीतिक एवं प्रशासनिक संरचनाओं में निःशक्त इकाईयों की सहभागिता को सुनिश्चित करके कल्याणमूलक सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा को स्थापित किये जाने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. भारत जनगणना 2011।

   (www.census india.gov.in>disability-Data)

2. प्रशासनिक प्रतिवेदन 2012–13 निदेशालय, विशेषयोग्यजन, राजस्थान, जयपुर।

3. विशेष योग्यजन मार्गदशिका, विशेष योग्यजन निदेशालय, राजस्थान, जयपुर पृ.सं. 47।

4. प्रयास एवं प्रगति, प्रशासनिक प्रतिवेदन (2017–18), सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग राजस्थान, जयपुर पृ.सं.10।

5. निःशक्तजन अधिनियम, 1995।

   (http://en.m.wikipedia.org>wiki>right)

6. राष्ट्रीय न्यास एक्ट, 1999।

   (Thenationaltruest.gov.in/contenthi/innerpage/national-trust-act-and-provisions-hi.php)

7. दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016।

   (Disabilityaffairs.gov.in/contenthi/page/district-disability-rehabilitation-centers-hi.php)

सप्तम अध्याय

निष्कर्ष एवं सामान्यीकरण

सामाजिक शोध की प्रकृति सदैव समाजशास्त्रीय दृष्टि से सामाजिक उपयोगिता मूलक होनी चाहिए, के विचार में शोधार्थी जो स्वयं राज्य सरकार की प्रशासनिक संरचना का भाग है और सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग के विभिन्न पक्षों को निकटता के साथ मूल्यांकित करती है, ने इसे प्रेरित किया कि वह निःशक्त जनसंख्या विशेषतः निःशक्त बच्चों के जीवन विश्व का आलोचनात्मक विश्लेषण अनुभाविक प्रकृति के साथ करे।

अतः शोधार्थी के द्वारा प्रस्तुत यह शोध अनेक अवसरों पर प्रशासनिक जीवन के अनुभवों को अभिव्यक्त करता है। शोधार्थी की दृष्टि से स्वयं शोधार्थी की एथनोग्राफिक संरचना शोध प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण भाग होनी चाहिये। अपने प्रशासनिक जीवन के लगभग 9 वर्ष के अनुभवों के दौरान निःशक्त जनसंख्या से सम्बन्धित अनेक सामाजिक इकाईयों से उसकी सामाजिक अन्तःक्रिया हुई। उन इकाईयों से सम्बद्ध परिवारों से उसका सम्पर्क उसे एक ऐसे सामाजिक विश्व से परिचित कराता है जिस पर समाज शास्त्रीय शोध कम हुए हैं। इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर भरतपुर क्षेत्र में 6 वर्ष से 18 वर्ष तक के बच्चों को निदर्श इकाई बनाकर इस शोधकार्य को संचालित करने का निर्णय लिया गया है।

शोध कार्य को सात अध्यायों में शोध पर्यवेक्षक के साथ अन्तःक्रिया कर वर्गीकृत किया गया है। शोधार्थी का प्रयास रहा है कि समाज विज्ञानों में विद्यमान उस परिभाषा को शोध का हिस्सा बनाया जाये जिसके अनुसार 'अन्तःवैषयिकता' (इंटर सब्जेक्टिविटी) को "वस्तुपरकता" की अवधारणा के रूप में स्वीकार किया जाता है। इस दृष्टि से शोधार्थी शोध में 'निरपेक्ष संवेदनशीलता' की उपस्थिति को स्वीकार करती है।

प्रथम "अध्याय निःशक्त जन का समाजशास्त्रः एक विवेचन" शीर्षक से निर्मित होता है। शोधार्थी के अनुसार समाजशास्त्र एक आधुनिक समाजविज्ञान की शाखा के रूप में स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर सक्रिय विभिन्न प्रस्थितियों एवं समूहों के मध्य विभिन्न स्वरूपों की सामाजिक अन्तःक्रियाओं का वैज्ञानिक आलोचनात्मक अध्ययन है।

प्रत्येक समाज में शारीरिक दृष्टि से दो तरह की सामाजिक इकाईयां विद्यमान होती है। एक जो शारीरिक संरचना की दृष्टि से सामान्य सामाजिक इकाई के रूप में स्थापित हैं

तथा दूसरी वे जो किसी न किसी शारीरिक कमी के कारण इन सामान्य सामाजिक इकाईयों से पृथक हो जाती है। शोधार्थी ने ऐसी इकाईयों को सामाजिक इकाई के रूप में समाजशास्त्रीय अवधारणा का भाग बनाया है।

अतः समाजशास्त्रीय दृष्टि से निःशक्त सामाजिक इकाईयां उस सामाजिक श्रेणी को निर्मित करती है जिनमें विभिन्न कारणों से कोई न कोई ऐसी शारीरिक/अंगमूलक कमी उपस्थित हो जाती है जो उनके सामान्य सामाजिक जीवन एवं सम्बन्धित भूमिकाओं को अनेक अवसरों पर प्रभावित करती है। इस सामाजिक स्थिति के फलस्वरूप सामान्य इकाईयों की सामाजिक भूमिका एवं निःशक्त सामाजिक इकाईयों की सामाजिक भूमिका में संरचनात्मक एवं प्रक्रियामूलक विभेद स्थापित हो जाते हैं। शोधार्थी ने इस अध्याय में निःशक्त जनसंख्या के वर्गीकरण प्रस्तुत किये हैं। जैसे दृष्टिबाधित, चलनबाधित इत्यादि।

प्राचीन साहित्य में विशेषतः धार्मिक साहित्य में निःशक्तता को पूर्व जन्मों के परिणाम के रूप में स्थापित कर उसे ईश्वरीय दण्ड के समकक्ष रखा जाता है। चूंकि भारतीय समाज में धार्मिक साहित्य की व्यापकता जीवन प्रक्रिया का भाग है। अतः इस विचार को स्वीकार कर ऐसी इकाईयों के साथ उपेक्षामूलक व्यवहार होते हैं।

शोधार्थी ने इस अध्याय में इस विचार को अस्वीकारा है। शोधार्थी की दृष्टि में निःशक्तता दुरखाइम के समाजशास्त्र के अन्तर्गत एक सामाजिक तथ्य है। जिसमें बाह्यता, बाध्यता एवं सामान्यता की विशेषताएं पाई जाती हैं। आनुवांशिक कारण कुपोषण, दवाईयों की प्रतिक्रिया इत्यादि ऐसे कारण है जो जन्म से निःशक्तता को उत्पन्न कर देते हैं। जबकि अचानक उत्पन्न हुई गम्भीर बीमारी में उपयुक्त उपचार के अभाव, दुर्घटना, युद्ध की स्थितियां, सूखा, बाढ़ जैसे प्रकोप एवं अनेक पारंपरिक एवं संकीर्ण सामाजिक संगठनों के द्वारा समय–समय पर अंग–भंग के दण्ड वे सामाजिक कारण हैं जो निःशक्तता को जन्म देते हैं। दोनों ही स्थिति में निःशक्तता व्याधिकीय सामाजिक तथ्य के रूप में स्थापित होती रही है।

समाजशास्त्री दृष्टि से निःशक्तता को अवधारणा के रूप में विस्तार दिये जाने की आवश्यकता है। पुरूष सत्तात्मक समाज में सामान्य शारीरिक व्यक्तित्व के बावजूद महिलाओं को अनेक अवसरों से सउद्देश्य वंचित कर देना, उच्च जातियों/श्वेत प्रजातियों द्वारा निम्न जातियों/अश्वेत प्रजातियों को अवसरों की समानता से वंचित रखना, बच्चों के अंग–भंग कर उन्हें भिक्षावृत्ति के लिये बाध्य करना बालश्रम एवं बाल–उत्पीडन बंदियों को अंडरट्रायल के रूप में सामान्य जीवन की गतिविधियों से वंचित करना इत्यादि ऐसे अनेक पक्ष हो सकते

हैं जो दुरखाइम के समाजशास्त्री सिद्धान्त के अन्तर्गत व्याधिकीय सामाजिक तथ्य की रचना कर देते हैं और इन सब को निःशक्तता की परिभाषा का भाग बना सकते हैं।

सामाजिक अन्तःक्रिया के बेबरवादी एवं हेबरमास के संचारात्मक अन्तःक्रिया के पक्षों को यदि केन्द्र में रखा जाये तो यह सीमान द बुआ के इस तर्क की (महिला जन्म नहीं लेती अपितु बनायी जाती है) को निःशक्तता पर लागू किया जा सकता है अर्थात् निःशक्तता जन्म नहीं लेती अपितु एक सामाजिक रचना है। शारीरिक दृष्टि से क्षतिग्रस्त सामाजिक इकाईयों को सामान्य सामाजिक इकाईयां बार–बार इस चेतना से परिचित कराती है कि सम्बद्ध सामाजिक इकाई निःशक्त है और इसलिये वह सामान्य सामाजिक इकाई से भिन्न एवं असमान है। बार–बार इस चेतना का विस्तार निःशक्त सामाजिक इकाईयों को बाध्य करता है कि वे स्वयं को सीमांत सामाजिक श्रेणी के रूप में स्थापित कर लें।

शोधार्थी ने प्रथम अध्याय में इस पक्ष की विस्तार से चर्चा की है। शोधार्थी का मत है कि प्रत्येक समाज विज्ञान को सीमांत जनसंख्या के परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत विश्लेषित किये जाने की आवश्यकता है। जिस प्रकार समाजशास्त्र एवं अन्य समाज विज्ञानों की जेंडर परिप्रेक्ष्य के साथ व्याख्या होती है ठीक ऐसे ही इन समाज विज्ञानों की निःशक्तता परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत व्याख्या की जा सकती है।

अमेरिकन समाज वैज्ञानिक टालकट पारसन्स ने भूमिका व्यवस्था का विश्लेषण करते समय "अस्वस्थ भूमिकाएं" (सिकरॉल्स) की अवधारणा प्रस्तुत की है। शोधार्थी की दृष्टि से "सामान्य भूमिकाओं" एवं अस्वस्थ भूमिकाओं के वर्गीकरण को ध्यान में रखकर निःशक्तजनों की भूमिका प्रणाली की अवधारणा को सैद्धान्तिक स्वरूप दिया जा सकता है।

ठीक ऐसे ही निःशक्त जनों की उत्पादन सम्बन्धों में भूमिका को वर्गीय ध्रुवीकरण एवं वर्गीय असमानता के दायरे में लाकर मार्क्सीय दृष्टिकोण को प्रयुक्त करने की आवश्यकता है। साथ ही यह भी समझने की आवश्यकता है निःशक्त जनों में अलगाव की प्रक्रिया के आर्थिक व सांस्कृतिक संदर्भ कौन से हैं, क्योंकि शोधार्थी का मानना है कि निःशक्त जनों की निःशक्त जनों के साथ तथा निःशक्त जनों की सामान्य सामाजिक इकाईयों के साथ अन्तःक्रियाओं में भेद होते हैं। अतः मैक्स बैबर की औपचारिक तार्किक सामाजिक क्रिया, मूल्य तार्किक सामाजिक क्रिया, परंपरागत सामाजिक क्रिया एवं भावनात्मक सामाजिक क्रिया को सामान्य सामाजिक इकाईयों एवं निःशक्त सामाजिक इकाईयों के सन्दर्भ में वर्गीकृत किये जाने की आवश्यकता है।

शोधार्थी का मत है कि निःशक्त जनसंख्या विश्व के प्रत्येक समाज में विशिष्ट जनसंख्या जिसको केन्द्र में रखकर सामाजिक संरचना, सामाजिक संस्था, सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक संगठन इत्यादि को विश्लेषित किया जाना चाहिये।

शोधार्थी की इस पृष्ठभूमि के साथ प्रथम अध्याय में निःशक्त जन का समाजशास्त्र को एक शाखा के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न करती हैं।

द्वितीय अध्याय उस संस्कृति, राजनीति एवं अर्थतन्त्र को जानने की कोशिश है जिसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध निःशक्त जनों के साथ है।

शोधार्थी ने इस अध्याय में यह स्थापित किया है कि निःशक्त जनों की जीवन पद्धति अर्थात् संस्कृति व्यवस्था, सामान्य संस्कृति व्यवस्था से भिन्न है। वास्तव में सामान्य संस्कृति एवं निःशक्त जनों की विशिष्ट संस्कृति एक सातत्व है। ऐसे अनेक बार अवसर आते हैं जब सामान्य सामाजिक इकाईयां चलचित्र एवं नाटक इत्यादि में निःशुल्क सामाजिक इकाईयों के चरित्र को प्रस्तुत करती है। महाभारत जैसी महान परम्परा में धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी को राजनीतिक बाध्यताएं सामान्य व्यक्तित्व का होते हुए भी निःशक्त बनाती है। यह स्थिति समाज मनोविज्ञान में समानुभूति को जन्म देती है अर्थात् सामान्य सामाजिक इकाई वैसा ही व्यवहार करने की कोशिश करे जो कि निःशक्त सामाजिक इकाई करती है। इन सबके बावजूद निःशक्त की जीवन पद्धति विशिष्ट है कि वे अनेक अवसरों पर अपनी जीवन पद्धति को अधीनस्थामूलक बनाने के लिये बाध्य है। दृष्टिबाधित सामाजिक इकाईयों को गतिशीलता हेतु सामान्य सामाजिक इकाईयों के सहयोग की आवश्यकता पडती है। ऐसे ही चलनबाधित इकाईयों को अन्य इकाईयों का सहयोग लेना पडता है अथवा इन दोनों ही प्रकार की बाधित इकाईयों के चलने की प्रक्रिया सामान्य इकाईयों से भिन्न है। लगभग यह पक्ष भोजन सम्बन्धी आदत, पोषण, धार्मिक क्रियाओं इत्यादि के सम्बन्ध में दिये जा सकते हैं।

निःशक्त सामाजिक इकाईयों के लिये ऐसे अनेक उपकरण हैं जो उनके सन्दर्भ में भौतिक संस्कृति को विशिष्ट बनाते हैं। यह विशिष्ट उपकरण निःशक्त सामाजिक इकाईयों की जीवन पद्धति में सहजता को स्थापित करने की एक कोशिश कही जा सकती है।

जहाँ तक निःशक्त के साथ सम्बद्ध राजनीति का प्रश्न है शोधार्थी निम्न तर्कों को स्थापित करती है –

1. निःशक्त जनसंख्या परिवार के संचालन की प्रक्रिया ऐसी अनेक आर्थिक क्रियाओं को कर नहीं पाती है अथवा मन्द गति से कर पाती है जो कि पारिवारिक जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए आवश्यक है।

2. महिला निःशक्त सामाजिक इकाई अनेक पारिवारिक क्रियाओं को जो कि घरेलू अर्थशास्त्र की प्रणाली का भाग है, के करने में कठिनाई का अनुभव करती है अथवा उन्हें एक अधीनस्थ इकाई के रूप में अन्य इकाईयों के सहयोग की आवश्यकता होती है।

3. निःशक्त सामाजिक इकाईयां ज्ञान दक्षता के बावजूद ऐसी अनेक गतिविधियों का उपयुक्त रूप से निर्वाह नहीं कर पाती जो कि प्रशासनिक अथवा पेशे से सम्बन्धित कौशल्य की अवधारणा को निर्मित करते हैं।

4. संगठित एवं असंगठित प्रकृति के औपचारिक एवं अनौपचारिक क्षेत्र में साथ ही प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र के ऐसी अनेक गतिविधियां है जिनमें निःशक्त सामाजिक इकाईयां कुशल, अर्द्ध कुशल अथवा अकुशल श्रमिक की भूमिका का सुचारू रूप से निर्वाह नहीं कर पाती है। इन सबके परिणामस्वरूप सकल घरेलु उत्पाद में निःशक्त सामाजिक इकाईयों का योगदान सामान्य सामाजिक इकाईयों की तुलना में कम होता है और इस कारण निःशक्त सामाजिक इकाईयां आर्थिक सीमांतीकरण की प्रक्रिया का भाग बन जाती है। अनेक अवसरों पर इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता है कि सामान्य सामाजिक इकाईयों के लिये निःशक्त सामाजिक इकाईयां एक आर्थिक उपनिवेश की भांति है जिसमें शोषण, अधीनस्थता, प्रतिरोध, दमन, संस्तरण इत्यादि तत्वों को किसी न किसी रूप में समावेश है।

शोधार्थी ने इस अध्याय में यह तर्क देने की कोशिश की है कि निःशक्त सामाजिक इकाईयों के लिये एक ऐसे वैकल्पिक अर्थतन्त्र की रचना की जाये जो संगठित स्वरूप लेकर सामान्य आर्थिक व्यवस्था में व्यवस्थित रूप से योगदान कर सके।

शोधार्थी ने ग्रामीण परिवेश में चूंकि प्रशासनिक भूमिकाओं के अन्तर्गत कार्य किया है अतः यह भी कहा जा सकता है कि कृषि अर्थव्यवस्था में निःशक्तता एक बाधा बन जाती है और निःशक्त कृषक अनेक कठिनाईयों के माध्यम से कृषि कार्यों में अपने योगदान को सुचारू रूप नहीं दे पाता फिर वो चाहे, भू–स्वामी हो अथवा भू–कृषक।

एक ऐसी वैकल्पिक कृषक प्रणाली की रचना पर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है जहाँ निःशक्त किसान ऐसा कृषि उत्पादन कर सके, जिसमें निःशक्तता महत्वपूर्ण बाधा न बने। ऐसी वैकल्पिक कृषि व्यवस्था की रचना शोधार्थी की दृष्टि में प्रोद्योगिकीय विशेषज्ञ, कृषि वैज्ञानिक एवं राज्य के लिये एक चुनौती है। निःशक्त जन का राजनीतिक व्यवस्था में

योगदान एक अन्य पक्ष है जिस पर समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से चिन्तन करने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है।

एक सामान्य सामाजिक तथ्य के रूप में यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि राजनीतिक अभिजन की संरचना में निःशक्त जनों की संख्या बहुत कम है। विभिन्न राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय राजनीतिक दलों में नेतृत्वकारी इकाईयों में ही इनकी संख्या बहुत कम है।

महिला निःशक्तजन सामाजिक इकाई के रूप में राजनीतिक सहभागिता की दृष्टि से लगभग पूर्ण रूप से हाशिये पर है। राजनीतिक समाजशास्त्र की दृष्टि से निःशक्त जनसंख्या को राजनीतिक सहभागिता से लगभग पूर्णरूपेण पृथक नागरिक की सामाजिक श्रेणी में रखा जा सकता है।

चुनाव में चूंकि गतिशीलता होना आवश्यक है जो कि निःशक्त सामाजिक इकाई की कमोवेश विशेषता नहीं है। यह भी देखा गया है कि विभिन्न राजनीतिक दलों मे निःशक्तजन सक्रिय कार्यकर्त्ता भी नहीं है और इस कारण उनसे सम्बन्धित नीतियाँ, कार्यक्रम एवं अन्य संस्थागत प्रयास लगभग न के बराबर है। यदि हैराल्ड लास्की की शब्दावली को केन्द्र में लाया जाये तो निःशक्त जन द्वितीय श्रेणी के नागरिक बन जाते हैं जिनके हितों के प्रति अन्य सजग इकाईयां उपेक्षा का भाव बरतती है।

इस दृष्टि से राजनीतिक व्यवस्था को निःशक्त जनों के सन्दर्भ में केन्द्र एवं परिधि में विभक्त किया जा सकता है। केन्द्र में सामान्य सामाजिक इकाईयां सम्मिलित है जबकि परिधि में निःशक्त सामाजिक इकाईयों सहित हाशिये पर खडी अन्य सामाजिक श्रेणियां भी है पर सबसे अन्त में निःशक्त भी आते हैं अर्थात् हाशिये पर खडी जनसंख्या वाली सामाजिक श्रणियों में निःशक्त और भी हाशिये पर है। संस्तरण की यह जटिलता दबावसमूह एवं हितसमूहों के निर्माण की प्रक्रिया में निःशक्तों की भूमिका को सीमित कर देती है। विश्व में किसी भी भाग में ऐसा कोई महत्वपूर्ण सामाजिक आन्दोलन दृष्टिगोचर नहीं होता है जो मुख्यतः निःशक्तजनों के द्वारा या तो संचालित हो या निःशक्त जनों के हितों के समर्थन में हो।

इस अध्याय में शोधार्थी ने राजनीति संस्कृति एवं अर्थतन्त्र में विद्यमान इस समानता को रेखांकित किया है। शोधार्थी का यह भी मत है संस्कृति, राजनीति एवं अर्थतन्त्र अन्तःसम्बद्ध अवधारणाएं है और इस अन्तःसम्बद्धता में केन्द्र और परिधि का वर्गीकरण निःशक्तों के संदर्भ में अर्थपूर्ण तरीके से लागू होता है। कल्याणकारी राज्य के संदर्भ में

शोधार्थी इसे परिवर्तन एवं विकास कार्यक्रमों की असफलता के संकट के रूप में रेखांकित कर सकती है।

अध्याय तीन में निःशक्तजनों के अध्ययन जो कि किये जा चुके हैं, का मूल्यांकन करने का प्रयास शोधार्थी ने किया है। निःशक्तजन एवं सामाजिक परिवेशःसमाज मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि, शीर्षक के इस अध्याय में क्लासिकल एवं आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों में निःशक्तजन के पक्षों को कैसे जाना जाये, की संक्षिप्त कोशिश शोधार्थी ने की है। इसके साथ ही विभिन्न समाज वैज्ञानिकों के द्वारा अध्ययनों का संक्षिप्त सार प्रस्तुत किया गया है। शोधार्थी ने यह तर्क स्थापित किया है कि समाज विज्ञानों में निःशक्त जनसंख्या पर शोध की उपेक्षा की गई है क्योंकि निःशक्त जनसंख्या का सामाजिक जीवन समाज विज्ञानों में मुख्य निर्वचन का भाग नहीं बन सका है।

उपर्युक्त अध्ययन एवं निर्वचन इस तर्क की पुष्टि करते हैं कि निःशक्त सामाजिक इकाईयां एक विशिष्ट जीवन पद्धति का प्रतिनिधित्व करती है। अतः इनके अध्ययन हेतु विशिष्ट सिद्धान्तों की भी आवश्यकता है। हम यहाँ मिचेल फूको को इस तर्क को स्थान दे सकते हैं कि राज्य की सत्ता इतिहास में अनेक सामाजिक इकाईयों को इसलिये पागल घोषित करती क्योंकि वे राज्य के हितों के विरुद्ध अपने विचार को व्यक्त करते थे। फूको का यह मत निःशक्त जनसंख्या पर भी लागू हो सकता है क्योंकि सामाजिक इकाईयां शारीरिक दृष्टि से सामान्य है। अतः अपनी तुलना के माध्यम से वे विभिन्न इकाईयों को निःशक्त घोषित कर अपने वर्चस्व की संस्कृति का प्रदर्शन करती है। ठीक इसी प्रकार हम दुरखाइम के सामाजिक एकजुटता के सिद्धान्त में विद्यमान तर्कों को निःशक्तता के ऊपर लागू करें तो यह पाते हैं कि निःशक्त जनसंख्या यांत्रिक एवं सावयवी दोनों ही प्रकृति की एकजुटता को अपनी भूमिकाओं के कारण गत्यात्मक बनाती है और साथ ही श्रम विभाजन में इनकी भूमिकाओं को अन्य की भूमिकाओं से अलग कर श्रम विभाजन के ढांचे को एक विशिष्ट पक्ष दे सकते हैं।

मैक्स बेबर की सामाजिक क्रियाओं के सिद्धान्त में सामाजिक क्रियाओं के प्रकार निःशक्त जनों के सन्दर्भ में भिन्न हो जाते हैं क्योंकि यह भिन्नता कहीं न कहीं पारसन्स के "अस्वस्थ भूमिका" का आधार ग्रहण कर लेती है। काल मार्क्स के वर्गीय ढांचे में निःशक्त जन और भी निम्नवर्गीय स्वरूप ग्रहण कर सकते हैं चूंकि वे अतिरिक्त समय में अतिरिक्त पूंजी के संकेन्द्रण में सक्षम भूमिका का निर्वाह नहीं कर सकते। इसलिये अन्य की तुलना में इनका शोषण और अधिक दमनमूलक हो जाता है। और साथ ही वे पारिश्रमिक असमानता

का भाग बन जाते हैं। शोधार्थी की दृष्टि से निःशक्तजनों की विशेषता निःशक्त बच्चों के समाजीकरण की प्रक्रिया के लिये विशिष्ट सैद्धान्तिक स्वरूपों की आवश्यकता है।

शोधार्थी यह मानती है कि सी.एच. कूले एवं जॉर्ज हरवर्ट मीड के समाजीकरण के सिद्धान्त सामान्य प्रकृति की इकाईयों पर तो लागू होते हैं परन्तु निःशक्त बच्चों पर उनका क्रियान्वयन आंशिक प्रकृति का है क्योंकि निःशक्त बच्चों के समाजीकरण में अधीनस्थता एवं आश्रितता सामान्य बच्चों की तुलना में बहुत अधिक है। इन सैद्धान्तिक एवं अध्ययनमूलक विवेचनाओं के आधार पर शोधार्थी यह तर्क दे सकती है कि निःशक्त जनों के संदर्भ में अवधारणाओं, सिद्धान्तों एवं पद्धतिशास्त्र को विभिन्न स्वरूपों के साथ समझने एवं उन्हें स्थापित करने की आवश्यकता है। शोधार्थी समय एवं अन्य अवरोधों के कारण इच्छुक होने के बावजूद अवधारणाओं, सिद्धान्तों एवं पद्धतिशास्त्र को निःशक्त जनों के संदर्भ में आंशिक रूप से ही प्रस्तुत कर सकी है। इन सब के लिये स्वतंत्र शोध की आवश्यकता शोधार्थी महसूस करती है।

अध्याय चार में शोधार्थी ने शोध प्रक्रिया की विवेचना को प्रस्तुत किया है। इस अध्याय में शोधार्थी ने विज्ञान, प्रोद्योगिकी एवं पद्धति के सम्बन्धों की अन्तःनिर्भरता को प्रारम्भ में बताया है। विज्ञान ऐसा व्यवस्थित ज्ञान है जिसके कारण परिणाम सम्बन्धों की तथ्यपरकता को केन्द्र में रखकर वैचारिकी को निर्मित किया जाता है और इसलिये विज्ञान अंधविश्वास तथा तत्वशास्त्रीय चिन्तन से आगस्ट काम्ट वैज्ञानिक चेतना के उद्‌भव को प्रत्यक्षवादी चरण की संज्ञा देते हैं और वैज्ञानिक पद्धति में प्रयोग, तुलना एवं अवलोकन को आधारभूत अवयव के रूप में स्वीकार करते हैं। इन पक्षों को केन्द्र में रखकर शोध की विशेषताओं एवं शोध के चरणों को शोधार्थी ने प्रस्तुत किया है।

शोधार्थी के अनुसार इस शोध प्रक्रिया में भरतपुर जिले के 6 वर्ष से 18 वर्ष से आयु समूह के निःशक्त बच्चे सार्वभौम का निर्माण करते हैं। इस सार्वभौम्य से 200 निःशक्त बच्चों को निदर्श इकाई के रूप में शोधार्थी ने चुना है। क्योंकि प्रत्येक निःशक्त बच्चा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये परिवारी जनों पर आश्रित है।

अतः वास्तव में 200 परिवार शोधार्थी के लिये निदर्श इकाई बन जाते हैं। 200 निःशक्त निर्दश इकाईयों का चयन स्तरीकृत निदर्शन प्रणाली के आधार पर किया गया है। यह स्तरीकृत प्रणाली दृष्टिबाधित एवं चलनबाधित चरों का प्रतिनिधित्व करती है साथ ही बालक एवं बालिकाओं दोनों को तथा ग्रामीण एवं नगरीय परिवेश में पाये गये निःशक्त परिवारों को चयन प्रक्रिया में निदर्शन इकाई के रूप में सम्मिलित किया गया है। अनेक

अवसरों पर स्तरीत निदर्शन प्रक्रिया चूंकि सफल नहीं हो सकी इसलिये उद्देश्यपूर्ण निदर्शन को प्रतिस्थापित करने में शोधार्थी को बाध्य होना पडा।

शोध में 126 उत्तरदाता चलनबाधित तथा 30 उत्तरदाता दृष्टिबाधित हैं। यह दोनों ही श्रेणियां बालकों की है। जबकि 32 बालिका चलनबाधित एवं 12 बालिका दृष्टिबाधित के रूप में निदर्श इकाई चयन का भाग बनी। इस अध्ययन में शोधार्थी ने शोध उद्देश्यों को रेखांकित किया है। जिनकी संख्या 07 है। चूंकि शोध की प्रकृति प्रधानतः गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक है इसलिये परिकल्पना के स्थान पर शोध प्रश्नों को निर्मित किया गया है। शोध प्रश्नों की संख्या 9 है जिनकी रचना शोधार्थी ने अपने प्रशासनिक अनुभवों एवं क्षेत्रीय अवलोकनों के आधार पर की।प्रस्तुत शोध में प्राथमिक तथ्यों के लिये शोधार्थी ने साक्षात्कार अनुसूची को प्रयुक्त किया और साथ ही निदर्श इकाईयों के परिवारों से विभिन्न प्रकार की जानकारी अनौपचारिक वार्तालाप के आधार पर प्राप्त की, जिन्हें कि शोध में सम्मिलित किया गया।भारत सरकार एवं राज्य सरकार के द्वारा समय–समय पर प्रस्तुत प्रतिवेदनों को द्वितीयक सूचनाओं के संकेन्द्रण के लिये प्रयुक्त किया गया।

अध्याय पाँच में द्वितीयक सूचनाओं शोधार्थी के अनौपचारिक वार्तालाप एवं क्षेत्रीय अवलोकन के आधार पर निःशक्तजन उत्तरदाताओं के साथ मनोवैज्ञानिक विश्व को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। उत्तरदाताओं के परिवारीजनों का यह मत था कि उनके सांस्कृतिक प्रयासों के बावजूद निःशक्त संतान सामाजिक समायोजन की प्रक्रिया में कठिनाई का अनुभव करती है। उनका मत था कि निःशक्तता एक स्वाभाविक कारण के रूप में कुण्ठा केन्द्रित मनोवैज्ञानिक स्वरूप की रचना करती है। निःशक्त बच्चें कम बोलते हैं अपनी समस्याओं को अभिव्यक्त करने के लिये अनेक अवसरों पर भावनात्मक आक्रामकता का शिकार हो जाते हैं। अनेक अवसरों पर रोना, परिवारी जनों से एवं मित्रों से अन्तःक्रिया में दूरी बना लेना और अनेक अवसरों पर स्वतंत्र रूप से भूमिका निर्वाह की कोशिश में असफल होने पर हीनता तथा अवसाद का शिकार हो जाना वे पक्ष है जो इन उत्तरदाताओं के मनावैज्ञानिक विश्व को निर्मित करते हैं। इस प्रकार की स्थिति दृष्टिबाधित निःशक्त उत्तरदाताओं विशेषतः बालिका उत्तरदाता में अधिक पायी गयी। हालांकि कुछ परिवारी जन इन तथ्य को भी स्वीकार करते हैं कि निःशक्त बच्चें स्वयं को स्वतन्त्र करने की कोशिश में अन्तर्निहित सृजनशीलता को केन्द्र में लाने का प्रयास करते हैं। सामाजिक अन्तःक्रिया करते हुए वे निःशक्तता को बाधा नहीं बनने देने और उत्साह के साथ सामान्य प्रकृति के समाजीकरण का भाग बनने की कोशिश करते हैं। परिवारी जनों का यह भी मत था कि इन बच्चों की समाज में किसी भी समूह के द्वारा उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये।

अर्थात् प्रयास निःशक्त जन के पक्ष में समाज मनोवैज्ञानिक परिवेश को निर्मित किये जाने की आवश्यकता है।

निःशक्त उत्तरदाताओं का यह मत था कि उनके परिवारी जन, नातेदार, पडौस एवं शिक्षक अनेक अवसरों पर उनकी निःशक्तता को रेखांकित कर लांछितीकरण (स्टिगमाइजेशन) की प्रक्रिया को उत्पन्न कर देते हैं। यह स्थिति उन्हें मनोवैज्ञानिक रूप से हतोत्साहित करती है। वे यह अनुभव करते हैं कि वे समाज के लिये अधीनस्थ इकाईयां है। कुछ उत्तरदाताओं ने यह संकेत दिया कि हतोत्साहित करने और लांछित करने की यह प्रक्रिया उन्हें अनेक अवसरों पर आत्महत्या की प्रवृत्ति को उनकी चेतना का भाग बना देती है। जहां तक सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश का प्रश्न है उत्तरदाताओं एवं उनके परिवारीजनों का यह मत था आत्मनिर्भरता एवं अन्तःनिर्भरता के प्रश्न सामाजिक भविष्य के प्रश्न हैं। अनेक परिवारीजनों का यह मत था कि बच्चा 18 वर्ष की आयु तक किसी न किसी रूप में परिवार पर निर्भर रहता है फिर वह चाहे सामान्य हो अथवा निःशक्त अथवा बालक हो अथवा बालिका हो। परिवारों को अपनी क्षमताओं के अनुसार भूमिकाओं का निर्वाह कर निःशक्त बच्चों की स्वतन्त्रता एवं स्वायत्तता के मूल्य से परिचित कराने की आवश्यकता है।

शोधार्थी अपने प्रशासनिक अनुभवों के आधार पर तर्क दे सकती है कि निःशक्त जनों के लिये अनुकूलनशीलता के मनोसांस्कृतिक परिवेश को निर्मित करना अत्यंत कठिन है। यह एक स्थिति में अमूर्त एवं आदर्शात्मक हो जाता है। यह एक तथ्य है कि सृजनशील होने के बावजूद निःशक्तता अनेक व्यवहार प्रणालियों में अवरोध उत्पन्न करती है और ऐसी स्थिति में सहयोग एवं आश्रितता की आवश्यकता अथवा अनिवार्यता सम्बद्ध सामाजिक इकाई को अस्थायी हताशा का भाग बनाती है और यह हताशा धीरे–धीरे अनेक अवसरों पर अकेलापन की मनोव्याधि को निर्मित कर देती है। इस दृष्टि से निःशक्त बच्चों को समाज मनोवैज्ञानिक विश्व अनेक विसंगतियों एवं अन्तःविरोधों के समग्र से निर्मित होता है और यह समग्रता निःशक्त व्यक्ति एवं समाज के सम्बन्धों को सामान्य व्यक्ति एवं समाज के सम्बन्धों से पृथक कर देती है। शोधार्थी अनुभव करती है कि व्यक्ति एवं समाज के सम्बन्धों की इन पक्षों की जो निःशक्त एवं सामान्य इकाईयों से निर्मित होते हैं, का तुलनात्मक अध्ययन एक स्वतन्त्र शोध के रूप में किये जाने की आवश्यकता है।

द्वितीयक स्त्रोतों एवं अनौपचारिक वार्तालात अथवा साक्षात्कार ने ज्ञात सूचनाओं के आधार पर अध्ययन पाँच की रचना कुछ अन्य पक्षों की तरफ भी हमारा ध्यान आकर्षित

करती है। निःशक्त बच्चों के विश्लेषण से सम्बन्धित हम अनेक मनो–समाजशास्त्रीय अथवा समाज मनोवैज्ञानिक पक्षों की चर्चा कर सकते हैं। वस्तुतः निःशक्तता कहीं न कहीं मानसिक स्वास्थ्य के लिये भी एक व्याधिकीय यथार्थ बन जाती है। परिणामस्वरूप समायोजन से सम्बन्धित अनेक सवाल उत्पन्न होते हैं। मानसिक स्वास्थ्य एवं मानसिक अस्वस्थता के मध्य मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय दृष्टि से स्पष्ट अन्तर नहीं किया जा सकता।

शोधार्थी ऐसी अनेक सामाजिक इकाईयों की चर्चा कर सकती है जिनका व्यक्तित्व सामान्य है पर अचानक अन्य कारणों से वे अवसाद की स्थिति का शिकार हो जाते हैं और अनावश्यक रूप से क्रोध की प्रक्रिया का हिस्सा बन जाते हैं। आधुनिक प्रकृति पेशों में संलग्न अनेक उच्च शिक्षा प्राप्त सामाजिक इकाईयां मानसिक रूप से अस्वस्थ हो जाती है। क्योंकि अधिक कार्यभार के कारण वे सामाजिक समायोजन नहीं कर पाती है। निःशक्त बच्चें भी अपने सामाजिक जीवन में इस प्रकार के कुसमायोजन को अभिव्यक्त करते हैं। उनके व्यक्तित्व में अनेक अवसरों पर निम्नलिखित क्रियाएं अथवा व्यवहार देखने को मिल सकते हैं–

1. अनावश्यक रूप से आक्रामक व्यवहार अर्थात् जोर से चिल्लाना, रोना इत्यादि।
2. विचार संरचना में अनेक अवरोध जैसे सामाजिक जीवन के विषय में नकारात्मक दृष्टि, अनेक तथ्यों को तिरस्कृत कर देना।
3. भावनात्मक अवरोध जैसे नैराश्य, तटस्थता इत्यादि।
4. प्रेरणा एवं उद्देश्यमूलक पक्षों में अवरोध अर्थात् अपने वर्तमान एवं भविष्य के प्रति अस्थिर दृष्टिकोण।
5. जैविकीय अवरोध अचानक शारीरिक रूप से उत्तेजित हो जाना (हाइपर – हाइपो एक्टिव)

ये स्थितियां सामान्य व्यवहार अथवा समायोजित व्यवहार के विपरीत या उससे भिन्न हैं। इन स्थितियों के कारण निःशक्त बच्चें मानसिक अस्वस्थता की प्रक्रिया का स्वाभाविक भाग बनते हैं। क्योंकि समाज के द्वारा अनेक अवसरों पर उनकी उपेक्षा एक सामान्य प्रक्रिया है। अचानक नैराश्य की स्थिति का उत्पन्न हो जाना, किसी कार्य को करते समय (नरवसनैस) की अनुभूति का वह पक्ष जिसे चिन्ता के रूप में व्यक्त किया जाता है। इसके साथ ही निम्नता – श्रेष्ठता (इनफीरियटी – सुपीरियटी) की धारणा एवं एन्जाइटी के विभिन्न स्तर इन निःशक्त बच्चों को कभी आक्रमक बनाते हैं और कभी रक्षात्मक बनाते हैं।

समाज मनोविज्ञान में हम इन समस्त प्रक्रियाओं को कुसमायोजन के साथ सम्बद्ध करते हैं। इस कुसमायोजन को न्यूनतम करना समाज एवं राज्य का दायित्व है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने ऐसी अनेक मनोथैरेपी (साइको थैरेपी) की चर्चा की है, जिसके माध्यम से निःशक्त बच्चों में उत्पन्न होने वाले आक्रामक मनोभावों को न्यूनतम किया जा सकता है। इस प्रकार की थैरेपी दिन–प्रतिदिन की समस्याओं को जो कि निःशक्त बच्चों के सन्दर्भ में है, के समाधान के प्रयास का भाग बन सकती है (साइकोलॉजी ; बी. वोनहॉलर गिल्मर, 1970, हेरर एण्ड रॉ पब्लिशर, न्यू यॉर्क)। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के उपरान्त तथा प्रौद्योगिकीय क्रांति ने ऐसे अनेक उपकरणों को उत्पादित किया है जिनके माध्यम से निःशक्त बच्चों के सामाजिक सांस्कृतिक जीवन में उत्पन्न होने वाले कुसमायोजन को कम किया जा सकता है।

सोशल मीडिया पर अनेक ऐसे उपाय समय–समय पर मनोवैज्ञानिकों एवं चिकित्सकों के द्वारा मैसेज के रूप में भेजे जाते हैं जो कि निःशक्त बच्चों में उत्पन्न होने वाली मानसिक अस्वस्थता को न केवल कम करते हैं बल्कि उनके व्यक्तित्व में ऐसे तर्कसंगत विचारों को समाविष्ट करने में सहायक होते हैं, जिनसे ये निःशक्त बच्चें उस ज्ञान को आन्तरीकृत करें जिनसे मानसिक अस्वस्थता के साथ स्व–संघर्ष किया जा सकता है। वास्तव में ज्ञान अर्थव्यवस्था ने निःशक्त बच्चों की समस्याओं के समाधान के अवसरों को जन्म दिया है और नागरिकीय समाज को प्रेरित किया है कि वे निःशक्तजनों के हित में अपनी भूमिकाओं का निर्वाह करे। राज्य एवं नागरिकीय समाज के मिले–जुले हस्तक्षेप से निःशक्तजनों विशेषतः बच्चों के लिये अनुकूल परिवेश निर्मित करने के एवं उसे निरन्तरता देने के व्यवस्थित प्रयास किये जा सकते हैं। इन प्रयासों को मूर्त रूप देने के लिये आवश्यक है कि निःशक्त बच्चों के सामाजिक जीवन को समझा जाये।

शोधार्थी ने अध्याय छः में निःशक्त बच्चों का जीवन अनुभव समझने का प्राथमिक स्त्रोतों के माध्यम से इनको समझने का प्रयास किया है। साथ ही उन नीतियों की तरफ संकेत किया है जो निःशक्त उत्तरदाताओं की जीवनचर्या का भाग बनती है और उन्हें उन्नयन के अवसर प्रदान करती है। अध्याय छः में निम्नलिखित तथ्यों की तरफ शोधार्थी का ध्यान आकर्षित करता है। तथ्यों से ज्ञात होता है कि निःशक्तता की प्रघटना की दर संख्या की दृष्टि से नगरों की तुलना में गांवों में अधिक है। साथ ही निःशक्तता का सामना बालिकाओं की तुलना में बालकों को अधिक करना पडता है। साथ ही दृष्टिबाधित निःशक्तता की तुलना में चलनबाधित निःशक्तता विद्यमान है।

शोधार्थी का तर्क है कि यथार्थ मुख्यतः चेतना के निम्न स्तर से जुडा है जो कि नगरों की तुलना में गांव में अधिक है। बालिकाएं पुरूष सत्तात्मकता की प्रकृति के कारण चूंकि सार्वजनिक स्पेस में कम सक्रिय होती है। अतः बालिकाओं में निःशक्तता बालकों की तुलना में कम हो जाती है। यह भी एक तथ्य है कि चलनबाधित निःशक्तता का शिकार अधिक बच्चें होते हैं जिसका मुख्य कारण यातायात की अव्यवस्थित प्रकृति का होना। गांव में चिकित्सा सुविधाओं का अभाव भी निःशक्तता को नगरों की तुलना में व्यापक बना देता है।

शोधार्थी ने यह भी पाया कि निःशक्तता की प्रघटना सामान्य जातियों में बडी संख्या में देखने को मिलती है। सम्भवतः इसका कारण सामान्य जातियों में व्याप्त वह पारम्परिक एवं संकीर्णतावादी चेतना है जिसके कारण निःशक्तता का इलाज चिकित्सालयों की बजाय धार्मिक गुरूओं के द्वारा करवाया जाता है। जन्म के समय ऐसे परम्परागत पंडितों की भूमिका स्वास्थ्य की दृष्टि से भविष्य में बच्चे के लिये समस्या उत्पन्न करती है और वह आंशिक या पूर्ण निःशक्तता का शिकार हो जाता है। स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता में कमी भी एक महत्वपूर्ण कारक है जिसके फलस्वरूप पिछडी हुई जातियों एवं निम्न जातियों में निःशक्तता की प्रघटना का उभार होता है। साथ ही निःशक्तता एक निम्नवर्गीय प्रघटना है। मध्यम वर्ग एवं उच्च वर्ग में चूंकि आधुनिकीकरण के हर स्वरूप प्रविष्ट हो चुके हैं। अतः इन सामाजिक समूहों में निःशक्तता के केसेज बहुत कम हैं। और यदि हैं भी तो वे अधिकांशतः सामाजिक कारकों का परिणाम है अर्थात् उनका स्वास्थ्य वंशानुगत नहीं है। जबकि निम्न जातियों एवं अन्य पिछडा वर्ग में निःशक्तता आनुवांशिक प्रकृति की ज्यादा है क्योंकि इन समूहों में कुपोषण, निर्बलता के कारण अधिक बीमारी एवं पुरूष सत्तात्मकता के कारण महिलाओं की बीमारियों की उपेक्षा जैसे अनेक कारक विद्यमान हैं।

शोधार्थी ने प्राथमिक तथ्यों के आधार पर यह भी पाया कि निःशक्त उत्तरदाता एवं उनके परिवारों में राजनीतिक चेतना एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण के स्तर निम्न है परिणामस्वरूप निःशक्तता को एक दैवीय प्रघटना के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है और राज्य एवं प्रशासन इत्यादि की भूमिकाओं को आलोचनात्मक विश्लेषण की उपस्थिति कम होती है। दैवीय प्रघटना के कारण जो चेतना उत्पन्न होती है उसमें संस्तरण एवं असमानता स्वाभाविक रूप से विद्यमान हो जाती है। साथ ही समाजीकरण की प्रक्रिया में दैवीय स्वरूप असहायता पूर्व जन्म के कर्म जैसे अनेक अवयव व्यक्तित्व की चेतना का भाग बनते जाते हैं जिसके कारण संस्तरण एवं असमानता तथा निःशक्त बच्चों की दुविधापूर्ण जीवन को भाग्यवादिता के साथ सम्बद्ध कर एक ऐसा सामाजिक विश्व निर्मित किया जाता है जिसमें

निःशक्त बच्चों के साथ भावनात्मक निकटता दया का द्योतक हैं। ऐसे बच्चें परिवार के लिये प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भार है और यह बच्चें निर्णय प्रक्रिया और विकास कार्यक्रमों में सहभागिता करने में चूंकि सक्षम नहीं है या केवल आंशिक रूप से सक्षम हैं अतः वे कहीं न कहीं आन्तरिक परिवेश में सामाजिक बहिष्कार (सोशल एक्सक्लूजन) की प्रक्रिया का भाग बन जाते हैं।

आधुनिक सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया एवं कल्याणकारी राज्य की भूमिका ने अनेक सकारात्मक परिवर्तन किये हैं। प्राथमिक स्त्रोतों से मिली सूचनाओं के आधार पर यह पाया गया कि अधिकांश निःशक्त उत्तरदाता विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। हालांकि शिक्षक उनके साथ ऐसा व्यवहार करते हैं जो उपेक्षा की श्रेणी में आता है।

निःशक्त बच्चों के लिये निःशक्त विद्यालयों की स्थापना कल्याण कार्यक्रम का ही एक भाग हैं परन्तु ऐसे विद्यालय अध्ययन क्षेत्र में नही पाये गये। जो कि निःशक्तजन अधिनियम (1995) के अनुसार आवश्यक है। यह भी पाया कि निःशक्तता सामाजिक अन्तःक्रिया को प्रभावित करती है और यह प्रभाव निःशक्त सामाजिक इकाईयों की व्यक्तित्व संरचना में निहित सृजनशीलता को नकारात्मक रूप से न केवल प्रभावित करता है बल्कि निःशक्त सामाजिक इकाईयों के जीवन में तनाव को एक नियमित यथार्थ बना देता है।

शोधार्थी का मानना है कि निःशक्त सामाजिक इकाईयों को तनावमुक्त रखने का दायित्व राज्य एवं परिवार दोनों का है। यह संस्थागत संरचनाएं यदि पारम्परिक सहयोग, भावनात्मक लगाव एवं विशिष्ट स्पेस स्थापित कर निःशक्त बच्चों को खेलकूद, शिक्षा, मित्रता इत्यादि के पक्षों से परिचित कराये तो निःशक्त सामाजिक इकाईयां ना केवल अपनी सृजनशीलता के साथ उपर्युक्त न्याय कर सकती है, अपितु समावेशी विकास को अपने जीवन में सम्मिलित कर सकती है।

शोधार्थी ने यह भी पाया कि निःशक्त सामाजिक इकाईयों की सामाजिक अभिवृत्ति सामान्य सामाजिक इकाईयों की भांति है, अर्थात् उनकी आकांक्षा, संरचना में और सामान्य इकाईयों की आकांक्षा, संरचना में गुणात्मक अन्तर नहीं है और इसलिए परिवार एवं राज्य को वे उपाय करने चाहिये, जिनके माध्यम से निःशक्तता को न्यूनतम किया जा सके और जो निःशक्त जनसंख्या है, वह अपनी सृजनशीलता की योग्यता को विशिष्ट अवसरों में स्थानान्तरित कर आर्थिक विकास, सांस्कृतिक विकास, राजनैतिक लोकतंत्र के विस्तार एवं समानता तथा सामाजिक तनाव के मूल्यों को ना केवल विस्तार दे सके, अपितु उनमें सामाजिक इकाईयों की भांति हस्तक्षेप कर सके।

शोधार्थी उपरोक्त निष्कर्ष एवं सामान्यीकरण के आधार पर समाजशास्त्रीय पक्षों के उपयुक्त विश्लेषण हेतु और उनकी समस्याओं के समाधान हेतु सिक्युरिटी मॉडल की रूपरेखा को भावी अध्ययनों में प्रस्तुत करती है। इस प्रारूप में –

एस का अर्थ ''सेंसेटाइजेशन अबाउट डिफरेन्टिलि एबल पर्सन एण्ड देयर इश्यूज'' से है।

ई का अभिप्राय ''एथेनोग्राफिक प्रोफाइल ऑफ डिफरेन्टिलि एबल पर्सनलिटी'' से है।

सी का अभिप्राय ''क्युमिलेटिव करैक्टर ऑफ रिफोर्मेटिव एक्शन'' से है।

यू का अभिप्राय ''अल्टीमेट करैक्टर ऑफ रिफोर्मेटिव पॉलिसी'' से है।

आर का अभिप्राय ''रेशनेलाइजेशन ऑफ ब्यूरोक्रेटिक स्ट्रक्चर्स, मेन्ट फोर टेक्लिंग्स इश्यूज ऑफ डिफरेन्टिलि एबल पर्सन'' से है।

आई का अभिप्राय ''इन्टीग्रेटेड पॉलिसीज एण्ड प्लानिंग फोर अपलिफ्टमेन्ट ऑफ सोशल लाईफ ऑफ डिफरेन्टिलि एबल पर्सन'' से है।

टी का अभिप्राय ''टैक्नोलॉजिकल इनोवेशन इन द इन्टरेस्ट ऑफ डिफरेन्टिलि एबल पर्सन'' से है।

वाई का अभिप्राय ''ईयरली इवेलुएशन ऑफ पॉलिसीज एण्ड प्लानिंग'' से है।

शोधार्थी का मानना है कि इस प्रारूप के द्वारा निःशक्त जनसंख्या को एक विशिष्ट सामाजिक श्रेणी के रूप में समग्र विकास की प्रक्रिया का भाग बनाया जा सकता है और साथ ही उनके सामाजिक जीवन से जुड़ी विभिन्न समस्याओं के संस्थागत समाधान के प्रयास किये जा सकते हैं। इस प्रारूप की रचना के उपरान्त शोधार्थी अपने शोध अनुभवों तथा प्रशासनिक अनुभवों के आधार पर निःशक्तजनों, विशेषतः निःशक्त बच्चों की अनौपचारिक एवं औपचारिक जीवन प्रक्रिया में निहित समस्याओं के उपयुक्त समाधान हेतु निम्न सुझाव को प्रस्तुत करना चाहेगी –

1. निःशक्त जनसंख्या के लिये केन्द्र एवं राज्य सरकार की भर्तियों में आरक्षण का प्रतिशत बढ़ाये जाने पर विचार करना आवश्यक है, क्योंकि विभिन्न पेशों एवं प्रशासनिक तथा अन्य सेवाओं में निःशक्त इकाईयों की संख्या बहुत कम है।
2. निर्णय प्रक्रिया में निःशक्त जनसंख्या की सहभागिता को सुनिश्चित किया जाये और इस हेतु संसद एवं विधानसभाओं में योग्य निःशक्त व्यक्तियों को मनोनयन प्रक्रिया में सम्मिलित किया जाये।

3. शिक्षा के अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत जिस प्रकार निर्धनता की सीमा रेखा के नीचे के परिवार के बच्चों को निजी विद्यालयों में प्रवेश में आरक्षण का प्रावधान है, ठीक वैसे ही निःशक्त बच्चों को भी निजी विद्यालयों में प्रवेश में आरक्षण का प्रावधान दिया जाये।

4. राष्ट्र, राज्य के द्वारा विभिन्न परिसरों एवं बहुमंजली इमारतों में निःशक्त इकाईयों के लिये रैम्प एवं अन्य प्रकार की विशिष्ट सुविधाओं को परिसर की निर्माण योजना में अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया जाये।

5. प्रत्येक प्रकृति के निःशक्त व्यक्ति वह चाहे दृष्टिबाधित हो अथवा चलनबाधित के साथ, यात्रा के दौरान सहयोगी इकाई को निःशुल्क यात्री के रूप में सुविधा प्रदान की जाये।

6. निःशक्त सामाजिक इकाईयों के लिये ऐसे नियमित परीक्षण किये जाएं, जिनसे उनके विशिष्ट सृजनशीलता की जानकारी मिल सके और उनके अनुरूप उन्हें नियमित रूप से पर्याप्त प्रशिक्षण प्रदान किये जाएं, ताकि वे अपनी सृजनशीलता को राष्ट्र, राज्य के विकास की प्रक्रिया में सम्मिलित कर सकें।

7. निःशक्त विद्यार्थियों को प्रत्येक स्तर पर निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाये और इस संदर्भ में उनके परिवार की आर्थिक परिस्थिति की उपेक्षा की जाए।

8. निःशक्तों की समस्या एवं उनके सम्भावित समाधान हेतु टोल फ्री लाईन को प्रशासन के द्वारा प्रारम्भ करना आवश्यक है ताकि इसके माध्यम से प्रशासन एवं प्रशासनिक इकाईयों के द्वारा वस्तुपरक रूप से चुने गये नागरिकीय संगठन अपने स्तर पर सुझावों एवं समाधानों को संचारित कर सके।

9 निःशक्त सामाजिक इकाईयों के साथ यदि उत्पीडन होता है और वह प्रघटना अनौपचारिक रूप से सार्वजनिक स्पेस का भाग बनती है, को इस प्रघटना के निस्तारण हेतु ठीक वैसा ही कानून निर्मित एवं क्रियान्वित होना चाहिये जो कि अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिये है।

निष्कर्ष एवं सामान्यीकरण की एक विस्तृत प्रस्तुति में शोधार्थी ने शोध प्रक्रिया में निर्मित किये गये विभिन्न प्रश्नों के उत्तरों को समाहित कर लिया है, परन्तु पद्धति से सम्बन्धित पारदर्शिता के पक्षों को ध्यान में रखते हुए उन प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तरों की इस अध्याय में पुनरावृत्ति शोधार्थी आवश्यक समझती है –

शोध का पहला प्रश्न निःशक्तता एवं वर्ग संरचना के मध्य सम्बन्ध पर केन्द्रित था। शोध के दौरान यह तथ्यों के आधार पर पाया गया कि निःशक्तता मुख्यतः निम्नवर्गीय यथार्थ है, अर्थात् जाति, धर्म, जन्म, स्थान इत्यादि विशेषताओं से इतर ऐसे परिवार जहां वार्षिक आय ना केवल कम है, अपितु निर्धनता की अवधारणा का भाग बन जाती है।

दूसरा प्रश्न निःशक्तता एवं परिवार की प्रकृति के मध्य सम्बन्धों के आधार पर जिस प्रश्न को निर्मित किया गया है, के लिये तथ्य केन्द्रित उत्तर यह है कि संयुक्त परिवार में निःशक्त सामाजिक इकाईयों की संख्या अधिक है। यह उत्तर संकेत देता है कि आज की तुलनात्मक रूप से गांव एवं नगर में विशेषतः भरतपुर क्षेत्र में चूंकि संयुक्त परिवारों की संख्या अधिक है, अतः वहां निःशक्त बच्चों की संख्या भी अधिक विद्यमान है। स्वाभाविक है कि यदि एकाकी परिवारों की संख्या कम होगी तो निःशक्त बच्चों की संख्या भी कम होगी। शोधार्थी यह तर्क दे सकती है कि यह तर्क भरतपुर क्षेत्र से सम्बद्ध है। आवश्यक नहीं है कि अन्य नगरों और महानगरों में समान रूप से लागू हो।

तीसरा प्रश्न दिव्य दृष्टिकोण के साथ सम्बन्ध है। शोधार्थी ने अध्ययन के दौरान ना केवल तथ्यपरक आधार पर, अपितु अनौपचारिक वार्तालाप में उभरकर आये दृष्टिकोण के आधार पर यह पाया कि निःशक्त बच्चों के साथ सम्बद्ध अधिकांश परिवार निःशक्तता को दैवीय प्रघटना मानते हैं और इस हेतु माता–पिता अपने स्वयं के पूर्व कर्मों को और निःशक्त बच्चा अपने पूर्व जन्म के कर्मों को उत्तरदायी मानते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ है कि निःशक्तता की प्रघटना के कारणों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ सम्बद्ध करने में राज्य को आंशिक सफलता प्राप्त हुई है। यह कहा जा सकता है कि धर्म, जाति, पुरुष सत्ता एवं नातेदारी की अन्तःसम्बन्धता से निर्देशित अनौपचारिक परिवेश में अभी वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रवेश नहीं पा सका है।

चौथा प्रश्न निःशक्तता एवं सामाजिक व्यवहार की प्रकृति से सम्बन्धित है। शोधार्थी ने पाया कि निःशक्त सामाजिक इकाईयों के प्रति परिवार, पड़ौस, नातेदार, मित्र एवं अनौपचारिक समूहों के व्यवहारों में अनेक अन्तःविरोध है। इन व्यवहारों में समय–समय पर – (1) दया का भाव, (2) अत्यधिक लगाव, (3) समर्पण की भावना, (4) उपेक्षा, (5) तिरस्कार, (6) भावनात्मक एवं शारीरिक हिंसा, (7) विभिन्न प्रकार की प्रताड़ना, के अवयव स्पष्टतः नजर आते हैं कि व्यवहार की प्रणालियां इस तथ्य की संकेतक है कि निःशक्त सामाजिक इकाईयों को सामाजिक व्यवहार प्रणाली में समानता के मूल्य के साथ स्वीकार नहीं किया जाता।

पांचवां प्रश्न निःशक्तता को चुनौती देने में परिवार की भूमिका से सम्बन्धित है। शोधार्थी ने पाया कि केवल परिवार निःशक्तता को अर्थपूर्ण चुनौती नहीं दे सकता, क्योंकि अनुकूलनशीलता एवं समायोजन जो कि निःशक्तता को चुनौती देने के लिये आवश्यक है, को प्रभावी बनाने के लिये अनौपचारिक एवं औपचारिक समूहों, विशेषतः परिवार, विद्यालय एवं राज्य के विभिन्न अवयवों की सम्बन्धित भूमिका होनी चाहिये। यदि विद्यालय में निःशक्त विद्यार्थी के साथ शिक्षक अथवा प्रबंधन की उपेक्षा एवं तिरस्कारमूलक व्यवहार होते हैं तो वह इकाई परिवार में भी उपयुक्त समायोजन नहीं कर पाती। लगभग यही स्थिति परिवार के साथ है। परिवार की उपेक्षा विद्यालय में निःशक्त बच्चों को अनुकूलन एवं समायोजन से पृथक कर देती है और इन प्रक्रियाओं के प्रभावी निर्वहन के लिये अनिवार्य है कि राज्य अपनी नीतियों एवं कार्यक्रमों को परिवार, विद्यालय के माध्यम से इन बच्चों पर लागू करे। अतः परिवार, विद्यालय एवं राज्य का समन्वय निःशक्तता को प्रभावी चुनौती दे सकता है।

छठवां प्रश्न निःशक्तता एवं आनुवांशिकता के सम्बन्ध से जुड़ा है। शोधार्थी ने पाया कि अनिुवांशिक कारक केवल एक सीमा तक मुख्यतः दृष्टिबाधा से सम्बद्ध निःशक्तता पर लागू होते हैं, अन्यथा दृष्टिबाधा एवं चलनबाधा दोनों से सम्बन्धित निःशक्तता गैरअनुवांशिक कारकों का परिणाम है, जिसमें बीमारी, चिकित्सकों की उपेक्षा, दवा की प्रतिक्रिया, दुर्घटना, प्राकृतिक विपत्ति इत्यादि पक्ष सम्मिलित हैं।

सातवां प्रश्न निःशक्त एवं सामाजिक नीतियों से सम्बद्ध है। द्वितीयक स्रोतों के आधार पर शोधार्थी तर्क दे सकती है कि राज्य ने अनेक नीतियों का निर्माण किया है, जिसमें से राज्य विशेष योग्यजन नीति, 2012 मुख्य है। इस नीति के अन्तर्गत निःशक्तजनों को समान अवसर उपलब्ध कराना, उन्हें स्वाधीनता एवं सह–प्रतिष्ठा प्रदान करना, अनेक सामुदायिक उत्तरदायित्व एवं सहभागिता को सुनिश्चित करना तथा उनके सामाजिक एवं आर्थिक पुनर्वास में नवाचार करना जैसे पक्ष सम्मिलित हैं। केन्द्रीय सरकार ने भी समय–समय पर निःशक्त जनसंख्या के सामाजिक कल्याण हेतु अनेक योजनाओं एवं क्रियाकलापों को समय–समय पर निर्मित एवं संचालित किया है। शोधार्थी ने यह पाया है कि यह नीति एवं इससे सम्बद्ध कार्यक्रम राज्य के द्वारा क्रियान्वित हो रहे हैं, परन्तु इनसे सम्बन्धित चेतना निःशक्त सामाजिक इकाईयों एवं उनके परिवारों के पास या तो उपलब्ध नहीं है या आंशिक उपलब्धता है। अतः इन नीतियों के लाभ प्रभावी ढ़ंग से निःशक्त इकाईयों के पास नहीं पहुंच सके हैं। प्रशासनिक क्षेत्र में ऐसे प्रयासों की आवश्यकता है, ताकि नीति सम्बन्धी चेतना निःशक्त इकाईयों एवं पारिवारिजनों के व्यक्तित्व में आन्तरीकृत हो सके। यह तर्क प्रश्न आठ से सम्बन्धित उत्तर को भी निर्मित करता है। केन्द्र एवं राज्य

सरकार ने इस नीति के अनुरूप अनेक कल्याणकारी कार्यक्रम क्रियान्वित किये हैं। विशेष योग्यजन निदेशालय की स्थापना 2012 प्रत्येक जिले में निदेशालय के द्वारा समय–समय पर संचालित किये गये क्रियाकलापों के निर्वहन हेतु जिला कार्यालयों की स्थापना की गई है। इन कार्यालय के माध्यम से विभिन्न योजनाओं को संचालित किया जा रहा है, जिनमें से विशेष योग्यजन छात्रवृति योजना , विशेष योग्यजन पेशन योजना ,मुख्यमंत्री स्वरोजगार विशेष योग्यजन योजना, आस्था योजना, संयुक्त सहायता अनुदान योजना, विशेष योग्यजन अनुप्रति योजना, एवं पालनहार योजना प्रमुख है।

शोधार्थी ने अध्ययन के दौरान यह पाया कि इन कार्यक्रमों का लाभ निःशक्त उत्तरदाताओं को व्यापक स्तर पर प्राप्त हो रहा है। हालांकि यह उत्तरदाता समय–समय पर इन कल्याणकारी कार्यक्रमों में उत्पन्न होने वाले प्रशासनिक अवरोधों को स्वीकार करते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि नीतियों के क्रियान्वयन में और विभिन्न कार्यक्रमों के संचालन में ना केवल पारदर्शिता हो, अपितु समय–समय पर उनका मध्यवर्ती मूल्यांकन हो और उस मूल्यांकन के साथ सामाजिक ऑडिटिंग की प्रक्रिया हो, ताकि इन कार्यक्रमों से सम्बन्धित विभिन्न तथ्य एवं कठिनाईयां सार्वजनिक चेतना का भाग बन सके।

शोध का आखिरी प्रश्न उन नैतिक उत्तरदायित्वों से सम्बद्ध है, जिनकी अपेक्षा शोधार्थी सहित समाजशास्त्र की प्रत्येक इकाई कर सकती है। प्रस्तुत यह प्रश्न दिये गये सुझावों से उत्पन्न करता है। समाज एवं राज्य दोनों से सम्बद्ध समूहों का यह नैतिक दायित्व है कि वह निःशक्तजनों के साथ व्यवहार करते समय भावनात्मक संतुलन को महत्व दे और निःशक्त बच्चों के साथ हीनता, उपेक्षा एवं आलोचना के पक्षों को अपने व्यवहारों में सम्मिलित ना करे। निःशक्त बच्चों के साथ लांछिकरण की प्रक्रिया का निषेध अनिवार्य है। राज्य एवं समाज दोनों ऐसे स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम हैं, जो निःशक्त बच्चों की सृजनशीलता एवं उनकी आकांक्षाओं को व्यवस्थित रूप से जाने और उनकी प्राप्ति हेतु सूक्ष्म एवं वृहद् स्तर पर विभिन्न कार्यक्रमों का संचालन करे।

शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत यह शोध वस्तुतः सीमान्त जनसंख्या की विकास कार्यक्रमों में सहभागिता संतुलित विकास की अनिवार्यता है, अन्यथा असंतुलित विकास समाज में अनेक संरचनात्मक तनावों को उत्पन्न करता है। समाजशास्त्र के विद्यार्थी के रूप में शोधार्थी का तर्क है कि निःशक्तजनों की समस्या को भी समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य के माध्यम से अध्ययन का भाग बनाया जाये और उनके लिये संचालित कार्यक्रमों को विकास का समाजशास्त्र के विषय क्षेत्र में सम्मिलित किया जाये। शोधार्थी ने अपने शोध के अध्ययन पर जिस सिक्युरिटी

प्रारूप को इस अध्याय में निर्मित किया है, को केन्द्र में रखकर अध्ययन संभावित हो सकते हैं। यद्यपि यह प्रारूप अन्तरिम है, परन्तु शोधार्थी का यह प्रयास रहेगा कि वह भविष्य में अपने अध्ययनों में और प्रशासनिक भूमिकाओं में इस प्रारूप के माध्यम से निःशक्त जनसंख्या के सामाजिक विश्व की व्यवस्थित समझ को विकसित करे।

अतः शोधार्थी का मत है कि समावेशी विकास को संभव करने के लिए और समान विज्ञानों की सामाजिक भूमिकाओं को ध्यान में रखतें हुए निःशक्ततों पर सामाजिक शोध किये जानें आवश्यक है। शोध कार्य की समय–सीमा और शोधार्थी की समय सीमा को देखतें हुए शोधार्थी ने अपना शोध कार्य पूरा किया है।

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध सारांश शोधार्थी द्वारा शीघ्र ही प्रस्तुत किये जाने वाले शोध ग्रन्थ जो कि निःशक्तजन का समाजशास्त्र (भरतपुर जिले में निःशक्त बच्चों के सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश का विश्लेषणात्मक अध्ययन) से सम्बद्ध है। प्रस्तुत किये जाने वाला शोध–ग्रन्थ सात अध्यायों में विभाजित है।

अध्याय एक में शोधार्थी ने निःशक्तजन का समाजशास्त्र की अवधारणा को प्रस्तुत किया है। शोधार्थी के अनुसार निःशक्तजन का समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की वह शाखा है, जो जैविकीय एवं सामाजिक कारकों से उत्पन्न निःशक्त जनसंख्या के सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश एवं उस परिवेश के साथ समाज के विभिन्न सामाजिक संरचनाओं, संस्थाओं एवं व्यवस्थाओं की अन्तःसम्बद्ध गतिशीलता का वैज्ञानिक अध्ययन करती है। इस अध्ययन की मूल प्रकृति वैज्ञानिक दृष्टि से आलोचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक है।

शोधार्थी ने इस अध्ययन में निःशक्तता को एक सामाजिक तथ्य के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया है और निःशक्तता के वर्गीकरण को प्रस्तुत किया है। शोधार्थी ने यह भी अध्ययन करने का प्रयास किया है कि निःशक्तता किस तरह के सांस्कृतिक परिवेश को जन्म देती है तथा राज्य एवं समाज की विभिन्न इकाईयों की निःशक्तता के सांस्कृतिक परिवेश के साथ किस प्रकार की प्रतिक्रिया होती है।

शोधार्थी ने इस अध्याय में निःशक्तता का समाजशास्त्र की संभावित विषयवस्तु को बताने का प्रयास भी किया है और साथ ही यह भी बताया है कि किस तरह से निःशक्तता सामाजिक संस्तरण की परिचायक है और निःशक्त जनसंख्या के साथ जुड़ी हुई नीतियां एवं कल्याण कार्यक्रम किस प्रकार इसे विकास के समाजशास्त्र से जोड़ते हैं।

अध्याय दो में निःशक्तजनों की संस्कृति, राजनीति एवं अर्थतंत्र के संदर्भ में स्थितियों का विस्तार से विश्लेषण किया गया है। शोधार्थी ने यह स्थापित किया है कि निःशक्तजन की संस्कृति एक विशिष्ट संस्कृति है जिसका सामान्य संस्कृति के साथ अनुकूलनमूलक तथा अन्तःविरोधी सम्बन्ध है। निःशक्तजन चूँकि विशिष्ट भूमिकाओं का निर्वाह करते हैं अतः उनके नियम, प्रतिमान भी विशिष्ट होते हैं। इस भूमिका व्यवहार के लिये उन्हें विशिष्ट भौतिक उपकरणों की सहायता लेनी पड़ती है।

शोधार्थी ने यह तर्क दिया है कि विशिष्ट संस्कृति जो कि निःशक्तजनों से सम्बद्ध है, वस्तुतः संस्कृति विलम्बन का एक भाग है। यह भी तर्क दिया गया है कि निःशक्तजन किसी ना किसी स्तर पर मानसिक अस्वस्थता का भले ही वह अल्पकालिक हो भाग बन जाते हैं और इसलिये निःशक्त की संस्कृति के समाज मनोवैज्ञानिक पक्षों को समझने की आवश्यकता है। निःशक्त चूंकि सामान्य भूमिका का निर्वाह क्षमता एवं सफलता के साथ नहीं कर पाते हैं, अतः इनका अर्थतंत्र भी सामान्य अर्थतंत्र से भिन्न है। सकल घरेलू उत्पाद में उनका योगदान कम है और उत्पादन सम्बन्धों में उनकी भूमिका अनेक संरचनात्मक विसंगतियों को अभिव्यक्त करती है। प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों में निःशक्तजनों की भूमिका एवं उनके योगदान पर विशिष्ट शोध किये जाने की आवश्यकता को शोधार्थी ने रेखांकित किया है। यही स्थिति राजनीति में है। निर्णय प्रक्रियाओं में निःशक्तों की सहभागिता आंशिक है, क्योंकि निर्णयकारी राजनीतिक संस्थाओं ने निःशक्तों का प्रतिनिधित्व आंशिक है।

शोधार्थी ने यह भी तर्क दिया है कि निःशक्त जनसंख्या शक्ति सम्बन्धों का चूँकि प्रभावी भाग नहीं है, अतः वह राजनीतिक दबाव के लिये आवश्यक हित समूह एवं दबाव समूह का निर्माण नहीं कर पाती। राजनीतिक क्षेत्र में निःशक्तों की स्थिति कहीं ना कहीं बहिष्करण की प्रक्रिया की भी परिचायक है। इस अध्याय में शोधार्थी ने संस्कृति, राजनीति एवं अर्थतंत्र की अन्तःसम्बद्धता को रेखांकित करने का प्रयास किया है और उसमें निःशक्त जनसंख्या के सामाजिक स्थान की तलाश की।

अध्याय तीन में निःशक्तजनों के अध्ययन जो कि किये जा चुके हैं, का मूल्यांकन करने का प्रयास शोधार्थी ने किया है। निःशक्तजन एवं सामाजिक परिवेशः समाज मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि, शीर्षक के इस अध्याय में क्लासिकल एवं आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों में निःशक्तजन के पक्षों को कैसे जाना जाये, की संक्षिप्त कोशिश शोधार्थी ने की है। इसके साथ ही विभिन्न समाज वैज्ञानिकों के द्वारा अध्ययनों का संक्षिप्त सार प्रस्तुत किया गया है। शोधार्थी ने यह तर्क स्थापित किया है कि समाज विज्ञानों में निःशक्त जनसंख्या पर शोध की उपेक्षा की गई है क्योंकि निःशक्त जनसंख्या का सामाजिक जीवन समाज विज्ञानों में मुख्य निर्वचन का भाग नहीं बन सका है।

शोधार्थी का मत है कि समावेशी विकास को संभव करने के लिये और समाज विज्ञानों की सामाजिक भूमिकाओं को ध्यान में रखते हुए निःशक्तजनों पर सामाजिक शोध किये जाने आवश्यक है।

अध्याय चार शोध की प्रक्रिया से सम्बन्धित है। शोधार्थी के शोध की प्रकृति मूल्यांकनात्मक है और इसलिए यह शोध गुणात्मकता एवं परिमाणात्मकता का समन्वय है। शोध में सांख्यिकीय पक्षों को सउद्देश्य सम्मिलित नहीं किया गया है और वे शोध के परिणामों को प्रभावित कर पाने में केवल आंशिक रूप से ही सक्षम हो सकते थे। शोध कार्य के लिये शोधार्थी ने भरतपुर क्षेत्र को चुना, जो कि एक प्रशासनिक अधिकारी के रूप में शोधार्थी का कार्यक्षेत्र भी है। इस क्षेत्र के 200 निःशक्त बच्चों को जो कि 6 वर्ष से 18 वर्ष की आयु समूह के हैं, को शोधार्थी ने निदर्श इकाई के रूप में स्तरीकृत एवं उद्देश्यमूलक प्रणालियों के अन्तर्गत चुना। यह निदर्श इकाईयां दृष्टिबाधित एवं चलनबाधित अवयवों के कारण निःशक्तता का शिकार है। इसमें बालक एवं बालिकाएं दोनों सम्मिलित हैं और साथ ही ये निदर्श इकाईयां ग्रामीण एवं नगरीय दोनों स्थानों का प्रतिनिधित्व करती है। प्राथमिक तथ्यों के लिये शोधार्थी ने साक्षात्कार अनुसूची को प्रयुक्त किया और साथ ही निदर्श इकाईयों के परिवारों से विभिन्न प्रकार की जानकारी अनौपचारिक वार्तालाप के आधार पर प्राप्त की, जिन्हें कि शोध में सम्मिलित किया गया।

भारत सरकार एवं राज्य सरकार के द्वारा समय–समय पर प्रस्तुत प्रतिवेदनों को द्वितीयक सूचनाओं के संकेन्द्रण के लिये प्रयुक्त किया गया। चूंकि शोध प्रधानतः गुणात्मक है, अतः परिकल्पनाओं के स्थान पर 9 शोध प्रश्नों को निर्मित किया गया जिनके तथ्यों के आधार पर उद्देश्यों को निष्कर्ष एवं सामान्यीकरण के अन्तिम अध्याय में प्रस्तुत किया गया। शोधार्थी ने शोध प्रक्रिया के इस अध्याय में शोध के उद्देश्य को भी रेखांकित किया है।

अध्याय पाँच मे द्वितीयक स्रोत सूचनाओं एवं अनौपचारिक वार्तालाप से निर्मित आनुभाविकता को केन्द्र में रखकर निःशक्त उत्तरदाताओं के समाज मनोवैज्ञानिक विश्व की रचना की गई। इस अध्याय में यह तथ्य निर्मित किया गया है कि निःशक्त उत्तरदाता के व्यवहार में किन कारणों से उतार–चढ़ाव उत्पन्न होते हैं। आक्रामकता, नैराश्य, वंचन, अलगाव, निर्भरता इत्यादि के तत्व उत्तरदाताओं के व्यवहार में किस प्रकार उभार लेते हैं और साथ ही इन उत्तरदाताओं की सृजनशीलता को किस प्रकार विस्तार दिया जा सकता है। ये उत्तरदाता किन परिस्थितियों में सामुदायिक चेतना एवं हम की भावना का भाग बनते हैं और कब अलगाव की प्रक्रिया का भाग बन जाते हैं। विभिन्न समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक पक्षों को आधार बनाकर शोधार्थी ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि निःशक्तता जन्मजात नहीं होती, अपितु यह एक समाज में मनोवैज्ञानिक रचना है, जिसे व्यक्ति एवं समाज के अन्तःसम्बन्धों की पृष्ठभूमि के साथ समझने की आवश्यकता है।

अध्याय छः प्राथमिक सूचनाओं से निर्मित सारणियों एवं द्वितीयक सूचनाओं से सम्बन्धित नीतियों एवं कार्यक्रमों पर आधारित है। इस अध्याय की प्रकृति भी पांचवे अध्याय की भांति आनुभाविक है। इस अध्याय में निदर्श इकाईयों की सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत किया गया है। विद्यालय एवं अन्य सामाजिक समूहों में निदर्श इकाईयों के व्यवहार, विभिन्न नीतियों एवं कार्यक्रमों के इन उत्तरदाताओं पर प्रभाव, निदर्श इकाईयों की आकांक्षा, इनके भूमिका संघर्ष एवं इनके द्वारा व्यक्त की जाने वाली विभिन्न समस्याओं को केन्द्र में रखकर इस अध्याय की रचना की गई। वास्तव में यह अध्याय इस शोध का एक मुख्य केन्द्र है। इस अध्याय में किया गया विवेचन एवं विश्लेषण निःशक्त बच्चों के सामाजिक परिवेश उनके अतीत, वर्तमान एवं भविष्य के अन्तःसम्बन्धों एवं समाज के विषय में उनकी समझ और उनके विषय में समाज की समझ के पक्षों को रेखांकित करता है।

इस अध्याय में दिये गये आनुभाविक पक्ष नीतियों के एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में विद्यमान संरचनात्मक अवरोधों का भी संकेत देते हैं।

अध्याय सात में सर्वप्रथम छः अध्यायों में शोधार्थी ने जो भी पक्ष निर्मित किये हैं, के संक्षिप्त निष्कर्षों को क्रमवार प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही निष्कर्षों को केन्द्र में रखकर सामान्यीकरण की रचना की गई है, जो कि आगमन के तर्क का भी संकेतक है अर्थात् विशिष्ट को केन्द्र में रखकर सामान्य तर्कों की रचना करना।

शोधार्थी ने अपने इस अध्ययन को विवेचन एवं विश्लेषण के साथ जोड़ते हुए सिक्युरिटी (एस, ई, सी, यू, आर, आई, टी, वाई) प्रारूप को निर्मित करने का प्रयास किया है। जो निम्न हैं–

एस का अर्थ ''सेंसेटाइजेशन अबाउट डिफरेन्टिलि एबल पर्सन एण्ड देयर इश्यूज'' से है।

ई का अभिप्राय ''एथेनोग्राफिक प्रोफाइल ऑफ डिफरेन्टिलि एबल पर्सनलिटी'' से है।

सी का अभिप्राय ''क्युमिलेटिव करैक्टर ऑफ रिफोर्मेटिव एक्शन'' से है।

यू का अभिप्राय ''अल्टीमेट करैक्टर ऑफ रिफोर्मेटिव पॉलिसी'' से है।

आर का अभिप्राय ''रेशनेलाइजेशन ऑफ ब्यूरोक्रेटिक स्ट्रक्चर्स, मेन्ट फोर टेक्लिंग्स इश्यूज ऑफ डिफरेन्टिलि एबल पर्सन'' से है।

आई का अभिप्राय ''इन्टीग्रेटेड पॉलिसीज एण्ड प्लानिंग फोर अपलिफ्टमेन्ट ऑफ सोशल लाईफ ऑफ डिफरेन्टिलि एबल पर्सन'' से है।

टी का अभिप्राय ''टैक्नोलॉजिकल इनोवेशन इन द इन्टरेस्ट ऑफ डिफरेन्टिलि एबल पर्सन'' से है।

वाई का अभिप्राय ''ईयरली इवेलुएशन ऑफ पॉलिसीज एण्ड प्लानिंग'' से है।

शोधार्थी का मत है कि यह प्रारूप यद्यपि अन्तरिम प्रकृति का है परन्तु यदि इन पक्षों को श्रेणी और उप–श्रेणियों के साथ जोड़कर प्रत्येक अवधारणा को निर्मित किया जाये तो निःशक्तजनों के सामाजिक विश्व सम्बन्धी नीतियों एवं कार्यक्रमों तथा निःशक्तजनों के सामाजिक कल्याण हेतु भावी नीतियां एवं कार्यक्रम क्या हो सकते हैं, के पक्षों को समझा जा सकता है। शोधार्थी का मत है कि निःशक्तजन का समाजशास्त्र सीमान्त जनसंख्या के सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश का एक अर्थपूर्ण भाग है और साथ ही इसकी नीतियां एवं कार्यक्रम विकास का समाजशास्त्र की शाखा का सावयवी अंग बन जाते हैं। शोधार्थी का यह भी मत है कि यह शोध सामाजिक नीतियों के अकादमिक मूल्यांकन में योगदान कर पाने में एक सीमा तक सक्षम होगा।

शोधार्थी समाजशास्त्र के विद्यार्थी के रूप में यह कह सकती है कि निःशक्त जनसंख्या एक दृष्टि से 'सामाजिक रूप से विस्थापित' जनसंख्या है जिसका 'सामाजिक पुनर्वास' राज्य एवं समाज द्वारा किया जाना अनिवार्य है ताकि विकास प्रक्रिया समावेशी बन सके।

शोधार्थी इस आनुभाविक अध्ययन में अपने प्राथमिक अनुभवों के आधार पर निःशक्तजनों की समस्याओं के संभावित समाधान हेतु निम्नलिखित सुधारों को भी अपने शोध का भाग बनाती है। यह सुझाव राज्य एवं नागरिक समाज दोनों के सकारात्मक अन्तःसम्बन्धों के प्रयास द्वारा मूर्त रूप ले सकते हैं।

1. निःशक्त जनसंख्या के लिये केन्द्र एवं राज्य सरकार की भर्तियों में आरक्षण का प्रतिशत बढ़ाये जाने पर विचार करना आवश्यक है, क्योंकि विभिन्न पेशों एवं प्रशासनिक तथा अन्य सेवाओं में निःशक्त इकाईयों की संख्या बहुत कम है।

2. निर्णय प्रक्रिया में निःशक्त जनसंख्या की सहभागिता को सुनिश्चित किया जाये और इस हेतु संसद एवं विधानसभाओं में योग्य निःशक्त व्यक्तियों को मनोनयन प्रक्रिया में सम्मिलित किया जाये।

3. शिक्षा के अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत जिस प्रकार निर्धनता की सीमा रेखा के नीचे के परिवार के बच्चों को निजी विद्यालयों में प्रवेश में आरक्षण का प्रावधान है,

ठीक वैसे ही निःशक्त बच्चों को भी निजी विद्यालयों में प्रवेश में आरक्षण का प्रावधान दिया जाये।

4. राष्ट्र, राज्य के द्वारा विभिन्न परिसरों एवं बहुमंजली इमारतों में निःशक्त इकाईयों के लिये रैम्प एवं अन्य प्रकार की विशिष्ट सुविधाओं को परिसर की निर्माण योजना में अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया जाये।

5. प्रत्येक प्रकृति के निःशक्त व्यक्ति वह चाहे दृष्टिबाधित हो अथवा चलनबाधित के साथ, यात्रा के दौरान सहयोगी इकाई को निःशुल्क यात्री के रूप में सुविधा प्रदान की जाये।

6. निःशक्त सामाजिक इकाईयों के लिये ऐसे नियमित परीक्षण किये जाएं, जिनसे उनके विशिष्ट सृजनशीलता की जानकारी मिल सके और उनके अनुरूप उन्हें नियमित रूप से पर्याप्त प्रशिक्षण प्रदान किये जाएं, ताकि वे अपनी सृजनशीलता को राष्ट्र, राज्य के विकास की प्रक्रिया में सम्मिलित कर सकें।

7. निःशक्त विद्यार्थियों को प्रत्येक स्तर पर निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाये और इस संदर्भ में उनके परिवार के आर्थिक परिस्थिति की उपेक्षा की जाए।

8. निःशक्तों की समस्या एवं उनके सम्भावित समाधान हेतु टोल फ्री लाईन को प्रशासन के द्वारा प्रारम्भ करना आवश्यक है ताकि इसके माध्यम से प्रशासन एवं प्रशासनिक इकाईयों के द्वारा वस्तुपरक रूप से चुने गये नागरिकीय संगठन अपने स्तर पर सुझावों एवं समाधानों को संचारित कर सके।

निःशक्त सामाजिक इकाईयों के साथ यदि उत्पीडन होता है और वह प्रघटना अनौपचारिक रूप से सार्वजनिक स्पेस का भाग बनती है, को इस प्रघटना के निस्तारण हेतु ठीक वैसा ही कानून निर्मित एवं क्रियान्वित होना चाहिये जो कि अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिये है।

उपरोक्त सुझावों के साथ सातवां अध्याय समाप्त होता है। इस अध्याय के उपरान्त सन्दर्भ ग्रंथ सूची, अध्ययन पुस्तक सूची एवं तथ्य संकलन हेतु प्रयुक्त साक्षात्कार अनुसूची को शोध ग्रंथ में परिशिष्ट के अंतर्गत सम्मिलित किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अबोसी आक्ये (2007) ''एज्यूकेटिंग चिल्ड्रन विद लर्निंग डिस्एबिलिटिज इन अफ्रीका, लर्निंग डिस्एबिलिटीज रिसर्च एण्ड प्रेक्टिक्स 22 (3) 196–201 सी, 2007 दी डिविजन फोर लर्निंग डिस्ऐबिलिटिज ऑफ दा काउन्सिल फॉर एक्सेप्शनल चिल्ड्रन''।
2. एडगर्टन, ब्रिज.(2016)''इमेजनैटिव बायोग्राफी'' पलल प्रेस, यूएसए।
3. अल्वर्ट, बी. (2005)''लैसन्स फ्रॉम दा डिस्एबिलिटिज नॉलेज एण्ड रिसर्च प्रोग्राम'' के. आर.पब्लिकेशन।
4. अल्बर्टो, ए.पी. एण्ड ट्रोटमेन, ए.सी. (1995) ''एप्लाईड बिहेवियर ऐनालिसिस फॉर टीचर्स'' (4 एडीशन), कॉलम्बसः मेरिल्ल पब्लिशिंग कम्पनी।
5. अल्टमेन, बी.एम. (2001) ''डिस्एबिलिटीज डेफिनेशन्स, मॉडलस, क्लासीफिकेशन, स्कीम एण्ड एप्लीकेशन्स''।
6. आनंद, एस. एवं साथी (1991) ''निःशक्तजन एकीकृत शिक्षा योजना'' स्पोन्सर्ड बाई, राज. शिक्षा विभाग, बीकानेर।
7. एण्डरसन, एलिजाबेथ एम. (1983) ''द डिसेबल्ड स्कूल चाईल्ड एक स्टडी आफ इटीग्रेशन इन प्राईमरी स्कूल्स'' मैथ्यूज एण्ड क. लि.न्यू फैदर लेन'' लंदन।
8. आर्नस्टीयर, ए.सी. (1990), ''स्ट्रेटीज फॉर इफैक्टिव टीचिंग'' न्ययॉकः हॉर्पर रो।
9. बर्रागा, एन.सी. (1976) ''विजुअल हैंडीकैम्पस एण्ड लर्निंग'' बेलमोन्ट, सी.ए.ः वडासबर्थ पब्लिशिंग कम्पनी, इंक।
10. बर्च, सुसान, एण्ड पाल के, (2009) ''लॉन्गमोर एडिशन एनसाईक्लोपीडिया ऑफ अमेरिकन डिस्एबिलिटिज हिस्ट्री''।
11. बार्नस, सी. एण्ड मर्कर जी, (2010) ''एक्प्लोरिंग डिस्एबिलिटिज'' (सैकण्ड एडिशन), कैम्ब्रिज पोलिटी प्रेस।
12. बेन, डी.डी. (1988) ''हैण्डीकैप्ड चिल्ड्रन इन डवलपिंग कन्ट्रीज'', अलबर्टाः यूनिवर्सिटी ऑफ अलबर्टा प्रीटिंग सर्विसेज।
13. बेयोर ए.एम. एण्ड सपोना, आर.एच. (1991) ''मैनेजिंग क्लासरूम्स टू फेसीलिटेड लर्निंग'' न्यू जर्सीः प्रिटिंस हॉल।
14. भट्ट ऊषा (1963) ''दी फीजिकली हैन्डीकेप्ड इन इण्डिया'' बम्बई–7, पापुलर बुक डिपो।

15. बाइंस, एच (2007) ''टैक्लिंग इस्यूज ऑफ डिस्एबिलिटिज एण्ड एन्क्यूसिवनेस इन एज्यूकेशन'' जोन्सबर्गःवर्ल्ड विजन।

16. बोल्ट, डी.ए. (1988) मैथेमेटिक्स, इन.जे. बुड (एड) ''मेनस्ट्रीमिंग–प्रेक्टीकल गाइर्ड फॉर टीचर्स'' न्यूयॉर्कःमैकमिलन पब्लीशिंग कम्पनी।

17. कार्कर, मेरियन एण्ड सैक्सपियर (2002) ''टोम डिस्ऐबिलिटिज/पोस्टमॉडर्निटीःएम्बोडाइंग डिस्एबिलिटी थ्योरी कन्टीनम''।

18 चौधरी, डी. पाल (1960) ''चाइल्ड वेलफेयर डवलपमेंट'' आत्माराम एण्ड संस, न्यू देहली।

19. चेज, स्टुअर्ट (1956) ''दा प्रोपर स्टडी ऑफ मेन काइन्ड'', न्यूयार्क।

20. कोरमा, पी, (2007) ''दी फॉरगोटेन ट्राइवः प्यूपिल विद डिस्एबिलिटिज इन जिम्बाबे'' लंदनः प्रोगेसिओ।

21. क्रैटी, बी.जे. (1971) ''मूवमेन्ट एण्ड स्पेशल एवेयरनेस इन ब्लाइंड चिल्ड्रेन एण्ड यूथ''।

22. डोएल, डब्ल्यू. (1979)''मेकिंग मेनेजिरियल डिशीजन्स इन क्लासरूमः इन डी.एल. ड्यूक (एड) क्लासरूम मैनेजमेंट'' सिकागोः यूनिवर्सिटी ऑफ सिकागो प्रेस।

23. दुवे, ए.के. (2005) ''दा रोल एण्ड इफैक्टिवनेस ऑफ डिस्ऐबिलिटी लैजिस्लेशन इन साउथ अफ्रिका''।

24. एलगिन, एस.एच. (1979) ''ह्वाट इज लिंगुइस्टिक्स''? (द्वितीय संस्करण) प्रेंटिस हॉल।

25. ऐशमन, ए एंड एलकिन्स (1994) (एड्स) ''ऐज्यूकेटिंग चिल्ड्रेन विथ स्पेशल नीड्स'', प्रेन्टीस हॉल न्यूयॉर्क।

26. फ्रीडम, एम. एण्ड सुखई ए. (2005) ''डब्ल्यूएचओ रिसोर्सेज बुक ऑन मेंटल हैल्थ, ह्युमन राइट एण्ड लेजिनेशन'' जेनेवाः वर्ल्ड हैल्थ आर्गेनाइजेशन।

27. फ्रोमकिन, वी तथा रॉडमैन आर.ऐन.(1993) ''इन्ट्रोडक्शन टू लैंग्वेज'' (पाँचवा संस्करण), हारकोर्ट ब्रेस जोवानोविश कॉलेज पब्लीशर्स।

28. जहोदा एण्ड कुक (1962) ''रिसर्च मेथड्स इन सोशनल रिलेन्स''।

29. जिरपाली जे.जे. एण्ड मेलॉय के.जे. (1993) ''बिहेवियर मेनेजमेन्ट एप्लीकेशनल ऑफ टीचर्स एण्ड पेरेन्ट्स'' न्यूयॉर्कः मैकमिलन पब्लिशिंग कम्पनी।

30. जोन, डब्ल्यू, एमसी. ''कॉनल इन डिक्शनरी ऑफ सोसियोलॉजी'' ऐडिटेड वाई हैनरी प्रतिफेयर चाइल्ड।

31. जॉन्सटन डेविड (2001) ''एन इन्ट्रोडक्शन टू डिस्एबिलिटी स्टडीज'' डेविड फल्टन पब्लिशर्स।

32. हैराल्ड, बाल्म ''द परपज एण्ड फुल कन्टैन्ट ऑफ ए रिहेबिलिटेशन सर्विस, इन मॉर्डन मैथड्स ऑफ रिहेबिलिटेशन ऑफ दा एडल्ट डिस्एबल्ड'' यूनाईटेड नेशन्स।

33. हलाहन, डी.पी. और कॉफमैन, जे.एम. (1991) ''एक्सेप्शन चिल्ड्रनः इन्ट्रोडक्शन टू स्पेशल एज्यूकेशन'' ऐलन ओर बेकन बोस्टन।

34. हल्मे डी. एण्ड सैपर्ट ए. (2003) ''कान्सेप्टूलाइजिंग क्रोनिक पावर्टी, वर्ल्ड डवलपमेंट''।

35. हर्लोक, इ.बी. (1967) ''एडोलेसेन्टस डवलपमेंट'' मैकग्रा हिल्स बुक क. लंदन।

36. हर्स्ट बी. एण्ड हर्स्ट ए. एण्ड हर्स्ट आर. (2005) ''डिस्एबिलिटी एण्ड ह्यूमन राइट एप्रोच टू डवलपमेंट''।

37. हॉवेल, डब्ल्यू.के. एण्ड मोरहेड, एम. (1987)''करीकुलम बेस्ड इवेल्युएशन फॉर स्पेशल एण्ड रेमेडियल एज्युकेशन'' कॉलम्बसः मेरिल पब्लीशिंग कम्पनी।

38. हुसैन, एम.एस. ''विकलांग बच्चों की समस्याऐं'' इनग्राम।

39. कर्लिन्जर, एफ.एन. ''फाउण्डेशन ऑफ बिहेविरीयल रिसर्च''।

40. करशो, जॉन डी. (1972) ''हैन्डीकेप्ड चिल्ड्रन'' लंदनः बिलियम हैनीमेन मेडिकल बुक्स।

41. कौर, एण्ड अमृत, रथ एवं सागर, एम.एम. (1989) ''स्पेशल एजूकेशन'' डिपार्टमेन्ट आफ स्पेशल एजूकेशन, रीजनल कालेज आफ एजूकेशन'' एन.सी. ई. आर.टी. अजमेर।

42. कौशिक, बी.एन. (1977) ''निःशक्तजन शिक्षा सिंधु'' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

43. केलकर, निर्मला ''एग्जिस्टिंग सोशल बैरियर एण्ड कम्युनिटी एटीटयूडस एण्ड लॉ कन्सर्निंग दी डिसेएबल्ड सेमीनार रिपोर्ट उद्धत''।

44. किरण (1996), ''क्यो हकलाते है बच्चे'' विकलांग मंच।

45. कोहली, टी. पोर्टज (1989) ''बेसिक ट्रेनिंग कोर्स फॉर अर्ली स्टीम्यूलेशन ऑफ प्री–स्कूल चिल्ड्रन इन इण्डिया'' न्यू दिल्ली यूनीसेफ।

46. क्रक्स, बैंक, डब्ल्यू, एम., (1952) "ए स्टडी ऑफ दि रिलेशन ऑफ फिजिकल डिस्एबिलिटी टू सोशल एडजस्टमेंट" दि अमेरिकन जनरल ऑफ ऑक्यूपशनल थ्योरी ।

47. कृष्णास्वामी, जे.एण्ड जयाचन्द्रन (1989), पी.उपनयन– ''ए.प्रोग्राम ऑफ डवलपमेंट ट्रेनिंग फॉर चिल्ड्रन विथ मेन्टल रिटार्डेशन'' चेन्नईः मदुरम नारायणन सेन्टर।

48. कुमार, रविन्द्र (1988) ''शिक्षणीय मंद बुद्धि तथा अधिगम निःशक्तता एक तुलनात्मक अध्ययन'' भारतीय आधुनिक शिक्षा जुलाई।

49. लोवेनफील्ड, बी.(एड.) (1973) ''दि विजुअली हैण्डीकैप्ड चाइल्ड इन स्कूल''न्यूयॉर्कः जोन डे।

50. लुफटिंग, आर.एल. (1987) ''टीचिंग द मेन्टली रिटार्डेड स्टूडेन्ट्स'' बोस्टनः एलिन एण्ड बेकान, इन्क।

51. महरोत्रा,नीलिका.(2013) ''डिस्ऐबिलिटीजेण्डर एण्ड स्टेट पॉलिसी– एक्सप्लोरिंग मार्जिन्स'' जयपुर रावत पब्लिकेशन।

52. मैफट्रोपियर ए.एम. एण्ड सेरुग्स, ई.टी.(1987), ''इफैक्टिव इन्स्ट्रक्शन फॉर स्पेशल एज्यूकेशन'' बोस्टनः ए. कॉलेज हिल पब्लिकेशन।

53. मण्डल, बी.बी ''फिजीकली हैण्डीकैप्ड इन बिहार इन्स्टीट्यूट आफ सोशल रिसर्च एण्ड एप्लाईड एन्थ्रोपोलॉजी कोलकता'' एम.बी. बुच सैकण्ड सर्वे आफ रिसर्च एजुकेशन।

54. मिश्र, जगदीश चन्द्र (1981) ''मनोरमा'' (आंगिक निःशक्तजन)।

55. मिश्र, सूर्यकान्त (1995) ''विकलांगता कारण निवारण'' विकलांग मंच।

56. मित्रा, एस. (2005) ''डिस्एबिलिटी एण्ड सोशल सैफ्टी नैट्स इन डवलपिंग कन्ट्री, सोशल प्रोटेक्शन डिस्कशन'' पेपर सर्विज, न्यू जर्सी रूटर्स यूनिवर्सिटी।

57. मनी, एम.एन.जी (1992), ''टेक्नीक्स ऑफ टीचिंग ब्लाइंड चिल्ड्रेन'' नई दिल्लीः स्टर्लिंग पब्लिशर्स।

58. मुखर्जी, आर. एन. (2009) ''सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी'' विवेक प्रकाशन, दिल्ली।

59. माईरेडी, वी.एण्ड नारायन जे. (1998), ''फंक्शनल एकेडिमिक्स फॉर स्टूडेन्ट्स विथ मेन्टल रिर्टाडेशन– ए गाईड फॉर टीचर्स'' सिकन्दराबाद एन.आई.एम.एच.।

60. नाथवानी, ए. (1987), ''डिस्ऐबिलिटी इन द ऐशियन कम्युनिटीज'', लंदनः ग्रेटर ऐसोसिऐशन फोर डिस्ऐबल्ड प्यूपिल।

61. नेसर, यू. (1967), ''काग्नीटिव साइक्लोजी'' न्यूयॉर्कः एप्लेटन–सेन्चुरी क्राफ्ट।

62. निम्बर, कमला, जी– ''ए न्यू लाइज फॉर दी हेन्डीकेप्ट'' बम्बईः निम्बर रिहेबिलीटेशन ट्रस्ट, भारत।

63. पाण्डे, आर.एस. एण्ड आडवानी लाल (1994), ''परस्पेक्टीव इन डिस्एबिलिटी इन रिहेबिलिटेटिव'' विकास पब्लीशर्स।

64. पार्क एण्ड पार्क – ''ऐ टेवस्ट बुक ऑफ प्रिवेन्टिव एण्ड सोशल मेडिसन'' जबलपुर मैसर्स बनारसी दास भानौत, छठा संस्करण।

65. फाटक, ए बी (1983) ''डिसेबल्स इन नार्मल स्कूल प्रोजेक्ट रिपोर्ट''।

66. पियर्सन, कार्ल (1892) '' दा ग्रामर ऑफ साइंस''।

67. पोलोवे ई.ए. एण्ड पेटोन, जे.आर. (1993) ''स्ट्रेटीजीस फॉर टीचिंग लर्नर्स विथ स्पेशनल'' नीड्स न्यूयॉर्कः मेकमिलन पब्लीशिंग कम्पनी, रानी आर. (1980)– ''अयोग्यता और विकलांग'' जिनेवा।

68. राईट, बी.ए (1960)''फिजीकली डिसेबलिटी–ए साइकोलॉजिकल एप्रोच'' न्यूयार्क हार्पर एण्ड राय।

69. रोनाल्ड, वाडहउग, ''इंट्रोडक्शन टू लिंगुइस्टिक्स'' न्यूयॉर्कः मैकग्राउ हिल बुक कम्पनी।

70. शुक्ला, टी.आर– ''एडजस्टमेंट एण्ड स्पीच प्रोबलम्स ऑफ मेन्टली'' हैण्डीकैप्ड।

71. सिंह, जगत (1983) ''विकलांग बालक''अरविन्द प्रकाशन, 205, चावडी बाजार, दिल्ली– 6 रूपाभ प्रिन्टर्स संस्करण।

72. सिंह, योगेन्द्र (1983) ''इमेज ऑफ मेन आइडियोलोजी एण्ड थ्योरी इन इण्डियन सोशियोलोजी'' देहली।

73. सिंघल,निधि. (2009), ''फोरगेटन यूथः डिस्ऐबिलिटी एण्ड डवलपमेंट इन इंडिया.'' डीएफआईडी यूनिवर्सिटी ऑफ कैम्ब्रिज।

74. स्क्लॉस पी.जे. एण्ड स्मिथ, एम.ए. (1994), ''एप्लाईड बिहेवियर एनेलिसस इन द क्लासरूम'' बोसटोनः एलिन एण्ड बेकान।

75. स्मिथ, फ्रेंक (1985) ''रीडिंग विदाउट नॉनसेंस'' न्यूयॉर्कः टीचर्स कॉलेज प्रेस।

76. स्नाईडर, सारो एल. एण्ड मिचेल डेविड टी.(2006) ''कल्चरल लोकेशन ऑफ डिस्एबिलिटी'' यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो, प्रेस।

77. स्वार्ट्ज, एल. (2007) ''डिस्एबिलिटी ऑफ पावर्टी इस्यूज ऑफ फर्दर रिसर्च इन दा एसएएफओडी रिजन'' पेपर प्रिपेयर्ड फोर एसएएफओडी।

78. टेलर, वैलेस. डब्ल्यू एण्ड आईसाबेला डब्ल्यू (1960) ''इनडिविजुएल स्पेशल एजुकेशन आफ फिजिकली हैण्डीकैप्ड चिल्ड्रन इन वेस्टन यूरोप : न्यूयार्क इंटीग्रेशन सोसायटी फॉर द रिहैबिलिंटेशन आफ डिस्एबल्ड।

79. थोमस, सी.(2007) ''सोसियोलोजी ऑफ डिस्एबिलिटी एण्ड इलनैसः कन्टेस्टेड आईडियाज इन डिस्एबिलिटी स्टडीज एण्ड मेडिकल सोसियोलोजी'' लंदन पालग्रेव।

80. टायलर, एण्ड टायलर ''सर्विसेज फॉर दा हेन्डीकेप्ड इन इण्डिया'' न्यूयॉर्क, इंटरनेशनल सोसायटी फॉर रिहेबिलीटेशन।

81. वर्मा, वी.पी. (1978) ''सोशल इंटीग्रेशन आफ दी हैडीकैप्ड'' सोशल वेलफेयर वो. नं. अक्टू.।

रिपोर्ट एवं अन्य स्त्रोत

1. भारत का संविधान, भाग–3 एवं 4।
(https://hi/m.wikipedia.org/wiki/भारत का संविधान)

2. दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016।
(Disabilityaffairs.gov.in/contenthi/page/district-disability-rehabilitation-centers-hi.php)

3. जी.ओ.आई, (1951–61) ''प्लान्स और प्रोस्टपेक्ट्स ऑफ सोशल वेलफेयर इन इण्डिया''।

4. ऋग्वेद, भाग–1, सूक्त–112/8।
(http://vedpurannet/downlaod-all-ved-and-puran-pdf-hindi-free)

5. इंटरनेशनल ईयर ऑफ डिस्एबल्ड पर्सन (1981) ''डिविजन फॉर एकॉनोमी एण्ड सोशल इनफोरमेशन डीपीआई, न्यूज लैटर नं. 2 वर्ल्ड हैल्थ आर्गेनाईजेशन एण्ड आल्सो हू इंटरनेशनल क्लासीफिकेशन ऑफ इम्पोरमेंटस डिस्ऐलिटिज एण्ड हैण्डीकैप्ड''।

6. नीति श्लोक, वैदिक साहित्य।
(https://vichaarsanklan.wordpress.co/tag/नीतिश्लोक)

7. निःशक्तजन अधिनियम, 1995

8. प्रशासनिक प्रतिवेदन 2012–13 निदेशालय, विशेषयोग्यजन, राजस्थान, जयपुर।

9. प्रशासनिक प्रतिवेदन, 2017–2018, निदेशालय विशेषयोग्यजन, राजस्थान, जयपुर।

10. प्रयास एवं प्रगति, प्रशासनिक प्रतिवेदन (2017–18), सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग राजस्थान, जयपुर ।

11. राष्ट्रीय न्यास एक्ट, 1999

(Thenationaltruest.gov.in/contenthi/innerpage/national-trust-act-and-provisions-hi.php)

12. रिपोर्ट ऑन दि स्मालफोक्स इराडिक्शन प्रोग्राम (1966–80), विश्व स्वास्थ्य संगठन, जेनेवा, स्विटजर्लैण्ड।

13. तुलसीदास (1983), श्रीरामचरितमानस, गीता प्रेस गोरखपुर। (www.hindibookspdf.com/shree-ramcharitmanas-book-pdf-download)

14. विकिपीडिया, सोशियोलोजी ऑफ डिस्ऐबिलिटी, डाउनलोडेड ओन 19 फरवरी 2014।

15. विशेष योग्यजन मार्गदशिका, विशेषयोग्यजन निदेशालय, राजस्थान, जयपुर।

निःशक्तजन का समाजशास्त्र
(भरतपुर जिले में निःशक्त बच्चों के सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश का विश्लेषणात्मक अध्ययन)

साक्षात्कार अनुसूची

1 व्यक्तिगत परिचय

(i) जन्म स्थान : ग्रामीण ☐

शहरी ☐

(ii) धार्मिक प्रस्थिति : हिन्दू ☐

मुस्लिम ☐

सिख ☐

इसाई ☐

बौद्ध ☐

जैन ☐

अन्य ☐

(iii)) परिवार की प्रकृति : संयुक्त ☐

एकाकी ☐

(iv) जाति/जनजातीय प्रस्थिति : सामान्य ☐

अन्य पिछडी जाति ☐

		अनुसूचित जाति	☐
		अनुसूचित जन जाति	☐
		विशेष पिछडी जाति	☐
2. पारिवारिक आय (वार्षिक)	:	एक लाख से कम	☐
		1 से 5 लाख	☐
		5 से 10 लाख	☐
		10 लाख से अधिक	☐
3. पारिवारिक व्यय (मासिक)	:	भोजन	☐
		वस्त्र	☐
		शिक्षा	☐
		स्वास्थ्य	☐
		परिवहन	☐
		अन्य व्यय	☐
4. परिवार की परिसम्पत्तियां		स्वयं का मकान	☐
		भूमि	☐
		स्कूटर	☐
		मोटरसाइकिल	☐

साइकिल ☐

फ्रीज ☐

टी.वी. ☐

मोबाइल फोन ☐

कार ☐

अन्य ☐

5. आपकी निःशक्तता के क्या कारण हैं?

जन्मजात ☐

दुर्घटनावश ☐

अन्य कारण ☐

6. क्या आप राजनैतिक दलों के बारे में जानते हों?

हां ☐

नहीं ☐

7. क्या आपने टीवी, रेडियो, समाचार पत्रों आदि में पारम्परिक चेतना के बारे में देखा/सुना/पढ़ा हैं?

हाँ ☐

नहीं ☐

8. क्या आप पूजा पाठ करते हैं?

हाँ, नियमित रूप से ☐

हाँ, कभी–कभी विशेष अवसरों पर ☐

नहीं, बिल्कुल नहीं ☐

9. आपके साथ आपके परिवारीजन एवं नातेदार कैसा बर्ताव करते हैं?

आत्मिक व्यवहार ☐

सामान्य ☐

दोगला एवं रूखा व्यवहार ☐

10. आपको किन क्रियाओं को सम्पन्न करने में परिवारीजनों की सहायता लेनी पड़ती हैं?

पढ़ाने में ☐

टॉयलेट ले जाने में ☐

नहलाने में ☐

खाना खिलाने में ☐

किसी बात को बताने में ☐

स्कूल लाने ले जाने में ☐

11. क्या आप विद्यालय जाते हैं?

हां ☐

नहीं ☐

12. आपका विद्यालय कैसा है

सरकारी ☐

निजी ☐

निःशक्तजन विद्यालय ☐

13 आपके मित्र/सहपाठी आपसे कैसा व्यवहार करते हैं?

आत्मिक व्यवहार ☐

सामान्य व्यवहार ☐

रूखा एवं हीन ☐

14. आपके अध्यापक आपके साथ कैसा व्यवहार करते है?

आत्मिक व्यवहार ☐

सामान्य व्यवहार ☐

रूखा एवं हीन ☐

15. क्या निःशक्तता के कारण माता–पिता, परिवारीजन (अभिभावक) आपकी उपेक्षा करते हैं?

हां ☐

नहीं ☐

16. क्या आपको निशक्त होने के कारण बाधाओं का सामना करना पडता हैं?

हां ☐

नहीं ☐

17. क्या आपने कभी कोई नशा किया हें?

हां ☐

नहीं ☐

18. यदि हाँ तो कौनसा?

तम्बाकू (बीडी / सिगरेट) ☐

भांग / गांजा ☐

अन्य (शराब / अफीम / डोडा इत्यदि) ☐

19. आपने नशा किसके साथ किया?

अकेले ☐

परिवारजनों के साथ ☐

मित्रों के साथ ☐

अन्य ☐

20. नशा करने का कारण?

तनाव ☐

मित्रों का दबाव ☐

अन्य कोई कारण (फैंशल / शौक / घरेलू परम्परा / प्रथा) ☐

21. क्या आप कोई खेल खेलते हैं?

हां ☐

नहीं ☐

22 क्या निशक्तता आपको खेलों में बाधा उत्पन्न करती हें?

हां ☐

नहीं ☐

23. क्या आप दूसरों से मिलना–जुलना पसंद है?
(मिलनसार)

हां ☐

नहीं ☐

24 क्या आप निःशक्तता के कारण अक्सर तनावग्रस्त रहते हैं?

हां ☐

नहीं ☐

25. आप कौनसा विवाह पसंद करते हैं?

अरेंज मैरिज ☐

प्रेम विवाह ☐

अन्य विवाह (अन्तर्जातिय / अन्ततधार्मिक /

सहजीवन इत्यादि) ☐

26. आपका शैक्षणिक स्तर क्या है?

प्राथमिक ☐

उच्च प्राथमिक ☐

माध्यमिक ☐

अन्य (कॉलेज / व्यवसायिक) ☐

27. जीवन में किस क्षेत्र में अभिरुचि है जिसमें आप उच्च स्थान प्राप्त करने की आकांक्षा रखते हैं?

प्रशासनिक ☐

कला ☐

व्यवसायिक ☐

समाजिक ☐

बौद्धिक ☐

अन्य क्षेत्र ☐

(खेलकूद / धार्मिक / वैज्ञानिक / राजनैति आदि) ☐

28. क्या आपको निःशक्तता संबंधी कानूनों की जानकारी है?

हां ☐

नहीं ☐

29. आपको कौनसी सरकारी सुविधाएं उपलब्ध हो रही है?

मुफ्त शिक्षा ☐

छात्रवृत्ति ☐

पेंशन ☐

अन्य कोई सुविधा ☐

(बैशाखी / ट्राइसाइकिल / ब्लाइंड छडी) ☐

30. सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सुविधाओं के सम्बन्ध में आपकी राय क्या है?

.....

31. शासन में आपकी भागीदारी के सम्बन्ध में आपकी राय क्या है?

.....

ISSN 2347-369X
panacea
INTERNATIONAL
Research Journal
(A Quarterly Bilingual Inter-disciplinary Journal)
Volume-1, No.1
July-Sept. 2013
Honorary Editor-in-Chief
Dr G L Sharma
PANACEA Research Foundation
www.journalpanacea.com

PANACEA INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL
''पैनासीआ इन्टरनेशनल रिसर्च जर्नल''
Volume-I, No.1 July-September 2013

Honorary Editor-in-Chief
Dr G L Sharma

Editorial Board

Prof Ishwar Prasad Modi (President, Indian Sociological Society; Member Executive, International Sociological Association), Prof S S Nathawat (Clinical Psychologist; Director, Amity University, Jaipur), Dr Anil Bhargava (University of Rajasthan, Jaipur), Dr Yogesh Kumar Sharma (SIERT, Udaipur)

Editorial Advisory Committee

Prof Rajeev Gupta (Head, Department of Sociology, UOR, Jaipur), Prof Surendra Kataria (MLS University, Udaipur),Prof B K Sharma (Vardhman Mahaveer Open University, Kota), Prof Pooran Mal Yadav (MLS University, Udaipur), Dr Kailash Chand Saini (Rajasthan Legislative Assembly, Jaipur), Sudheendra Jain (Dean, Faculty of Commmerce), Dr Rajesh Kumar Sharma (University of Rajasthan, Jaipur), Dr Sushil Tyagi, Sanjay Tewari (Administrative Officer, Kanpur), Dr Vikrant Kumar Sharma (Kota University), Dr Lalit Sharma (JK Lakshmipat University, Jaipur), Dr A K Vijay (Director, Guideline), Jitendra Kumar Sharma (CBI, Vishakhapattanam), Bhavesh Kumar Singhwal, Dr Shalini Saxena Dhakar (Gyan Vihar University), Dr Avdhesh Kumar Sharma

Managing Editor
Mrs Pushpa Sharma

Publisher
PANACEA RESEARCH FOUNDATION
"Shanti-Kuteer" 81, Vishvesariya Vistar, Triveni Nagar, Jaipur-302018
panaceairj@gmail.com ; +91-7742321377
www.journalpanacea.com

Printer
Sheetal Printers, Jaipur

Contents

1. Socio-Legal Perspectives of Corruption in India — 6
   - **Jitendra Kumar Sharma**

2. Empowerment of Downtrodden and Social Justice in India — 13
   - **Dr Yogesh Kumar Sharma**

3. Homosexuality: Socio-Legal Discourse — 17
   - **Dr G L Sharma**

4. Environmental Concerns: Need of the Hour — 25
   - **Dr A K Vijay**

5. Right to Public Services with special reference to Rajasthan — 30
   - **Dr Babu Lal Sharma**

6. Domestic Violence Act, 2005: Need of Education and Awareness — 36
   - **Vasundhara Sharma**

7. Manual Scavenging: Hatred Traditional Division of Labour — 41
   - **Jayant Chaubey**

8. Sociology of Disablility — 45
   - **Mamta Singhal**

9. Vocational Education in India: A Comparative Survey — 51
   - **Deepa Vijay**

10. **Development of Vocational and Skill Education with the help of Volunteering**
    - **Shah Hetal Ashok Kumar** — 57

11. Optimizing Data Mining Techniques for Speech Analysis and Speaker Identification — 62
    - **Prof. Dr Jaldipkumar N. Patel and Prof. Rasikkumar D. Patel**

12.. The Role of Media in Empowering Women
    - **Dr Sruti Tandon** — 72

Sociology of Disability

Mamta Singhal

Abstract

Disability is a phenomenon that is socially defined, has pervasive social consequences for individuals, and has significant impact on societies. The social reality of disability is characterized by "considerable variation in the experience of impairment by large numbers of people who nonetheless share common conditions of exclusion, marginalization, and disadvantage". At the same time, in spite of exclusion, marginalization, and disadvantage, the symbolic meaning inherent in disability may be expressed in a strong and positive sense of identity. Disability can also be viewed as a political privilege, in the sense of carrying permission to be exempt from the work-based system, military service, debt, and criminal liability. This paper is an effort to describe the social reality of disabled.

Key words: disability, sensory disability, vision impairment, olfactory and gustatory impairment, hearing impairment.

Disability is the consequence of an impairment that may be physical, cognitive, mental, sensory, emotional, developmental, or combination of these. A disability may be present from birth, or occur during a person's lifetime. Disability is an umbrella term, covering impairments, activity limitations, and participation restrictions. Impairment is a problem in body function or structure; an activity limitation is a difficulty encountered by an individual in executing a task or action; while a participation restriction is a problem experienced by an individual in involvement in life situations. Thus, disability is a complex phenomenon, reflecting an interaction between features of a person's body and features of the society in which he or she lives. (WHO 2012)

An individual may also qualify as disabled if he/she has had impairment in the past or is seen as disabled based on a personal or group standard or norm. Such impairments may include physical, sensory, and cognitive or developmental disabilities. Mental disorders (also known as psychiatric or psychosocial disability) and various types of chronic disease may also qualify as disabilities. Some advocates object to describing certain conditions (notably deafness and autism) as "disabilities", arguing that it is more appropriate to consider them developmental differences that have been unfairly stigmatized by society. (Soloman 2011)

The term "disability" broadly describes impairment in a person's ability to function, caused by changes in various subsystems of the body, or to mental health. The degree of disability may range from mild to moderate, severe, or profound. A person may also have multiple disabilities. Conditions causing disability are classified by the medical community as: inherited (genetically transmitted); congenital, meaning caused by a mother's infection or other disease during pregnancy, embryonic or fetal developmental irregularities, or by injury during or soon after birth; acquired, such as conditions caused by illness or injury; or of unknown origin. (Funell 2008)

Types of disability

Physical disability: Any impairment which limits the physical function of limbs, fine bones, or gross motor ability is a physical disability. Other physical disabilities include impairments which limit other facets of daily living, such as severe sleep apnoea. A man with an above the knee amputation exercises while wearing a prosthetic leg.

Sensory disability: Sensory disability is impairment of one of the senses. The term is used primarily to refer to vision and hearing impairment, but other senses can be impaired.

Vision impairment: Vision impairment is vision loss (of a person) to such a degree as to qualify as an additional support need through a significant limitation of visual capability resulting from either disease, trauma, or congenital or degenerative conditions that cannot be corrected by conventional means, such as refractive correction, medication, or surgery. This functional loss of vision is typically defined to manifest with best corrected visual acuity of less than 20/60, or significant central field defect, significant peripheral field defect including homonymous or heteronymous bilateral visual, field defect or generalized contraction or constriction of field, or reduced peak contrast sensitivity with either of the above conditions.

Hearing impairment: Hearing impairment or hard of hearing or deafness refers to conditions in which individuals are fully or partially unable to detect or perceive at least some frequencies of sound which can typically be heard by most people. Mild hearing loss may sometimes not be considered a disability.

Olfactory and gustatory impairment: Impairment of the sense of smell and taste are commonly associated with aging but can also occur in younger people due to a wide variety of causes. There are various olfactory disorders:- Anosmia – inability to smell; Dysosmia – things smell different than they should; Hyperosmia – an abnormally acute sense of smell; Hyposmia – decreased ability to smell; Olfactory Reference Syndrome- psychological disorder which causes patients to imagine they have strong body odour; Parosmia – things smell worse than they should; Phantosmia – "hallucinated smell", often unpleasant in nature. Complete loss of the sense of taste is known as ageusia, while dysgeusia is persistent abnormal sense of taste.

Somato-sensory impairment: Insensitivity to stimuli such as touch, heat, cold, and pain are often an adjunct to a more general physical impairment involving neural pathways and is very commonly associated with paralysis (in which the motor neural circuits are also affected).

Balance disorder: A balance disorder is a disturbance that causes an individual to feel unsteady, for example when standing or walking. It may be accompanied by symptoms of being giddy, woozy, or have a sensation of movement, spinning, or floating. Balance is the result of several body systems working together. The eyes (visual system), ears (vestibular system) and the body's sense of where it is in space (proprioception) need to be intact. The brain, which compiles this information, needs to be functioning effectively.

Intellectual disability: Intellectual disability is a broad concept that ranges from mental retardation to cognitive deficits too mild or too specific (as in specific learning disability) to qualify as mental retardation. Intellectual disabilities may appear at any age. Mental retardation is a subtype of intellectual disability, and the term intellectual disability is now preferred by many advocates in most English-speaking countries as a euphemism for mental retardation.

Mental health and emotional disabilities: Mental disorder or mental illness is a psychological or behavioural pattern generally associated with subjective distress or disability that occurs in an individual, and perceived by the majority of society as being outside of normal development or cultural expectations. The recognition and understanding of mental health conditions has changed over time and across cultures, and there are still variations in the definition, assessment, and classification of mental disorders, although standard guideline criteria are widely

accepted.

Developmental disability: Developmental disability is any disability that results in problems with growth and development. Although the term is often used as a synonym or euphemism for intellectual disability, the term also encompasses many congenital medical conditions that have no mental or intellectual components, for example spina bifida.

Non-visible disabilities: Several chronic disorders, such as diabetes, asthma, inflammatory bowel disease or epilepsy, would be counted as non-visible disabilities, as opposed to disabilities which are clearly visible, such as those requiring the use of a wheelchair.

DIFFERENT APPROACHES TO DEFINING DISABILITY

The definition and classification of disabled persons have gone through a number of changes over the centuries.

Biomedical Definition: Disability is identified with illness or impairment in the biomedical approach, with most emphasis falling on curing the disabled individual. If this fails, the person is removed from society.

Philanthropic Definition: Disability is regarded as a tragedy or object of sympathy and charity. People with disabilities are therefore pitied, given handouts and cared for in separate institutions.

Sociological Definition: This approach defines disability as a form of human difference or deviation from the social norms of the acceptable levels of activity performance.

Economic Definition: Disability is defined as a social cost caused both by extra resources that children and adults with disabilities require and by their limited productivity at work, relative to able-bodied people.

Socio-Political Definition as Adopted by the Integrated National Disability Framework: Disability needs to be defined within context, rather than focussing on the inability of people that inadvertently leads to stigmatisation and categorisation. The Integrated National Disability Framework has therefore adopted a socio-political approach to disability, whereby disability is located in the social environment. This takes cognisance of disabled people's viewpoint that disability is a social construct and most of its effects are inflicted upon people with disabilities by their social environment e.g. it is not the disability, nor the wheelchair that disables a person but it is the stairs leading to a building.

The Concept

Different terms have been used for people with disabilities in different times and places. The euphemism treadmill and changing fashions have caused terms to rise or fall in popularity. At this time, disability or impairment are commonly used, as are more specific terms, such as blind (to describe having no vision at all) or visually impaired (to describe having limited vision).

Handicap has been disparaged as a result of false folk etymology that says it is a reference to begging. It is actually derived from an old game, Hand-i'-cap, in which two players trade possessions and a third, neutral person judges the difference of value between the possessions. The concept of a neutral person evening up the odds was extended to handicap racing in the mid-18th century. In handicap racing, horses carry different weights based on the umpire's estimation of what would make them run equally. The use of the term to describe a person with a disability- by extension from handicap racing, a person carrying a heavier burden than normal- appeared in the early 20th century. (Online Etymology Dictionary 2013)

Handicap replaced terms that are now considered insulting, such as crippled. Many people would rather be referred to as a person with a disability instead of handicapped. "Cerebral Palsy: A Guide for Care" at the University of Delaware offers the following guidelines:

Impairment is the correct term to use to define a deviation from normal, such as not being able to make a muscle move or not being able to control an unwanted movement. Disability is the term used to define a restriction in the ability to perform a normal activity of daily living which someone of the same age is able to perform. For example, a three-year-old child who is not able to walk has a disability because a normal three-year-old can walk independently. Handicap is the term used to describe a child or adult who, because of the disability, is unable to achieve the normal role in society commensurate with his age and socio-cultural milieu. As an example, a sixteen-year-old who is unable to prepare his own meal or care for his own toileting or hygiene needs is handicapped. On the other hand, a sixteen-year-old who can walk only with the assistance of crutches but who attends a regular school and is fully independent in activities of daily living is disabled but not handicapped. All disabled people are impaired, and all handicapped people are disabled, but a person can be impaired and not necessarily be disabled, and a person can be disabled without being handicapped.

The American Psychological Association style guide states that, when identifying a person with impairment, the person's name or pronoun should come first, and descriptions of the impairment or disability should be used so that the impairment is identified, but is not modifying the person. Improper examples are "a borderline", "a blind person", or "an autistic boy"; more acceptable terminology includes "a woman with Down syndrome" or "a man who has schizophrenia". It also states that a person's adaptive equipment should be described functionally as something that assists a person, not as something that limits a person, for example, "a woman who uses a wheelchair" rather than "a woman in or confined to a wheelchair."

A similar kind of "people-first" terminology is also used in the UK, but more often in the form "people with impairments" (such as "people with visual impairments"). However, in the UK, the term "disabled people" is generally preferred to "people with disabilities". It is argued under the social model that while someone's impairment (for example, having a spinal cord injury) is an individual property, "disability" is something created by external societal factors such as a lack of wheelchair access to the workplace. This distinction between the individual property of impairment and the social property of disability is central to the social model. The term "disabled people" as a political construction is also widely used by international organisations of disabled people, such as Disabled Peoples' International (DPI).

United Nations and Disability

On December 13, 2006, the United Nations formally agreed on the Convention on the Rights of Persons with Disabilities, the first human rights treaty of the 21st century, to protect and enhance the rights and opportunities of the world's estimated 650 million disabled people. As of April 2011, 99 of the 147 signatories had ratified the Convention. Countries that sign the convention are required to adopt national laws, and remove old ones, so that persons with disabilities will, for example, have equal rights to education, employment, and cultural life; to the right to own and inherit property; to not be discriminated against in marriage, etc.; to not be unwilling subjects in medical experiments.

In 1976, the United Nations launched its International Year for Disabled Persons (1981),

later renamed the International Year of Disabled Persons. The UN Decade of Disabled Persons (1983–1993) featured a World Programme of Action Concerning Disabled Persons. In 1979, Frank Bowe was the only person with a disability representing any country in the planning of IYDP-1981. Today, many countries have named representatives who are themselves individuals with disabilities. The decade was closed in an address before the General Assembly by Robert Davila. Both Bowe and Davila are deaf. In 1984, UNESCO accepted sign language for use in education of deaf children and youth.

Demographics of Disability

Estimates of worldwide and country-wide numbers of individuals with disabilities are problematic. The varying approaches taken to defining disability notwithstanding, demographers agree that the world population of individuals with disabilities is very large. For example, in 2004, the World Health Organization estimated a world population of 6.5 billion people, of those nearly 100 million people were estimated to be moderately or severely disabled. In the United States, Americans with disabilities constitute the third-largest minority (after persons of Hispanic origin and African Americans); all three of those minority groups number in the 30-some millions in America. According to the U.S. Bureau of the Census, as of 2004, there were some 32 million disabled adults (aged 18 or over) in the United States, plus another 5 million children and youth (under age 18). If one were to add impairments- or limitations that fall short of being disabilities- Census estimates put the figure at 51 million.

There is also widespread agreement among experts in the field that disability is more common in developing than in developed nations. The connection between disability and poverty is thought to be part of a "vicious cycle" in which these constructs are mutually reinforcing. Nearly eight million men in Europe returned from the World War I permanently disabled by injury or disease.

About 150,000 Vietnam veterans came home wounded, and at least 21,000 were permanently disabled. Increased US military involvement has resulted in a significant increase of disabled military personnel since 2001. According to Fox News, this is a '25 percent' rise, with more than '2.9 million' total veterans now disabled. (Kitchen 2000)

After years of war in Afghanistan, there are more than one million disabled people. Afghanistan has one of the highest incidences of people with disabilities in the world. An estimated 80,000 Afghans have lost limbs, mainly as a result of landmines. In Australia, 18.5% of the population reported having a disability in a 2009 survey.

Disability rights movement

The disability rights movement is the movement to secure equal opportunities and equal rights for people with disabilities. The specific goals and demands of the movement are: accessibility and safety in transportation, architecture, and the physical environment, equal opportunities in independent living, employment, education, and housing, and freedom from abuse, neglect, and violations of patients' rights. Effective civil rights legislation is sought in order to secure these opportunities and rights.

Conclusion

Disability' occupies an ambiguous position within sociology. In some respects, it has been a consistent feature since early symbolic interactionist studies used accounts of impairment in social deviance studies. This approach has remained firmly embedded within the sub-discipline of medical

sociology. Engagement with disability as a social relationship rather than individualistic concern remains marginal in broader sociology. Scholars like Shakespeare (2006) and Thomas (1999) acknowledge disability as a complex relation between personal and environmental or social factors. This is surprising given that the foundations of sociology are to understand how society works and provide insights in the relationships between people (institutions, places and non-humans).

A critical approach to the sociology of disability is particularly timely given the challenges facing disabled people under the current coalition government in 'an age of austerity'. Whilst other dimensions to identity, such as age, gender, ethnicity, socio-economic class, sexuality, occupation and health, are the subject of considerable research, focus and engagement, disability remains largely out in the cold. The emergence, in the early 1980s, of the field of disability studies, with its strong emphasis on social oppression, led to strong criticism of the social deviance paradigm and a reconsideration of the disabling dynamics of society and sociology of impairment. We should have sympathetic perspective towards challenging persons. There is a keen need of efforts from governmental and non-governmental side for welfare of this section of society.

References

- Albrecht, Gary L., ed. (2005). Encyclopedia of disability. Thousand Oaks, CA: SAGE Publications. ISBN 978-0-7619-2565-1.
- Bagenstos, Samuel (2009). Law and the Contradictions of the Disability Rights Movement. New Haven: Yale University Press. ISBN 978-0-300-12449-1.
- Cooper, Rory A; Hisaichi Ohnabe; Douglas A. Hobson (2006). An Introduction to Rehabilitation Engineering. CRC Press. p. 131. ISBN 9781420012491.
- Johnstone, David (2001). An Introduction to Disability Studies (2nd ed.). Fulton. ISBN 978-1-85346-726-4.
- Kaplan, Deborah. "Disability Model". World Institute on Disability. 2011.
- Sharma, Dr G.L. & Dr Y.K. Sharma "Encyclopedia of Sociology" Volume III, Social Problems in India (Hindi), ISBN: 978-81-8198-210-0, Jaipur: University Book House Pvt. Ltd, 2008.
- Solomon, Andrew. "The New Wave of Autism Rights Activists". New York Magazine. 2011.
- WHO (World Health Organization), World report on disability, 2011.
- WHO (World Health Organization). "Disabilities" 2012.
- Yeo, R. & Moore, K. (2003). Including disabled people in poverty reduction work: "Nothing about us, without us". World Development 31, 571-590.

Mamta Singhal, Research Scholar, Department of Sociology, Kota University, Kota

MAH/MUL/03051/2012
ISSN-2319 9318

International Multilingual Research Journal

Vidyawarta®

Issue-20, Vol-13, Oct. to Dec.2017

Editor
Dr.Bapu G.Gholap

www.vidyawarta.com

MAH/MUL/ 03051/2012 ISSN :2319 9318

आंतरविद्याशाखीय बहुभाषिक संशोधन पत्रिका

विद्यावार्ता

Oct. To Dec. 2017
Issue-20, Vol-13

Editor
Dr. Bapu g. Gholap
(M.A.Mar.& Pol.Sci.,B.Ed.Ph.D.NET.)

विद्येविना मति गेली, मतीविना नीति गेली
नीतिविना गति गेली, गतिविना वित्त गेले
वित्तविना शूद्र खचले, इतके अनर्थ एका अविद्येने केले

-महात्मा ज्योतीराव फुले

❖ विद्यावार्ता या आंतरविद्याशाखीय बहूभाषिक त्रैमासिकात व्यक्त झालेल्या मतांशी मालक, प्रकाशक, मुद्रक, संपादक सहमत असतीलच असे नाही. न्यायक्षेत्र:बीड

"Printed by: **Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.** Published by **Ghodke Archana Rajendra** & Printed & published at Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.,At.Post. Limbaganesh Dist,Beed -431122 (Maharashtra) and Editor **Dr. Gholap Bapu Ganpat**.

Reg.No.U74120 MH2013 PTC 251205
Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.
At.Post.Limbaganesh,Tq.Dist.Beed
Pin-431126 (Maharashtra) Cell:07588057695,09850203295
harshwardhanpubli@gmail.com, vidyawarta@gmail.com
All Types Educational & Reference Book Publisher & Distributors / www.vidyawarta.com

28) अन्न व धान्य प्रक्रियनसाठी विद्युत् ऊर्जेचा उपयोग
विशाल पांडागळे—अमोल माहुलिकर—सोनिया विल्हेकर || 121

29) दिव्यांगजन:समाजशास्त्रीय विवेचन
ममता सिंघल, कोटा (राज.) || 123

30) आचार्य शुक्ल और उनका इतिहास लेखन
डॉ॰ ओमप्रकाश नारायण द्विवेदी, जम्मू || 128

31) भारतीय दर्शन में प्रामाण्यवाद
डॉ॰ प्रवीण कुमार गुप्त, कुशीनगर (उ०प्र०)। || 130

32) माध्यमिक शिक्षा परिषद उत्तर प्रदेश एवं केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा.....
राहुल गुप्ता—प्रो॰ बी॰ सी॰ दूबे, मेरठ || 135

33) भारतीय दर्शन में माया की परिकल्पना; आदि ग्रंथ के सन्दर्भ में
डॉ॰ हरप्रीत 'कौर', चण्डीगढ़ || 140

34) भीष्म साहनी के उपन्यासों में जीवनमूल्य:एक विश्लेषण
नवजोत कौर, कपूरथला। || 148

35) बैष्णवमूल्यों एवं आस्थाओं के सन्दर्भ में लक्ष्मीनारायण शर्मा का काव्य
डॉ॰ मुनीश कुमार, हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश. || 154

36) प्राचीन भारत में राजा—राजकीय कानून और न्याय व्यवस्था
डॉ॰ ज्योति मिश्रा || 162

37) छेनियों का दंश....
डॉ॰ उत्तम कुमार शुक्ल, फतेहपुर (उ०प्र०) || 165

38) भाषा शिक्षण में कम्प्यूटर की भूमिका
देवेन्द्रसिंह ठाकुर, धरमपुरी, जिला—धार || 167

39) *रामानुजाचार्य और स्वामिनारायणके विशिष्टाद्वैत मतकी भिन्नता*
डो. द्युति जयेन्द्रकुमार याज्ञिक, अहमदाबाद. || 170

40) गुरूमति संगीत में भक्त नामदेव जी की रचनाएं
रतिंदरजित कौर || 176

www.vidyawarta.com/03 | http://www.printingarea.blogspot.com

29

दिव्यांगजन: समाजशास्त्रीय विवेचन

ममता सिंघल,
रिसर्च स्कॉलर,
समाजशास्त्र, सामाजिक विज्ञान विभाग,
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

सार

नि:शक्तता या निर्योग्यता (डिसएबिलिटी) एक जटिल एवं विस्तृत सामाजिक अवधारण है। यह व्यक्ति के शरीर की विशेषताओं तथा समाज की विशेषताओं के बीच की अंत: क्रियाओं को अभिव्यक्त करती है। यह दरअसल व्यक्ति की क्षमताओं के प्रकारों में होने वाली विकृति या असामान्यता को व्यक्त करती है। नि:शक्तता शरीर की उपव्यवस्थाओं या अंगों या मानसिक दशा में परिवर्तन के कारण पैदा होती है। इसकी तीव्रता हल्की, मध्यम और तीव्र गंभीर नि:शक्तता तक हो सकती है। एक व्यक्ति में एक से अधिक बहुल नि:शक्तता भी संभव है। नि:शक्तता के कई कारण हो सकते हैं— जन्मजात विकृति, बीमारी या दुर्घटना। नि:शक्तजनों को वर्तमान में दिव्यांगजन कहा जाता है। प्रस्तुत शोधपत्र में दिव्यांगजनों का समाजशास्त्री विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

मूक होइ बाचाल, पंगु चढइ गिरिबिर गहन।
जासु कृपों सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन।।
(श्रीरामचरितमानस)

पृथ्वी के इस संसार में प्रत्येक प्राणी विविध समानताऐं रखते हुए भी एक दूसरे से भिन्नता रखता है। यही स्थिति मानव—प्राणी की भी है कि समरूपताओं के होते हुए भी प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से भिन्न है। जीवन के उज्ज्वल एवं कालिमामय रूप के समान ही स्वस्थ—अस्वस्थ, सबल—निर्बल, मेधावी—मंदमति, शारीरिक दृष्टि से पूर्णतया सक्षम, योग्य अथवा किसी न किसी बाधायुक्त अथवा अपंग, विकलांग, विविधताओं से युक्त विभिन्न प्रकार के प्राणी इस जगत में विद्यमान है।

यद्यपि समाज में जहां भी असमानताऐं, विषमताऐं और अंतर्भेद व्याप्त हैं। ये संस्तरण मानव—मस्तिष्क की ही उपज है। उसने निजी स्वार्थ—वश उच्च—निम्न, धनी—निर्धन, समर्थ—वंचित के दायरे बना लिये है। अन्यथा प्रकृति तो सबको विकास हेतु समान अवसर प्रदान करती है। धरा, आकाश, वायु, प्रकाश, जल एवं अन्य संसाधन किसी एक की बापौती न होकर सबके लिए ही है। जहां तक अधिकारी का, अवसरों का प्रश्न है, नैसर्गिक रूप से सबको समान अधिकार प्राप्त है किन्तु मनुष्य अपने लाभ के लिए दूसरों के हितों पर अधिकार कर बैठता है। उनके बल पर प्रगति करता है। ऐसी स्थिति में दूसरों के लिए समाज में उपयुक्त स्थान प्राप्त करना कठिन ही नहीं, दुष्कर हो जाता है। फलत: शक्तिवानों, सामर्थ्यवानों का साम्राज्य, जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत ही चरितार्थ होगी। व्यक्ति चाहे शारीरिक रूप से विकलांग है अथवा मानसिक रूप से, वह स्वयं निर्दोष है। क्योंकि कैसी भी विकलांगता हो व्यक्ति की स्वयं की त्रुटि या दोष के परिणामस्वरूप न होकर, कोई भी रोग अथवा दुर्घटना ही है जिससे बालक या व्यक्ति दुर्बल, कुरुप, अपंग, विकलांग या मंदमति अथवा अक्षम हो सकता है। स्पष्ट है कि विकलांगत के लिए व्यक्ति स्वयं उत्तरदायी नहीं वरन् उस समाज के सामाजिक आर्थिक कारक—विपन्नता, कुपोषण, हीन आथिक स्थिति, बेरोजगारी, एक और सुरसा के मुंह के समान बढती जनसंख्या तो दूसरी ओर सिमटते साधनों, नियमित, वरदान और अभिशाप, पाप एवं पुण्य तथा पुनर्जन्म में दृढ अंध—विश्वास ही कहीं अधिक उत्तरदायी है। जिनके कारण समाज में नित्य प्रति बालक, किशोर, युवा अथवा प्रौढ या वृद्ध हो विकलांगता से ग्रसित हो जाते है। इसीलिए यह अत्यावश्यक

हो गया है कि विकलांगों के प्रति दया, करुणा की भावना प्रदर्शित करने की अपेक्षा उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना चाहिए, जिससे विकलांगों में निहित प्रतिभा को, क्षमता को विकसित करने के समुयुक्त अवसर प्राप्त हो सकें, उनमें हीन भावना के विपरीत स्वावलम्बन की भावना का संचार हो सके।

अवधारणा

नि:शक्तता या विकलांगता लोगों के लिए समय–स्थान एवं परिस्थितियों के अनुसार कई शब्दावलियों का प्रयोग किया जाता है। नि:शक्तता, विकलांगता, निर्योग्यता, विकृत अंग–शैथिल्यता, असामान्यता इत्यादि प्रमुख प्रचलित पद है, लेकिन भाषा–विज्ञान एवं शाब्दिक दृष्टि से इन शब्दावलियों में अंतर है। सभी नि:शक्त (Disabled) व्यक्ति विकृत (Impaired) होते हैं और इसी प्रकार सभी विकलांग (Handicapped) नि:शक्त होंगे। लेकिन एक विकृत व्यक्ति का नि:शक्तजन होना तथा एक नि:शक्तजन का विकलांग होना आवश्यक नहीं है।

किसी सामान्य क्षमता के मुकाबले अवांछित रूप से गति के नियंत्रण में असफलता विकृति (Impairment) कहलाती है। जबकि नि:शक्तता (Disablity) सामान्य गतिविधियों की क्षमता में तुलनात्मक रूप में कमी को अभिव्यक्ति करती है। जैसे– एक तीन वर्ष का बालक चलने में असमर्थ रहत है तो यह नि:शक्तता कहलाएगी। क्योंकि तीन वर्ष का सामान्य बालक स्वतंत्र रूप से चलने–फिरने के योग्य हो जाता है। विकलांग (Handicapped) शब्दावली का प्रयोग इस व्यक्ति के लिए जाता है जो किसी नि:शक्तता के कारण समाज में अपनी सामान्य भूमिका निभाने, सामान्य गतिविधियों को करने में असफल रहता है, जैसे–एक १६ वर्ष का बालक स्वयं दैनिक दिनचर्या (स्नान आदि) को सम्पन्न करने या खाना खाने में असफल रहता है, तो वह विकलांग है। लेकिन दूसरी ओर यदि एक १६ वर्षीय बालक जो वैसाखी के सहारे अपनी दैनिक दिनचर्या सम्पन्न कर लेता है और स्कूल भी जाता है तो वह विकलांग नहीं है अपितु नि:शक्त (Disabled) है।

नि:शक्तता के चूंकि अनेक प्रकार एवं स्वरूप है इसलिए इसे परिभाषित करना कठिन है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार नि:शक्तता किसी विकृति के परिणामस्वरूप उत्पन्न क्षमता की कमी या बाधा को अभिव्यक्त करती है जो किसी मानव में सामान्य रूप से पाई जाती है। नि:शक्तता अधिनियम, १९९५ के अनुसार किसी मान्यता प्राप्त चिकित्सा प्राधिकार द्वारा ४० प्रतिशत से अधिक विकृति (असामान्यता या नि:शक्तता) से पीडित व्यक्ति ही नि:शक्तता की श्रेणी में आता है।

वर्तमान में नि:शक्त शब्द अधिक प्रचलन में है लेकिन हाल ही में भारत सरकार द्वारा लागू दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम २०१६ के तहत नि:शक्तजन के स्थान पर दिव्यांगजन शब्दावली का प्रयोग किया गया हैं। जिससे इन लोगों मे जिन्दगी के प्रति सकारात्मक सोच उत्पन्न की जा सके और उन्हें समाज पर बोझ न समझा जाए। वास्तव में ऐसे विशेषजनों के लिए विशेष प्रावधान कर उन्हें समाज की मुख्य धारा में शामिल करने का यह प्रयास सराहनीय है।

हमारे देश में सावधानियों के बावजूद भी नि:शक्तजनों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। विकलांगता चाहे किसी दुर्घटनावश हुई हो, कुपोषण के कारण अथवा अभिभावकों की असावधानीवश, जन्म से ही हो अथवा जन्मोपरांत आज भी समाज में इसके बारे में नकारात्मक सोच व्याप्त है। समाज में सामाजिक चेतना, जागरुकता का आज अभाव है।

अत: किसी भी देश अथवा समाज को अपने नागरिकों चाहे प्रतिभावान हो अथवा मंदगति, स्वस्थ हो या अस्वस्थ, सामान्य हो अथवा–विकलांगता सभी के बहुमुखी विकास हेतु प्रयास करने चाहिए जिससे सामान्यों के साथ–साथ अन्य श्रेणियों के बालक भी सहज सामान्य रूप से जीवन यापन करने में समर्थ हो सके। इस दिशा में देश–विदेश में असंख्य प्रयास किये गये हैं किन्तु विकलांगता आज भी मानव समाज एवं विश्व के समक्ष एक जटिल समस्या, एक ज्वलंत प्रश्न बनी हुई है।

नि:शक्त व्यक्ति पर काल में क्रूर हाथों की

दोहरी मार पडती है। ऐसे व्यक्ति को जहां अपनी विकलांगता को स्वीकार करना पडता है, वही परिस्थितियों से अनुकूलन स्थापित करना पडता है, तथा सामाजिक वातावरण से भी। विकलांग व्यक्ति चाहे शारीरिक दृष्टि से विकलांग हो अथवा मानसिक दृष्टि से उसे अपने साथी लोगों जिनके सम्पर्क में वह आता है, घर–परिवार, समुदाय, विद्यालय अथवा संगी–साथही हो, विकलांगता के परिणामस्वरूप अपनी सीमित भागीदारी के कारण, स्पर्धा में उनसे पिछड जाने के कारण, आत्मविश्वास के अभाव, हीन भावना तथा उपहास के भय के कारण सामाजिक एवं संवेगात्मक तनाव के प्रभाव स्वरूप वे अधिक वंचित, कुंठित एवं तनाव ग्रस्त अनुभव करते हैं। समाज उन्हें परिवार–समाज पर भार स्वरूप, अनुपयोगी, परजीवी स्वीकार कर दया, करुणा एवं उपेक्षा का पात्र मानता है। अत: व्यक्ति की शारीरिक अथवा मानसिक विकलांगता से भी अधिक सामाजिक, संवेगात्मक तनावयुक्त वातावरण उनके जीवन को दुष्कर एवं नरकीय बना देता है। परिवार के सहज–स्नेह से वंचित, समवयस्क संगी–साथियों की संगति, हास–परिहास, खेलादि के उत्साह–उमंग एवं आनंद से वंचित विकलांग बालक एकाकी, अंतर्मुख प्रवृति के जड़ पदार्थ सम हो जाते हैं।

अतएव किसी भी समाज के लिए आवश्यक है कि नि:शक्त बच्चों के लिए सामाजिक, सांस्कृतिक अत: क्रियाओं एवं शैक्षिक विकल्पों के द्वार खुले हो, जहां विकलांग बालक अपनी विकलांगता को ईश्वरीय देन के रूप में स्वीकार न कर, हीन–भावना, नैराश्य एवं ग्लानिसे विमुक्त हो उसे सहज रूप से स्वीकारते हुए स्वावलम्बी एवं उत्तरदायी नागरिक बने। उनमें दया नहीं अपितु आशा एवं विश्वास के साथ जीवन को आत्म –सम्मान के साथ जीने की ललक विकसित की जाए तो कोई कारण नहीं कि वे स्वयं को निष्क्रिय दीनहीन, परजीवी, पराश्रित, तिरस्कृत एवं उपेक्षित समझें।

भारतीय समाज में नि:शक्तता की दैवीय–अभिशाप, नियति के क्रूर आघात के रूप में माना जाता है किन्तु सत्य तो यह है कि विकलांग होना न तो स्वयं बालक के लिए न माता–पिता के लिए पाप अथवा कोई सामाजिक अपराध है। इस मानसिकता से मुक्त करने हेतु जनमानस में सामाजिक चेतना का विकास किया जाना आवश्यक है कि विकलांग भी केवल उसकी शारीरिक विकलांगता के अतिरिक्त जो उसकी भागीदारी को कुछ सीमा तक परिसीमित कर देती है, एक विवेकशील प्राणी है, उसमें भी अनंत संभावनाऐं छिपी रहती है। यह तभी संभव है जबकि विकलांग बालक माता–पिता एवं समाज सबको इन संभावनाओं से अवगत कराया जाए। विकलांगों की शारीरिक एवं मानसिक दशाओं के अनुरूप ही उनकी आकांक्षाऐं हो, वे जीवन में विषम परिस्थितियों का साहस से सामना करते हुए वातावरण (सामाजिक एवं सांस्कृतिक) में समायोजित हो सके।

अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वर्ष १९८१ को अंतर्राष्ट्रीय नि:शक्त वर्ष के रूप में भव्य घोषणाओं के साथ मनाया गया। फलत: विकलांगों की शिक्षा एवं उनके पुनर्वास पर अधिकाधिक ध्यान केन्द्रित किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस दृष्टि से अनेक लक्ष्य निर्धारित किये जिनमें सेप्रमुख लक्ष्य निम्नानुसार है:–

१. विकलांग व्यक्तियों को अधिक से अधिक सहायता देना। विकलांगों को प्रशिक्षण देने, देखरेख करने एवं परामर्श हेतु राष्ट्रीय स्तर पर विविध प्रयास करना जिससे उन्हें प्रदान किये जाने वाले अवसरों का समुचित प्रयोग हो सके।

२. विकलांग व्यक्तियों के आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन के विभिन्न पक्षों में भाग लेने, उनके योगदान और अधिकारों के संबंध में सामान्य जनता को अवगत कराना।

संयुक्त राष्ट्र संघ के परिप्रेक्ष्य में भारत सरकार ने कुछ लक्ष्य निर्धारित किये हैं–

१. कानून के अधीन विकलांगों को पूर्ण सुरक्षा प्रदार करने, उन्हें प्रशिक्षण एवं रोजगार प्रदान करने तथा उनकी पूर्ण सामाजिक एकता के विकास हेतु राष्ट्रीय नीति पर विचार करना।

२. क्योंकि विकलांगों की अधिकतर संख्या ग्रामीण

क्षेत्रों में निवास करती है और वर्तमान में सभी अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम नगरों पर ही आधारित हैं अतएव अधिक से अधिक विकलांगों को नगरों में पुनर्वासित करना अथवा महानगरों में जहां उन्हें पुनर्वास सेवाओं के लाभों की प्राप्ति एवं सुरक्षा प्राप्त हो सके, व्यवस्था करना।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार सम्पूर्ण जनसंख्या १/१० भाग बच्चे जन्मजात ही अथवा जन्मोपरांत शारीरिक या मानसिक विकलांगता से ग्रसित हो जाते हैं। अविकासित राष्ट्रों में तो यह प्रतिशत बहुत अधिक अर्थात् १४ से २० प्रतिशत तक है। नि:शक्तजनों की शिक्षा एवं विकास का प्रश्न सदैव ही विचारणीय रहा है। प्राय: विकलांगों एवं दुर्बलों ने व्यक्ति का ध्यान अपनी समस्या को जटिलता की ओर आकर्षित किया है। यदि अतीत के इतिहास में झांक कर देंखे तो प्राचीन ग्रीक शिक्षा के आदर्श इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। स्पार्टा निवासी अयोग्य, दुर्बल एवं शिशुओं को सह नहीं पाते थे और न उसमें कोई समझौता करते थे। उनकी शिक्षा का तो प्रश्न ही न उत्पन्न होता था। उनकी उपेक्षा, तिरस्कार, अनादर की चरम सीमा ही तो थी कि वे ऐसे शिशुओं को जन्मते ही मार डालते थे। उनके मतानुसार अपंग, कुरुप बालक ईश्वर का श्राप हैं। देश के सैन्यकरण की दृष्टि से केवल स्वस्थ, सुंदर, सुडौल एवं शक्ति सामर्थ्य से युक्त बच्चे ही मानव जीवन हेतु स्वीकृत किये जाते थे। कालांतर में वैचारिक क्रान्ति आयी। ग्रीक अवधारण के विपरीत अमेरिकावासी किसी भी बालक को जीवन से वंचित करना कदापि श्रेयस्कर नहीं मानते थे चाहे वह बालक विकलांग ही क्यों न हो। इस विचारधारा के अनुरूप प्रत्येक बालक को उसकी संभाव्यताओं तथा अवरोध की सीमान्तर्गत विकसित होने के लिए व्यापक शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। किसी भी मानव प्राणी को उसकी अधिकतम अभिवृद्धि एवं विकास से इन्कार करना अक्षम्य अपराध है, पाप है।

ऐतिहासिक दृष्टि से एथेन्स ही वास्तव में ऐसा प्रथम राज्य था जो उच्च कोटि के मानवतावाद के लक्ष्य को अनुभव करके पूर्णमानव–बुद्धिमान, सुंदर, गुणवान के निर्माण हेतु उद्देश्यपूर्ण शिक्षा तथा स्वतंत्र रूप से व्यक्ति द्वारा अपनी योग्यताओं, क्षमताओं के विकास पर बल देता था। इसी कारण वहां प्राथमिक शिक्षा का लोकतंत्रीकरण किया गया और निजी शिक्षा–संस्थानों को प्रोत्साहित किया गया। समाज के विभिन्न अभिकरणों, संस्थाओं एवं वर्गो के पारस्परिक सहयोग पर बल दिया गया। इस धारणा को मान्यता दी गई कि व्यक्ति शरीर से अधिक एक चेतन प्राणी है। उसे यथार्थ में जो कि वह बनने योग्य है, बनने दें। हाल ही में भारत सरकार द्वारा लागू दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम २०१६ में नि:शक्तता के २१ प्रकार उल्लेखित किये गये है।

(१) मानसिकता मंदता (Mental Retardation)

व्यक्ति समझने और बोलने आदि में अन्य हम उम्र बच्चों के समान कार्य नहीं कर पता है मिर्गी/दौरे आना या उसका शरीर जकड जाता है या वह बेहोश होता है व्यक्ति को स्वय की आवश्यकता अभिव्यक्त करने में कठिनाई होती है।

(२) ऑटिज्म (Autism Specturm Disorder)

व्यक्ति को किसी कार्य पर ध्यान केन्द्रित करने में कठिनाई होती है आंखे मिलाकर बात न कर पाना/गुमसुम रहना व्यक्ति को अन्य लोगों से घुलने–मिलने में कठिनाई होती है।

(३) बहु नि:शक्ता (Multiple Disabilitied Including/deafblindens) मानसिक मंदता/सेरेब्रल पल्सी/मानसिक रोगी/चलन नि:शक्ता/मूक नि:शक्तता/श्रवण नि:शक्तता/ऑटिज्म/दृष्टि बाधित/कुष्ठ रोग

उपरोक्त नि:शक्तता में से २ या २ अधिक नि:शक्तता से ग्रसित

(४) सेरेब्रल पाल्सी/पोलियो/नर्व इंजरी आदि

पैरो में जकड़न/चलने में/कठिनाई हाथ से काम करने में कठिनाई होना चलने में कृत्रिम अंग, बैषाखी, केलिपर इत्यादि का उपयोग करता है।

(५) मानसिकता रोगी (Mental Illness)

अस्वाभाविक व्यवहार करता है (खुद से बाते करना, भ्रम जाल, मतिभ्रम, व्यसन (नशे का आदि) अधिकतम डर/भय किसी भी व्यस्तु का इंसान से अत्यधिक लगाव इत्यादि) बिना किसी कारण से जल्दी गुस्सा आ जाता है या गुमसुम अथवा

अकेलापन अच्छा लगता है व्यक्ति अपनी स्वच्छता या दुनियादारी से अन्जान है व्यक्ति के मन में विचार आता है कि उसको कोई भवान/भूत या बाहरी शक्ति उसे नियंत्रित करता है व्यक्ति के मन में बारबार आत्महत्या के विचार आते ह? एवं डरता है।

(६) श्रवण बाधित (Hearing Impairment)

बहरापन अथवा सुनने में कठिनाई होती है बहरापन है ऊंचा सुनता या कम सुनता है

(७) मूक निशक्तता (Speech Impairment)

बोलने में कठिनाई होती है सामान्य बोली से अलग बोलता है (जिसे कि परिवार के सदस्यों के अलावा अन्य लोग नहीं समझ पाते है)

(८) दृष्टि बाधित (Blindness)

देखने में कठिनाई होती है दृष्टिहीन है

(९) अल्प दृष्टि (Low-vision)

कम दिखता है (६० वर्ष से कम आयु की स्थिति में) रंगो की पहचान नहीं कर पाता है। (६० वर्ष से कम आयु की स्थिति में)

(१०) चलन निश:क्तता (Locomotor Disability)

हाथ या पैर अथवा दोनों की नि:शक्ता है लकवा है/हाथ या पैर कट गया है

(११) कुष्ठ रोग से मुक्त (Leprosy-cured)

हाथ या पैर या अंगुलियों में विकृति/टेढापन है शरीर की त्वचा पर रंगहीन धब्बे हाथ या पैर या अंगुलियों में सुन्न हो जाना।

(१२) बौनापन (Dwarfism) व्यक्ति का कद व्यस्क होने पर भी ४ फुट १०इंच १४७cm या इससे कम है

(१३) तेजाब हमला पीड़ित (Acid attack victim)

शरीर के अंग हाथ/पैर/आंख आदि तेजाब हमले की वजह से असामान्य/प्रभावित है।

(१४) मांसपेशी दुर्विकार (Muscular Dystrophy)

मांसपेशिया कमजोर है, मांसपेशियों में विकृति है।

(१५) स्पेसिफिक लर्निंग डिस्ऐबिलिटिज (Specific Learning disabilities)

बोलने, समझने, श्रुत लेख, लेखन, साधारण जोड, बाकी, गुणा, भाग के कठिनाई होती है व्यक्ति को आकार, भार, दूरी आदि को समझने में कठिनाई होती है व्यक्ति को एवं परिवार के किसी भी सदस्य को भाषा समझने या शब्दों का अर्थ समझने में कठिनाई होती है। व्यक्ति को एवं किसी भी सदस्य को दिशा, चिन्ह समझने में एवं वस्तुओं का बोध करने में कठिनाई होती है।

(१६) बौद्धिक नि:शक्तता (Intellectual disabilities)

सीखने, समस्या समाधान, तार्किकता आदि में कठिनाई है प्रतिदिन के कार्यो में सामाजिक कार्यो में एवं अनुकूलन व्यवहार (Adaptive Behaviour) में कठिनाई आती है।

(१७) मल्टीपल स्कलेरोसिस (Multiple Sclerosis)

व्यक्ति के दिमाग एवं रीढ की हड्डी के समन्वय में परेशानी होती है।

(१८) पार्किसंस रोग (Parkinsons disease)

हाथ/पांव/मांसपेशियों में जकड़न, तंत्रिका तंत्र प्रणाली संबंधी कठिनाई होना।

(१९) हीमोफीलिया/ अधि रक्तस्त्राव (Haemophilia)

चोट लगने पर अत्यधिक रक्त स्त्राव होता है रक्त बहना बन्द ही नहीं होना।

(२०) थैलेसीमिया (Thalassemia)

डाक्टर ने खून में हीमोग्लोबीन की विकृति एवं मात्रा कम होना बताई हो

(२१) सिकल सैल डिजीज (Sickle cell disease)

चिकित्सक ने खून की अत्याधिक कमी (रक्त अल्पता) बताई हो खून की कमी से शरीर के अंग/अवयव खराब हो गये हो शारीरिक एवं मानसिक बाध्य व्यक्तियों के सामाजिक एवं आर्थिक हितों की देखभाल करने का उत्तरदायित्व सरकार एवं समाज दोनों का है। विश्व के विभिन्न भागों से प्राप्त किये गये अनुभवों से ज्ञात होता है कि उचित शिक्षा और प्रशिक्षण से नि:शक्त व्यक्ति भी अपने कार्य का निर्वाह करने में समर्थ हो सकते हैं। यही कारण है कि प्रोत्साहन एवं सहायता द्वारा विशेष योग्यजनों को आर्थिक सहायता प्रदान कर उनमें जीवन जीने की लालसा, उमंग का संचार किया जा सकता है।

सन्दर्भ:

- अबोसी आक्ये (२००७) एज्यूकेटिंग चिल्ड्रन विद लर्निंग डिस्एबिलिटिज इन अफ्रिका। लर्निंग डिस्एबिलिटीज रिसर्च एण्ड प्रेक्टिस २२(३) १९६—२०१सी, २००७ दी डिविजन फोर लर्निंग डिस्ऐबिलिटिज ऑफ दा काउन्सिल फॉर एक्सेप्शनल चिल्ड्रन
- अल्टमेन बी.एम. (२००१) डिस्ऐबिलिटीज डेफिनेशन्स, मॉडल्स, क्लासीफिकेशन, स्कीम एण्ड एपलीकेशन्सइन जी
- एल. अलवब्रेज के.डी सील्मा एण्ड एम.बरी (एडिशन) हैण्डबुक आफ डिस्एबिलिटीज स्टडीज (पीपी ९७—१२२) थाउजेंड आकस सेज पब्लिकेशन
- अल्वर्ट बी (२००५) लैशन्स फ्रॉम दा डिस्एबिलिटीज नॉलेज रिसर्च प्रोग्राम के.ए.आर. पब्लिकेशन
- बार्नस सी. एण्ड मर्कर जी. (२०१०) एक्क्प्लेरिंग डिस्एबिलिटिज (सैकण्ड एडिशन) कैम्ब्रिज पोलिटी प्रेस
- बाइंस एच (२००७) टैक्लिंग इस्यूज ऑफ डिस्एबिलिटिज एण्ड इन्क्लूसिवनेस इन एज्यूकेशन। जोन्सबर्ग:वर्ल्ड विजन
- डिपार्टमेन्ट ऑफ एज्यूकेषन (२००१) एन इन्क्लूसिव एण्ड ट्रैनिंग सिस्टम, प्रेटोरिया: डिपार्टमेन्ट ऑफ एज्यूकेशन
- बर्च, सुसान, एण्ड पाल के (२००९) लॉनमोर एडिशन इनसाइक्लोपीडिया ऑफ अमेरिकन डिस्एबिलिटि हिस्ट्री
- डब्ल्यू.एच.ओ. (वर्ल्ड हैल्थ आर्गेनाइजेशन), "वर्ल्ड रिपोर्ट ऑन डिस्एबिलिटी", २०११
- डब्ल्यू.एच.ओ. (वर्ल्ड हैल्थ आर्गेनाइजेषन) "डिस्एबिलिटिज", २०१२

❑❑❑

30

आचार्य शुक्ल और उनका इतिहास लेखन

डॉ॰ ओमप्रकाश नारायण द्विवेदी
असोशिऐट प्रोफेसर हिन्दी विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

शुक्ल जी आलोचना लेखन में आने से पहले साहित्य के अन्य क्षेत्रों में भी यात्रा कर चुके थे। शुक्ल जी के हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के सूत्र रूप में जो सारगर्भित टिप्पणियाँ आई हैं वह आगे चलकर के, बाद के हिन्दी समीक्षकों और हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों के लिए चुनौतीपूर्ण समीक्षा का आधार बन गई।

यह अनायास ही नहीं है कि शुक्ल जी अपने युग के उतने ही बड़े समीक्षक हैं जितने बड़े इतिहासकार। शुक्ल जी के इतिहास लेखन की विशेषताओं पर बात करने से पहले यह जान लें कि यह ग्रन्थ 'हिन्दी शब्द सागर' की भूमिका के रूप में जनवरी १९२९ में प्रकाशित हुआ और इसी वर्ष इस ग्रन्थ में आगे—पीछे थोड़ा जोड़कर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपना सुप्रसिद्ध हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रस्तुत किया। सन् १९४० ई॰ में इसका परिवर्तित और संशोधित संकलन प्रकाशित कराया जो हिन्दी का सर्वाधिक प्रशंसित ओर व्यवस्थित इतिहास ग्रन्थ लेखन है। शुक्ल के इतिहास लेखन की अनेक विशेषताएँ हैं जो उसे अन्य इतिहासकारों से अलग करती हैं। इस ग्रन्थ की सबसे पहली विशेषता यह है कि उन्होंने अपने इतिहास में साहित्य और साहित्य के इतिहास की जो परिभाषा बताई उसपर वह आदि से अन्त तक खरे उतरते हैं जैसे:— "प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृति का संचित प्रतिबिम्ब